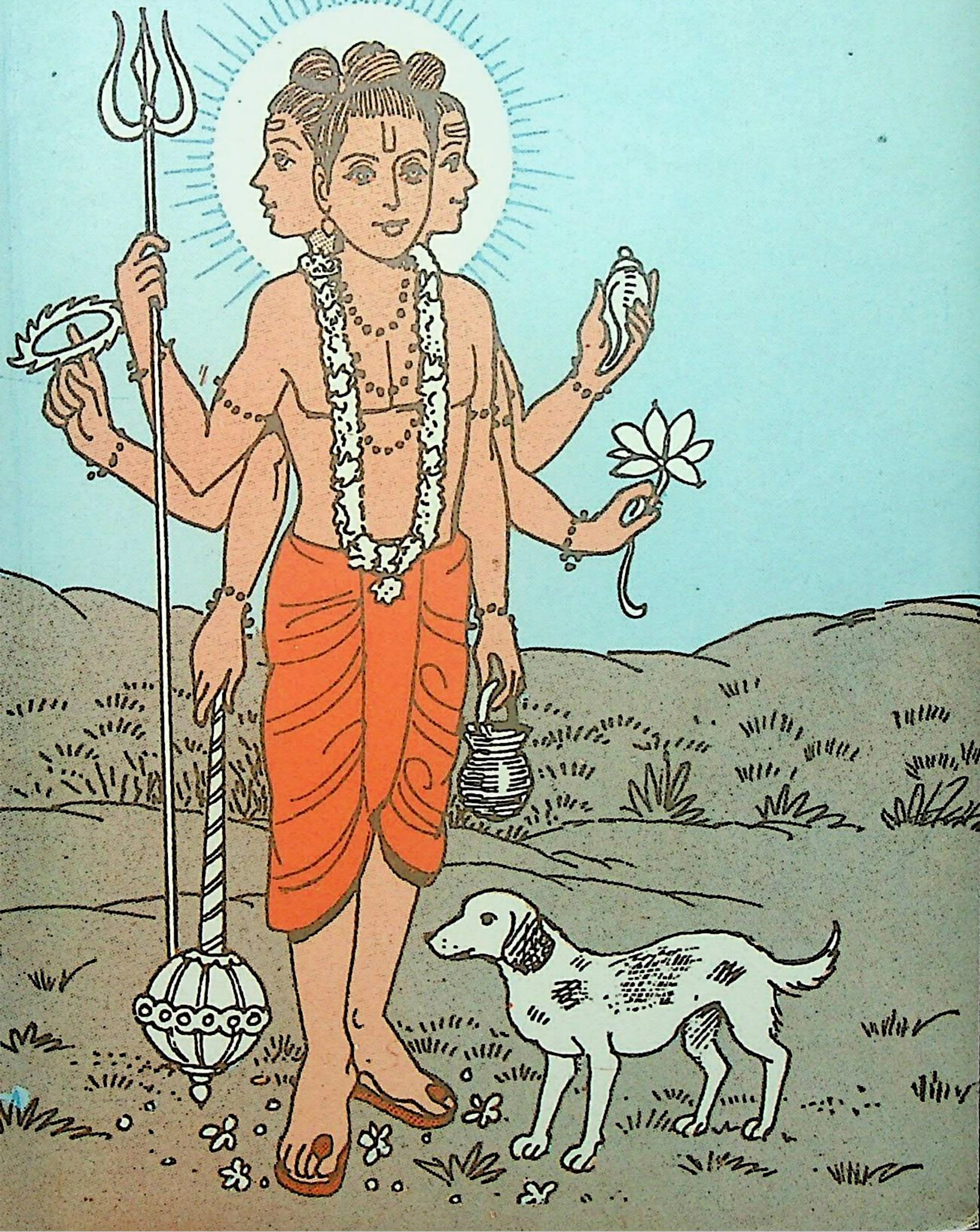
अवधूतगीता



ॐ

श्रीदत्तात्रेयविरचिता—

अवधूतगीता

काशीनिवासि-श्रीस्वामिहंसदासशिष्य-स्वामि-
श्रीपरमानन्दजीकृत-परमानन्दीनामक-

भाषाटीकासहिता ।

★

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई

संस्करण : दिसंबर २०१८, संवत् २०७५

मूल्य : २०० रुपये मात्र ।

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

© सर्वाधिकार : प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

॥ श्रीदत्तात्रेयाय नमः ॥



भूमिका ।

★

संसारमें कौनसा ऐसा पंडित और महात्मा संन्यासी होगा जो कि, श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीके नामको न जानता होगा. यद्यपि स्वामी दत्तात्रेयजीके नामको तो इस भारतखण्डमें अनेक स्त्री पुरुष जानते हैं; तथापि उनके त्याग और वैराग्यके वृत्तान्तको बहुत ही कम पुरुष जानते हैं, सो मैंने इस ग्रन्थके आदिमें उनके जीवनवृत्तान्तको प्रथम दिखलाकरके फिर स्वामी दत्तात्रेयजी-की बनाई हुई जो "अवधूतगीता" है उसके प्रत्येक शब्दके अर्थको और फिर उसके भावार्थको भी दिखाया है मुझे आशा है कि उसको पढ़करके संपूर्ण विरक्त महात्मा जन दत्तात्रेयजीकी तरह गुणोंको ग्रहण करके परम लाभ उठावेंगे।

इस पुस्तकका सर्वाधिकार सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास अध्यक्ष "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम प्रेस बम्बईको सादर समर्पित है, और कोई महाशय छापने आदिका साहस न करें, नहीं तो लाभके बदले हानि उठानी पड़ेगी ।

स्वामी परमानन्दजी.

ईश्वरगुरुवन्दना ।

दोहा–नमो नमो तिस रूपको, आदि अन्त जेहि नाहिं ।
सो साक्षी मम रूप है, घाट बाढ कहुँ नाहिं ॥१॥
अवगत अविनाशी अचल, व्याप रह्यो सब थाहि ।
जो जानै असरूपको, मिटै जगत भ्रम ताहि ॥२॥
हंसदास गुरुको प्रथम, प्रणमों वारंवार ।
नाम लेत जेहि तम मिटे, अघ होवत सब छार ॥

टीकाकारका परिचय ।

चौ०परमानन्द मम नाम पछानो । उदासीन मम पथको जानो॥
रामदास मम गुरुको गुरु है। आत्म वित्त जो मुनिवर मुनि है॥
दोहा–परशुराम मम नगर है, सिंधु नदी उस पार ।
भारतमण्डलके विषै, जानै सब संसार ॥ ५ ॥

अथ श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीका वृत्तान्त ।

संसारमें जन्ममरणरूपी बन्धनसे छूटनेके लिये सम्पूर्ण मोक्षके साधनोंसे वैराग्यही प्रधान साधन है क्योंकि जबतक प्रथम पुरुषको वैराग्य नहीं होता है तबतक पुरुषका मन विषयभोगोंकी तरफसे नहीं हटता है और मनके भोगोंकी तरफसे हटाये विना कोई भी मोक्षका साधन सफल नहीं होता है इसीसे सिद्ध होता है कि संपूर्ण मोक्षके साधनोंका मूल कारण वैराग्य ही है क्योंकि आज-तक जितने जीवन्मुक्त महात्मा हुए हैं वे सब वैराग्य करके ही हुए हैं सो वैराग्य तीन प्रकारका है एक तो मन्द वैराग्य है दूसरा तीव्र है तीसरा तीव्र-तर वैराग्य है, स्त्रीपुत्रादिकोंमेंसे किसी एकके नष्ट होजानेसे जो वैराग्य होता है वह मन्द वैराग्य कहा जाता है क्योंकि वह थोड़े कालके पीछे नष्ट होजाता है तात्पर्य यह है कि, जिस कालमें किसीका धन या पुत्र स्त्री या कोई दूसरी

प्रिय वस्तु नष्ट हो जाती है तब पुरुष अपनेको और संसारको दुःखी होकर धिक्कार देने लगता है और कुछ कालके पीछे जबकि उसका मन संसारके दूसरे पदार्थोंकी तरफ लग जाता है तब वह वैराग्य भी उसको भूल जाता है इसीका नाम मन्द वैराग्य है और बिना ही किसी दुःखकी प्राप्तिके विषयभोगों के त्यागकी इच्छाका उत्पन्न होना जो है इसका नाम तीव्र वैराग्य है और अपनी अभिलाषाके अनुकूल समस्त राज्यादिक सांसारिक पदार्थ तथा स्त्री पुत्र आदिके वर्तमान होनेपर भी उनके त्यागकी इच्छाका जो उत्पन्न होना है उसे तीव्रतर वैराग्य कहते हैं सो ऐसे वैराग्यवान् अर्थात् ज्ञानवैराग्यकी मूर्त्ति श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी हुए हैं और जिस वास्ते वह अवधूत होकर संसारमें विचरे हैं इसी वास्ते उन्होंने "अवधूतगीता" भी बनाई है उन्हींकी "अवधूतगीता" के अर्थोंको हम भाषाटीकामें दिखावेंगे । अब प्रथम उनके जीवन वृत्तांतको दिखाते हैं इस वार्ताको तो हिन्दूमात्र जानते हैं जो सत्ययुग त्रेता द्वापर कलि यह चारों युग बराबर ही अपनी २ पारीसे आते जाते रहते हैं । जिस जमानेमें सब लोग सत्यवादी और धर्मात्मा होते हैं उसी जमानेका नाम सत्ययुग है फिर जिस जमानेमें तीन हिस्सा सत्यवादी और चौथा हिस्सा असत्यवादी होते हैं उसी जमानेका नाम त्रेतायुग है और जिस जमानेमें आधे सत्यवादी और आधे असत्यवादी होते हैं उसका नाम द्वापर है जब कि चौथा हिस्सा सत्यवादी होते हैं तब कलियुग कहा जाता है और जब कि हजारों लाखोंमें एक आधा सत्यवादी होता है और सब असत्यवादी होते हैं तब उस जमानेका नाम घोर कलियुग है सो सत्ययुगमें जब कि सब लोग सत्यवादी थे उसी जमानेमें अत्रि नाम करके एक राजर्षि बड़े भारी तपस्वी राजा हुए हैं उनकी स्त्रीका नाम अनसूया था और अनसूयाके सन्तति नहीं थी. सो सन्ततिकी कामना करके अनसूयाने ब्रह्मा विष्णु और महादेव जो कि, सम्पूर्ण देवताओंमें प्रधान हैं इन्हीं तीनों देवताओंकी उपासनाको किया अर्थात् अनसूयाने बड़े भारी नियमको धारण करके इन तीनों देवताओंकी उपासनाको चिरकालतक किया जब कि, तपस्याको करते करते अनसूयाको बहुतसा समय व्यतीत होगया तब एक दिन तीनों देवता आकरके अनसूयासे

कहनेलगे हम तुम्हारेपर बड़े प्रसन्न हुए हैं क्योंकि तुमने हमारी बड़ी कठिन उपासनाको कियाहै अब तुम हमसे वरको मांगो, जिस वरको तुम मांगोगी उसी वरको हम तुम्हारे प्रति देवेंगे । ब्रह्मा आदिक देताओंकी इस वार्ताको सुनकर अनसूयाने उनसे कहा कि, यदि तुम तीनों देवता हमारेपर प्रसन्न हुए हो तुम तीनों देवता पृथक् २ पुत्ररूप होकर मेरे उदरसे जन्मको धारण करो अनसूयाकी इस प्रार्थनाको सुनकर तीनों देवताओंने तथास्तु कहा अर्थात् हम तीनों तुम्हारे घरमें पुत्ररूप होकर उत्पन्न होंवेंगे इस प्रकारका वर अनसूयाको देकर तीनों देवता चले गये फिर कुछ कालके बीतजानेपर तीनों देवताओंने क्रमसे अनसूयाके उदरसे अवतार लिया उन तीनोंमेंसे प्रथम विष्णुने अनसूयाके उदरसे अवतार लिया इनका नाम दत्तात्रेय रक्खा गया जिस कारणसे विष्णुने अपने वचनकी पालना करनेके वास्ते आप ही अनसूयाकी कुक्षिसे जन्मको धारण किया इसी वास्ते सब लोग इनको विष्णुका अवतार कहते हैं और जैसे विष्णुमें स्वाभाविक ही ज्ञान वैराग्यादिक गुण भरे थे वैसेही स्वामी दत्तात्रेयजीमें भी थे फिर काल पाकर महादेवजीने भी अनसूयाकी कुक्षिसे अवतार लिया तब इनका नाम दुर्वासा रक्खा गया क्योंकि जैसा महादेवजी तमोगुण प्रधान थे वैसेही दुर्वासाका भी अवतार तमोगुण-प्रधान था फिर कुछ कालके पीछे ब्रह्माने भी अनसूयाके घरमें अवतार लिया इसका नाम चन्द्रमा हुआ सो ब्रह्माजीकी तरह यह भी रजोगुणप्रधानही हुए । तीनोंमेंसे ज्येष्ठ पुत्र अनसूयाके दत्तात्रेयजी थे, सो बाल्यावस्थासे ही ज्ञान और वैराग्य करके पूर्ण रहते थे तथापि जब कि यह सयाने हुए तब इनके पिताका देहान्त हो गया और सब प्रजाने इनको बड़ा जानकर राजसिंहासन पर बिठला दिया, राजा बनकर कुछ कालतक तो यह प्रजाकी पालनाको करते रहे और दुष्टोंको दण्ड देकर सज्जनोंकी रक्षाको भी करते रहे कुछ कालके पीछे इनके चित्तमें राज्यकी तरफसे घृणा उत्पन्न हुई तब राज्यका त्याग करके यह अकेलेही विचरने लगे इनकी सौम्य और दयालु मूर्तिको देखकर बहुतसे मुनियोंके लड़के भी इनके साथ होलिये और जहां जहां दत्तात्रेयजी जायँ वहाँ वह बालक भी सब साथ ही साथ जायँ, कितना ही दत्तात्रेयजीने उन बालकोंको समझाकर हटाना चाहा परन्तु वह किसी प्रकार

भी न हटे तब दत्तात्रेयजीने अपने मनमें विचार किया कि, कोई ऐसा कर्म करना चाहिये जिस कर्मको देखकर इन बालकोंको हमारी तरफसे घृणा उत्पन्न होजाय क्योंकि विना ग्लानिके यह हमारा पीछा नहीं छोडेंगे ऐसा विचार करके एक दिन दत्तात्रेयजी वनमें विचरते विचरते एक तालावके किनारे पर जाकर खडे होगये और कुछ देरके पीछे पानीमें गोता लगाय तीन दिनतक बराबर जलके भीतरही समाधि लगाये बैठे रहे पर तो भी वे मुनि-योंके लडके बाहर तालावके किनारे पर बैठेही रहे, क्योंकि मुनियोंके लडकोंका दत्तात्रेयजीके साथ अतिस्नेह होगया था। जब दत्तात्रेयजीने समाधिसे देखा कि, मुनियोंके लडके तो इस तरहसे भी नहीं हटते हैं तब उन्होंने योगबलसे एक मायाकी युवा अवस्थावाली स्त्री रची और एक मदिराकी बोतल रची फिर एक हाथमें तो मदिराकी बोतलको पकडा और दूसरे हाथमें स्त्रीका हाथ पकडे हुए जलसे बाहर निकले और अपना विहार करने लगे तब उनके इस निन्दित आचारणको देखकर मुनियोंके बालक भी सब चले गये और कहने लगे कि, यह तो उन्मत्त हो गयेहैं अब इनका संग करना अच्छा नहीं है। जब कि सब मुनियोंके बालकोंने उनका पीछा छोड़ दिया तब दत्तात्रेयजीने उस मायाकी स्त्री और मदिराकी बोतलका भी अपनी मायामें लय कर दिया और नग्न अवधूत होकर विचरने लगे विचरते विचरते कभी कभी तो ग्रामोंमें जाकर लोगोंको अपने दर्शनसे कृतार्थ करते और कभी नगरोंमें जाकर लोगोंको अपने उपदेशसे कृतार्थ करते और कभी वनोंमें और पर्वतोंमें जाकर विचरते और कभी शून्यमन्दिरोंमें जाकर ध्यानावस्थित होकर बैठे रहते। श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी वासनासे रहित होकर और जीवन्मुक्त होकर संसारमें जहां तहां विचरते थे और अपने कालको व्यतीत करते थे। एक दिन दत्तात्रेयजी अपने आपमें मग्न मस्त हस्तीकी तरह चले जाते थे, इनको मस्त देखकर एक राजाने इनसे पूछा आपको ऐसा आनन्द किस गुरुसे मिला है जो आप संपूर्ण चिन्तासे रहित होकर मस्त हस्तीकी तरह होकर विचरते फिरते हैं। राजाके इस वाक्यको सुनकर श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीने कहा:-

आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ।
यत्प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविंदते ॥ १ ॥

पुरुषका विशेषकरके गुरु अपना आत्मा ही है क्योंकि प्रत्यक्ष और
मानसे अपने आत्माके ज्ञानसेही पुरुष कल्याणको प्राप्त होता है ॥ १ ॥
दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे राजन् ! मैंने किसी एक मनुष्यको गुरु नहीं
ाया है और न मैंने किसीसे कानोंमें फूँक मरवाकर मंत्रही लिया है किन्तु
२ से जितना २ गुण हमको मिलाहै उतने २ गुणका प्रदाता मानकर
उस २ को गुरु बनाया है इसीसे मैंने २४ को अपना गुरु माना है
ंकि उनमेंसे हरएकसे हमको एक २ गुण मिलां है इसवास्ते मैं उन सबको
करके मानता हूँ। राजाने कहा कि, हे महाराज ! जिन चौबीसोंसे
नको गुण मिले हैं उन सबके भिन्न २ नामोंको हमारे प्रति आप निरूपण
और जो २ गुण उनसे आपको जिस २ रीतिसे मिला है उस २ गुणका
आप हमारे प्रति निरूपण करैं जिससे मेरेकोभी उन गुणोंका और उनके
ोंका यथार्थ रीतिसे बोध होजाय ॥
दत्तात्रेयजीने राजाको जिज्ञासु जानकर कहा कि, हे राजन् ! तुम एकाग्र
त होकर श्रवण करो प्रथम हम आपको उन चौबीस गुरुओंके नामोंको
ाते हैं और फिर उनके गुणोंको श्रवण करावेंगे १ पृथिवी, २ जल,
अग्नि, ४ वायु, ५ आकाश, ६ चन्द्रमा, ७ सूर्य, ८ कपोत, ९ अजगर,
सिंधु, ११ पतंग, १२ भ्रमर, १३ मधुमक्षिका, १४ गज, १५ मृग,
मीन, १७ पिंगला, १८ कुररपक्षी, १९ बालक, २० कुमारी,
साँप, २२ शरकृत्, २३ मकडी, २४ भृङ्गी यह चौबीस गुरुओंके नाम
इन्हीं चौबीस गुरुओंसे जो २ हमको गुण मिले हैं उन सब गुणोंकोभी
के प्रति हम सुनाते हैं. हे राजन् ! क्षमा और परोपकार करना ये दो गुण
को पृथिवीसे मिले हैं, पृथिवी अपने प्रयोजनसे विना संपूर्ण जीवोंके लिये
क प्रकारके पदार्थोंको उत्पन्न करती है और ताडना करनेसे भी वह
लेको नहीं चाहती है ऐसी वह क्षमाशील है फिर जो कोई और भी
वीसे इन गुणोंको ग्रहण करलेता है वहभी संसारमें जीवन्मुक्त होकर
रता है इसमें कोईभी संदेह नहीं है इसीवास्ते हमने पृथिवीसे इन गुणोंको
ण करके उसे अपना गुरु बनाया है ॥ १ ॥
दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे राजन् ! जलसे स्वच्छता और माधुर्यता ये दो
हमको मिले हैं जैसे जल अपने स्वभावसे स्वच्छ और मधुरभी

है तैसे मनुष्यको भी अपने स्वभावसेही स्वच्छ और मधुरभी होना चाहिये क्योंकि आत्मा अपने स्वभावसेही शुद्ध और सुखरूप भी इसवास्ते मनुष्यकोभी उचित है कि, छलकपटसे रहित होकर मधुरही भाषण करे क्योंकि ये गुण कल्याणकारक हैं ये दो गुण हमको जलसे मिले हैं इस वास्ते जलकोभी हमने गुरु माना है ॥ २ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे राजन्! अग्निका अपना उदरही पात्र है जितना द्रव्य अग्निमें डालाजाता है उसको अग्नि अपने उदरमेंही रखलेता है तैसे ही मैंने भी अपने उदरको ही पात्र बनाया है क्योंकि मुझको भी समयपर जितना भोजन मिलजाता है उसको मैं भी अपने उदरमेंही रखलेता हूँ अपने पास दूसरे समयके वास्ते कुछभी नहीं रखताहूँ इसीसे मैंने अग्निकोभी गुरु बनाया है ॥ ३ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे राजन्! जैसे वायु सर्वकाल चलता रहता है परन्तु किसीभी पदार्थमें आसक्त नहीं होता है और जो शरीरके भीतर वायु है सो केवल आहार करकेही सन्तोषको प्राप्त होजाता है और जो किसी भोगकी इच्छाको वह नहीं करता है वैसे हमभी चलते फिरते हैं परन्तु किसीमें भी आसक्त नहीं होते हैं और समयपर जो आहार मिलजाता है उसीसे सन्तोषको प्राप्त होजाते हैं और अधिक भोगकी इच्छाकोभी हम नहीं करते हैं इसीवास्ते हमने वायुको भी गुरु बनाया है ॥ ४ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे राजन् जैसे आकाशमें तारागण और वायु तथा बादल आदि रहते हैं परन्तु आकाशका किसीकेभी साथ सम्बन्ध नहीं होता है किन्तु आकाश सबसे असंग ही रहता है, और आकाश व्यापकभी है और असंगभी है तैसे आत्माभी व्यापक है और असंग है इसीवास्ते शरीरादिकोंके साथ आत्माका कोईभी सम्बन्ध नहीं है और संसारमें रहकरभी किसीके साथ यह आत्मा लिप्त नहीं होता है इस असंगता रूपी गुणको मैंने आकाशसे लिया है इसीवास्ते आकाशकोभी मैंने अपना गुरु बनाया है ॥ ५ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे राजन्! जैसे चन्द्रमण्डल सर्वकाल एकरस रहता अर्थात न घटता है न बढताहै किन्तु पूर्णरूपसे ज्योंका त्यों रहताहै,

और जैसे चन्द्रमंडलके जितने २ भागोंपर पृथिवीमंडलकी छाया पडती जाती उतना २ भाग उसका न्यूनसा प्रतीत होने लगता है परन्तु स्वरूपसे वह न्यून नहीं होता है किन्तु एकरस ही रहता है वैसे आत्मामें भी घटना बढना नहीं होताहै किन्तु सर्वकाल एकरस ज्योंका त्यों ही रहता है। आत्माकी पूर्णताका ज्ञानरूपी गुण हमने चन्द्रमासे लिया है इसवास्ते हमने चन्द्रमाको भी गुरु माना है ॥ ६ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे राजन्! जैसे सूर्य अपनी किरणोंके द्वारा जलको पृथिवीतलसे खींचकर फिर समयपर उसका त्याग कर देता है तैसे ही विद्वान् पुरुष भी इन्द्रियापेक्षित वस्तुओंका ग्रहण करके भी फिर उनका त्याग ही कर देता है इस गुणको हमने सूर्यसे लिया है इस वास्ते सूर्यको भी हमने गुरु बनाया है ॥ ७ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे राजन्! स्नेहका त्यागरूपी गुण हमने कपोतसे लिया है सो दिखाते हैं। वनमें एक वृक्षके ऊपर कपोत और कपोतिनी दोनों रहते थे उन्होंने उसी वृक्षपर बच्चोंको भी उत्पन्न किया जब कि, उनके बच्चे दाना खाने लगे तब कपोत और कपोतिनी दोनों इधर उधरसे दाना लाकर उनको खिलाने लगे जब कि, वह दोनों बच्चे कुछ बडे हो गये तब उसी वृक्षके नीचे वह भी इधर उधर घूमकर खेलने लगे। एक दिन एक फंदकने वहांपर आकर जालको लगाकर उन दोनों बच्चोंको उस जालमें फँसा-लिया इतनेमें वह कपोत और कपोतिनीभी अपने वृक्षपर आगये और अपने बच्चोंको जालमें बँधा हुआ देखा दोनोंही स्नेहके वशमेंहोकर रुदन करनेलगे बहुतसा रुदन करके कपोतिनीने कहा कि,जिसकी सन्तति कष्टको प्राप्तहोकर मारी जाय उसका जीनेसे मरनाही अच्छा है इस प्रकार शोचकर वह कपोतिनी उसी जालमें गिरपडी उसको भी फदकने बाँधलिया तब कपोतने भी विलाप करके कहा जिसका कुटुंब नष्ट होजाय उसका मरना ही अच्छा है अब मैं अकेला जीकर क्या करूंगा ऐसे कहकर कपोतभी उसी जालमें गिर पडा। फंदकने उसको भी बांध लिया और चल दिया। हे राजन्! स्नेहके वशमें प्राप्त होकर वह कपोत और कपोतिनी भी मारे गये इससे सिद्ध होता है कि. संपूर्ण जीवोंके जन्म और मरणका हेतु स्नेह ही है और स्नेहका त्याग ही मोक्षरूपी सुखका परम साधन है सो स्नेहका त्यागरूप ही गुण मैंने कपोतसे सीखा है

इसी वास्ते मैंने कपोतको भी गुरु बनाया है ॥ ८ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हे राजन् ! जैसे अजगर एक स्थानमें पडा रहता है अपने भोजनके लिये भी यत्न नहीं करता है जो कुछ उसको दैवयोगसे प्राप्त होजाता है उसीमें सन्तुष्ट रहता है उससे अधिककी इच्छाको भी वह नहीं करता है इसी प्रकार हम भी शरीरके योगक्षेमकी इच्छाको नहीं करते हैं. यह गुण हमने अजगरसे लिया है इसी वास्ते हमने अजगरको भी गुरु करके माना है ॥ ९ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हे राजन् ! जैसे हजारों नदियां समुद्रमें जाकर मिलती हैं परन्तु समुद्र अपनी मर्यादासे चलायमान नहीं होता है तैसे विद्वान्का मन भी अनेक प्रकारके विषयोंके प्राप्त होनेपर भी चलायमान नहीं होता है । सो मनका अडोल रखनारूपी गुण हमने समुद्रसे लिया है, इसीवास्ते हमने समुद्रको भी अपना गुरु माना है ॥ १० ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हे राजन् ! जैसे पतंग रूपको देखकर अग्निमें भस्म होजाता है और उसका निशान भी नहीं मिलता है । तैसे ही सुन्दर स्त्रीके रूपको देखकर पुरुषका मन भी उसीमें लीन होजाता है और संसारकी उसका कोई भी खबर नहीं रहती है सो मनको आत्मामें लीन करदेना ही जीवन्मुक्तिका साधन है यह गुण हमने पतंगसे लिया है । इससे हमने पतंगको भी अपना गुरु बनाया है ॥ ११ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हे राजन् ! जैसे भ्रमर एक पुष्पसे जरासा रस लेकर फिर दूसरे पुष्पपर चला जाता है उससे रस लेकर फिर तीसरे पुष्पसे रस लेता है अर्थात् थोडा २ रस हरएक पुष्पसे लेकर बहुतसा रस जमा करलेता है तैसे हमभी हरएक गृहसे एक १ रोटीके ग्रासको लेकर अपने उदरको भर लेते हैं यह गुण हमने भ्रमरसे लिया है इससे हमने भ्रमरसे लिया है इससे हमने भ्रमरकोभी गुरु बनाया है ॥ १२ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हे राजन् ! मक्षिका जब बहुतसा मधु जमा करलेती है तब एक दिन शिकारी मनुष्य उनको मारकर जमा किया हुआ सब मधु उनसे छीन करके लेजाता है और जैसे मक्षिका बडे कष्टसे मधुको जमा करती है इसी तरहसे मनुष्य भी बडे २ कष्टोंको उठाकर पदार्थोंको इकट्ठा करते हैं ओर जिस कालमें यमराजके दूत आकर उनको

पकड़कर लेजाते हैं तब वे तो खाली हाथही चले जाते हैं और उनके पदार्थोंको दूसरा कोई आकर लेजाताहै इससे सिद्ध हुआ कि, संग्रह करनेमेंही महान् दुःख होता है सो संग्रहका न करनारूपी गुण हमने मधुमक्षिकासे लिया है इसवास्ते हमने उसको भी गुरु माना है ॥ १३ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं--हे राजन्! काम करके मदान्ध हुआ हाथी कागजोंकी हाथिनीको देखकरके गढेमें गिरपडताहै और फिर जन्मभर सैकडों लोहेके अंकुशोंको अपने शिरपर खाता रहताहै तैसे ही कामातुर पुरुष भी स्त्रीको देखकर संसाररूपी गढेमें गिरपडते हैं सो यह स्त्रीका त्यागरूपी गुण हमने गजसे लिया है सो यह इससे गजको भी अपना गुरु बनाया है ॥ १४ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं -हे राजन्! हिरनको राग सुननेका बड़ा भारी व्यसन है और रागके पीछे वह बंधायमान भी हो जाता है इसी कारण शिकारी उसको बांध भी लेता है। तैसेही कामी पुरुष भी सुंदर स्त्रियोंके गायनको सुनकर और उनके हावभावरूपी कटाक्षों करके बंधायमान भी होजाता है सो श्रोत्र इंद्रियका विषय सुंदर गायन हैं सो उसको बंधनका हेतु जानकर उसका त्यागरूपी गुण हमने मृगसे लिया है इससे मृगको भी हमने गुरु बनायाहै ॥ १५ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं- हे राजन्! जैसे मछली आहारके लोभसे कुंडीमें फँस जाती है तैसे ही आहारके लोभसे पुरुष भी परतन्त्र होजाता है और परतन्त्र होकर अनेक प्रकारके दुःखोंको उठाता है सो आहारके लिये लोभका त्याग हमने मछलीसे सीखा है इसवास्ते तिसको भी हमने गुरु बनाया है ॥ १६ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं--हे राजन्! निराशतारूपी गुण हमने वेश्यासे लिया है सो दिखाते हैं, किसी नगरमें पिंगला नामक वेश्या रहती थी सन्ध्याके समय वह नित्य ही हारशृङ्गार करके अपने खिड़कीमें ग्राहकके वास्ते बैठती थी जब कि कोई ग्राहक आजाता तब उसको लेकर सो जाती। एक दिन संध्याको खिडकीमें बैठकर अपने ग्राहककी आशा करनेलगी जब बहुतसी रात्रि बीतगई और कोई भी ग्राहक उसके पास नहीं आया तब वह उठकर मकानके भीतर चलीगई थोड़ी देरके पीछे पुरुषकी आशासे फिर बाहर निकल आई फिर थोडी

देरके पीछे भीतर चलीगई इसी प्रकारका करते जब उसको आधी रात्रि व्यतीत होगई और कोई भी उसके पास ग्राहक नहीं पहुँचा तब तिसके मनमें ऐसा विचार उठा कि, हमको धिक्कार है और हमारे इस पेशेको भी धिक्कार है जो मैं व्यभिचार कर्मके लिये कभी बाहरको जाती हूँ और कभी भीतरको जाती हूँ यदि मैं परमेश्वरके साथ मिलनेकी इतनी आशा लगाती तो क्या जाने मेरेको कौनसी उत्तम पदवी प्राप्त होजाती ऐसे कहकर जब वह निराश होगई तब भीतर जाकर बडे आनन्दके साथ सोयी रही सो यह निराशतारूपी गुण हमने वेश्यासे ग्रहण किया है इसलिये वेश्याको भी हमने गुरु बनाया है और योगवासिष्ठमें भी रामजीने आशाको ही बंधनका हेतु कहा भी है–

आशाया ये दासास्ते दासाः सन्ति सर्वलोकस्य ।
आशा येषां दासी तेषां दासायते विश्वम् ॥ १ ॥

अन्यच्च–

तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ।
येनाशाः पृष्ठतः कृत्वा नैराश्यमवलम्बितम् ॥ २ ॥
ते धन्याः पुण्यभाजस्ते तैस्तीर्णः क्लेशसागरः ।
जगत्संमोहजननी यैराशाऽऽशीविषी जिता ॥ ३ ॥

इस संसारमें जो पुरुष आशाके दास होरहे हैं अर्थात् जिन्होंने स्त्री पुत्र धनादिकोंकी प्राप्तिकी और चिरकाल तक जीनेकी आशा लगाई है उनको सब लोगोंका दास ही होना पड़ता है और आशाको जिन्होंने अपनी दासी बना लिया है संपूर्ण जगत् उनका दास बन गया है ॥ १ ॥ उसी पुरुषने संपूर्ण शास्त्रोंका अध्ययन करलिया है और उसीने सर्व शास्त्रका श्रवण भी किया जिसने आशाको पीछे हटाकर निराशताको अंगीकार कर लिया है ॥२॥ संसारमें वही पुरुष धन्य हैं और वेही आत्मा भी हैं जो कि, दुःखरूपी संसारसे तर गये हैं और जिन्होंने जगत्को मोहने वाली आशाका नाश कर दिया है ॥ ३ ॥ आशा ही जन्म और मरणका हेतु है जो निराश होगये हैं वही मुक्त हो गये हैं ॥ १७ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं–कि, हे राजन् ! कुरर नामक एक पक्षी होता है उस कुरर पक्षीको कहींसे एक मांसका टुकड़ा मिला उसको लेकर वह आकाशमार्गसे उम्मेदपर उडा जाता था कि, कहींपर बैठकरके इसको मैं खाऊंगा । उस पक्षीके मुखमें पकडे हुए टुकडेको देखकर और भी पक्षी उसको छीननेके वास्ते उसके पीछे दौड़े और उसको मारने लगे उस कुरर पक्षीने देखा कि, इस मांसके टुकडेके लिये सबपक्षी मेरेको मारते हैं यदि मैं इसको फेंक देऊंगा तो यह मेरेको नहीं मारैंगे ऐसा विचार करके उसने उस टुकडेको भूमिपर फेंक दिया तब सब पक्षियोंने उसको मारना भी छोड दिया और वह भी मारखानेसे बचगया । इसी प्रकार पुरुषने भी जबतक भोगोंको पकड़ रक्खा है तबतक दुष्ट तस्करादिकोंकी मारको पडा खाता है जब त्याग कर देता है तब उनकी मारसे बच जाता है सो भोगोंका त्यागरूपी गुण मैंने कुरर पक्षीसे लिया है इसवास्ते मैंने कुरर पक्षीको भी गुरु बनाया है ॥ १८ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे राजन् ! जैसे दूध पीनेवाले बालकको किसी प्रकारकी भी चिन्ता नहीं होती है किन्तु दूधको पान करके अपने आनन्दमें मग्न होकर वह पड़ा रहता है और आनन्दसे हँसता ही रहता है तैसे भिक्षान्नका भोजन करके हम भी चिन्तासे रहित होकर पडे रहते हैं यह गुण हमने दूध पीनेवाले बालकसे लिया है इस लिये उसकोभी हमने गुरुमाना है॥ १९॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे राजन् ! एक ग्राममें हम भिक्षाके वास्ते गये और वहां देखा कि एक ब्राह्मणके घरके और सब लोग तो कहीं गये एक कुमारी कन्या ही अकेली घरमें थी और एक भिक्षुकने आकर उसीके द्वारपर हरिनारायण जगाया, तब कन्याने कहा महाराज ठहरजावो मैं धानोंको कूटकर चावल निकाल करके आपके प्रति भिक्षाको देती हूं भिक्षुक तो बाहर खडा होगया और भीतर घरमें वह कन्या जब धानोंको कूटने लगी तब उसके हाथकी चूडियां छन २ करने लगीं उनके छन २ शब्दसे कन्याको लज्जा आई तब वह एक २ करके उतारने लगी जब दो बाकी रह गई तब भी थोडा २ शब्द होता ही रहा जब एक ही बाकी रह गई तब शब्दका होना भी बन्द हो गया तब सो मुझे यह निश्चय हुआ कि–

वासे बहूनां कलहो भवेद्वार्ता द्वयोरपि ।
एकाकी विचरेद्विद्वान्कुमार्या इव कंकणः ॥ १ ॥

बहुतसे आदमियोंमें निवास करनेसे नित्य ही लडाई झगडा होता है एवं दोके इकठ्ठा रहनेसे भी बातें होती हैं विचार ध्यान नहीं होता है इस वास्ते विद्वान् कुमारीके कंगनकी तरह अकेला ही विचरे सो हे राजन् ! अकेला रहना यह गुण हमने कुमारी कन्यासे लिया है इस वास्ते हमने उसको भी गुरु बनाया है ॥ २० ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे राजन् ! जैसे सर्प अपना घर नहीं बनाता है किन्तु बने बनाये घरमें वह रहता है तैसे हम भी अपने घरको नहीं बनाते हैं किन्तु बने बनाये मन्दिरों और गुफाओंमें रहते हैं यह गुण हमको सर्पसे मिला है इसलिये हमने सर्पको भी अपना गुरु बनाया है ॥ २१ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं--हे राजन् ! किसी नगरके बाजारमें अपनी दूकानपर एक बाणोंका बनानेवाला बाण बनारहा था और बाणके सीधा करनेमें उसकी दृष्टि जमी थी, दैवयोगसे उसी समय राजाकी सवारी आ निकली पर उसकी दृष्टि सवारीपर न गई क्योंकि वह बाणको सीधा करनेके लिये एक दृष्टिसे देख रहा था जब राजाकी समस्त सेना उसके आगेसे निकल गई तब पीछेसे एक सवारने आकर उससे पूछा कि क्या इधरको राजाकी सवारी गई है ! तब उसने कहा हम नहीं जानते हैं—

दत्तात्रेयजी कहते हैं--हे राजन् ! उसका मन बाण बनानेमें ऐसा एकाकार हुआ था जिससे सामनेसे भी जाती हुई फौजको उसने नहीं देखा था सो मनके एकाग्र करनेका गुण हमने उस बाण बनानेवालेसे सीखा है इसवास्ते हमने उसको भी गुरु बनाया है ॥ २२ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं--हे राजन् ! जैसे मकडी एक छोटासा जीव होता है वह अपने मुखसे तारको निकालकर फिर उसीमें फंस जाता है तैसे जीव भी अपने मनसे अनेक प्रकारके संकल्परूपी तारोंको निकालकर फिर उन्हींमें फँस जाता है । सो मनके संकल्पोंका त्याग हमने मकडीसे सीखा है इस वास्ते मकडीको भी हमने गुरु बनाया है ॥ २३ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं--हे राजन् ! भृंगी एक जीव होता है सो एक कीटको पकड़कर अपने घोसलेमें उसको ला करके अपने सन्मुख रखकर शब्दको करता है । वह कीट उसी भृंगीके शब्दको सुनकर भृंगीरूप होकर और फिर उस भृंगीमें मोहका त्याग करके उड जाता है तैसे हम भी इस देहमें आत्माका ध्यान करके आत्मरूप होकर देहमें मोहको नहीं करते हैं सो देहमें मोहका त्यागरूपी गुण हमने भृंगीसे सीखा है इसवास्ते उसको भी हमने गुरु बनाया है ॥ २४ ॥

दत्तात्रेयजी कहते हैं--हे राजन् ! मेरेको चौबीस गुरुओंसे परमार्थका बोध हुआ है इसलिये मैं अब अपने स्वरूपमें स्थित हूं आत्मानन्दको प्राप्त होकर जीवन्मुक्त होकरके संसारमें विचरता हूं । इसीवास्ते मैं चिन्तासे रहित होकर और निर्द्वंद्व होकरके विचरता हूं । दत्तात्रेयजीके उपदेशसे राजाको भी आत्मज्ञानका लाभ हुआ और राजा भी मोहसे रहित होकर अपने घरको चले गये और दत्तात्रेयजी फिर मस्त हस्तीकी तरह आत्मानन्दमें मग्न होकर विचरने लगे । आठ महीना तो दत्तात्रेयजी एक स्थानमें निरन्तर नहीं रहते थे किन्तु जहां तहां रागसे रहित होकरके विचरते ही रहते थे औरवर्षाऋतुके चतुर्मासमें निरन्तर एक स्थानमें रह जाते थे । सो चतुर्मासमें जिन २ स्थानोंमें उन्होंने निवास किया है वह स्थान आजतक उन्हींके नामसे प्रसिद्ध है और तीर्थरूप करके पूजे भी जाते हैं क्योंकि जिस २ स्थानमें स्थित होकर महात्मा लोग तप या निवास करते हैं वह स्थान तीर्थरूप और दूसरोंको पवित्र करने वाला होजाता है । दत्तात्रेयजीका एक स्थान गोदावरीके किनारेपर नासिकसे कुछ दूर है और दूसरा जूनागढसे तीन मील पर गिरनार पर्वतपर है, तीसरा काश्मीरके श्रीनगरशहरसे दो मील दूर एक पर्वतपर है और भी बहुतसे स्थान उन्हींके नामसे प्रसिद्ध हैं श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीके जीवन चरित्रसे यह बात सिद्ध होती है कि जितना गुण जिससे जिसको मिलजाय वह उतने गुणका उसको गुरु मान लेवे और वह गुण चाहे व्यवहारको सुधारनेवाला हो चाहे परमार्थको सुधारनेवाला हो और गुणका लेना सबसे उचित है, दोषको छोड देना भी एक गुण है और कानमें फूंक लगाकर आजकल जो गुरु बन जाते हैं वह तो एक अपनी जीविकाके वास्ते करते हैं । आजकल भारतवर्षमें दम्भ

पाखण्ड बहुत वढ़ गया है इसीवास्ते दंभियोंने वेद और शास्त्रकी रीतिको हटाकर अपने नये २ पाखण्डोंको चलाकर नये २ मन्त्रोंको बनाकर मूर्खोंके कान फूककर अपनेको पशु बना लेते हैं वह मूर्ख भी उनके पूरे २ पशु वन जाते हैं और उन्हीं दंभियों पाखंडियोंकी पूजा सेवाआदि करते हैं सो उनका ऐसा व्यवहार वेदशास्त्रसे विरुद्ध होनेसे नरकका ही हेतु है इसीवास्ते उनको इस लोक और परलोकमें भी सुख नहीं मिलता है इसवास्ते मुमुक्षुको उचित है कि, स्वामी दत्तात्रेयजीकी तरह गुणग्राही बनकर संसारमें विचरे किसी चालकके फन्देमें फंसकर कान फुँकवाये उसका पशु न बनें जो वेदान्ती कहाते हैं और फिर कान फुंकवाकर दूसरेके पशु बनते हैं वह अत्यन्त मूर्ख हैं। और जो चेलोंके कान फूँककरके उनके गुरु बनते हैं वह भी वेदशास्त्रकी रीतिसे स्वार्थी मूर्ख ही कहे जाते हैं क्योंकि वेदशास्त्रमें ऐसा लेख नहीं है किन्तु शिष्यके सन्देहोंको दूर करके उसको आत्मज्ञानका उपदेश करके उसके अज्ञानको दूर कर देना ही वेदान्तमें गुरुशिष्यकी रीति है। देखो रामजीने वशिष्ठजीसे कान फुंकवाकर कोई भी मन्त्र नहीं सुना था किन्तु हजारों प्रश्न कियेथे और उनके उत्तरोंको देकर जब वसिष्ठजीने उसके अज्ञानको दूर किया था तव रामजीने वसिष्ठजीको गुरु माना था इसी तरह अर्जुनने भी श्रीकृष्ण जीसे अनेक प्रश्न किये जिनकी कि गीता बनी है, जब अर्जुनके सब सन्देह दूर होगये थे तब भगवान्को गुरु माना था कान नहीं फुंकवाये थे ऐसेही जनकजीने याज्ञवल्क्यको गुरु बनाया था कान नहीं फुंकवाये थे शुकदेवजीने जनकजीको गुरु बनाया था कानोंमें उनसे मन्त्र नहीं सुना था। याज्ञवल्क्य-जीने सूर्यसे उपदेश लिया था कान नहीं फुंकवाये थे । नचिकेताने यमराजसे आत्मविद्याको लिया था कान नहीं फुंकवाये थे ! विदुरजीने सनत्कुमारसे आत्मविद्याको ग्रहण किया था कान नहीं फुंकवाये थे कहां तक कहें इसी प्रकार और भी बड़े २ तत्त्ववेत्ता वेदान्ती पूर्व युगोंमें हुए हैं और इस युगमें भी गुरु नानकजीसे आदिलेकर महात्मा वेदान्ती हुए हैं उन्होंने भी किसीसे कान नहीं फुंकवायेथे इन्हीं युक्तियोंसे और उपनिषदादिके प्रमाणोंसे यह बात सिद्ध होती है कि, वेदान्तके सिद्धान्तमें कान फूंककर गुरु बनना और कान फुंकवाकर चेला बनना यह व्यवहार नहीं है इससे जोकि ऐसा करते हैं वह

मूर्ख या दंभी पाखण्डी कहे जाते हैं जो कर्मी हैं, वेदान्ती नहीं हैं और द्विज हैं उनके लिये संस्कारोंके समयमें यज्ञोपवीत करनेवालेसे गायत्री मन्त्रका उपदेश लेना कहा है क्योंकि विना गायत्री मन्त्रके शूद्र ही होता है और फिर गायत्रीमन्त्रके ऊपर अपना दूसरा कोई भी शिवमन्त्र या और कोई भी मन्त्र लेकर गुरु बनाना द्विजातिके वास्ते नहीं लिखा है जो कर्मी कहाते हैं और फिर गायत्रीमन्त्रके ऊपर अपना दूसरा शिवादिकोंका मन्त्र कानोंमें फूँककर गुरु बनकर चेलोंके धनको वचन करते हैं वह दम्भी कलियुगी गुरु कहे जाते हैं और वह चेले भी मूर्ख ही कहे जाते हैं। बस पूर्वोक्त युक्तियोंसे यह वार्ता सिद्ध होती है कि, आजकलके कलियुगी मनुष्य वेद और शास्त्रके विरुद्ध व्यवहारका प्रचार करके लोगोंके और अपने धर्मका नाश कर रहे हैं इसवास्ते मुमुक्षु पुरुषोंको उचित है कि, श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीकी तरह गुणग्राही बनें और कलियुगी गुरुओंके फन्देमें न फँसे और हरएक महात्मोंके सत्संगसे गुणोंको ग्रहण करके संसारमें राजा जनककी तरह या श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीकी तरह होकरके विचरें॥

श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीके जीवनवृत्तान्तका तो संक्षेपसे वर्णन कर दिया अब उनकी बनाईहुई जो "अवधूतगीता" है जिसमें कि, उन्होंने अपने अनुभवका निरूपण किया है उसकी भाषाटीकाका प्रारंभ करेंगे। जिसको पढ़कर सब लोग लाभ उठावेंगे. इस टीकामें प्रथम ऊपर मूल फिर नीचे पदच्छेद उसके नीचे पदार्थ अर्थात् प्रत्येक पदका अर्थ फिर नीचे भावार्थ लिखा है जिसको कि, थोड़ासा भी हिन्दीका बोध होगा वह भी इसके तात्पर्यको भले प्रकारसे जान लेवेगा।

इति श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीका वृत्तान्त।

अवधूतगीताकी विषयानुक्रमणिका ।

इति अवधूतगीताकी विषयानुक्रमणिका संपूर्णा ।

अथावधूतगीता ।

भाषाटीकासहिता ।

ईश्वरानुग्रहादेव पुंसामद्वैतवासना ।
महद्भयपरित्राणा विप्राणामुपजायते ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ईश्वरानुग्रहात्, एव, पुंसाम्, अद्वैतवासना, महद्भयपरित्राणा, विप्राणाम्, उपजायते ॥

पदार्थः ।

ईश्वरानुग्रहात्=ईश्वरके अनुग्रह (कृपा) से
एव=निश्चय करके
पुंसाम्=पुरुषोंके मध्यमें
विप्राणाम्=विप्रोंको
महद्भयपरित्राणा=महान् भयसे रक्षाको करनेवाली
अद्वैतवासना=अद्वैतकी वासना
उपजायते=उत्पन्न होती है ।

भावार्थः ।

श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं–ईश्वरकी कृपासे ही पुरुषोंको अद्वैतकी वासना अर्थात् जीव और ब्रह्मके अभेदकी वासना उत्पन्न होती है । अब इसमें यह शंका होती है कि, यदि ईश्वरके अनुग्रहसे ही अद्वैतकी वासनायें उत्पन्न होती हैं, तब सभीको अद्वैतकी वासनायें उत्पन्न होनी चाहिये । क्योंकि ईश्वरका अनुग्रह जीवमात्रपर है, भगवद्गीतामें भी भगवान्ने कहा है–“ समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ” । भगवान् कहते हैं, मैं

संपूर्ण प्राणियोंमें सम हूँ, मेरा किसीके साथ द्वेष और प्रियत्व नहीं है । इसी वाक्यसे ईश्वरका अनुग्रह सब जीवोंपर तुल्य ही सिद्ध तो होता है, परन्तु अद्वैतकी वासनायें सबको उत्पन्न नहीं होती हैं तो फिर दत्तात्रेयजीने कैसे कहा कि ईश्वरके अनुग्रहसे अद्वैतकी वासनायें उत्पन्न होती हैं? इस शंकाका यह उत्तर है—भगवद्गीतामें ही भगवान्‌ने कहा है—"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" जो पुरुष जिस जिस कामनाको लेकरके मेरा भजन करते हैं उनको मैं भी उसी प्रकारसे भजता हूं । सो श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीका यही तात्पर्य है कि, जो पुरुष निष्काम होकर परमेश्वरकी उपासनाको करता है उसीके ऊपर ईश्वरका अनुग्रह होता है और ईश्वरके अनुग्रहसे ही अद्वैतकी वासनायें भी उत्पन्न होती हैं । (पुंसाम्) पुरुषोंको अर्थात् चारों वर्णोंमेंसे किसी वर्णका भी हो, क्योंकि आत्मज्ञानमें मनुष्यमात्रका अधिकार है । जब कि मनुष्यमात्रपर उसकी उपासनाद्वारा कृपा हो जाती है तब फिर जो कि वेदका अभ्यास करके विप्रपदवीको प्राप्त हुए हैं, वे यदि ईश्वरकी उपासनाको करेंगे तब उनके ऊपर ईश्वरकी कृपा क्यों नहीं होवेगी? किन्तु अवश्य ही होवेगी। इसी तात्पर्यको लेकर विप्रोंको भी कह दिया । ननु अद्वैतवासना उत्पन्न होनेसे फिर फल क्या होवेगा ? उच्यते—" महद्भयपरित्राणा " अर्थात् जन्ममरणरूपी जो महान् भय है उससे वह अद्वैतकी वासनायें रक्षा कर लेवेंगी अर्थात् जन्ममरणरूपी संसारचक्रसे वह छूट करके ब्रह्मरूप होजायगा ॥ १ ॥

ननु—ग्रन्थके आदिमें श्रेष्ठ पुरुष मंगलाचरणको करते हैं अर्थात् अपने इष्टदेवको नमस्कार करके पीछे ग्रन्थका आरम्भ करते हैं; सो इस ग्रन्थके आदिमें स्वामीजीने मंगलाचरणको क्यों नहीं किया है ? उच्यते—जीवन्मुक्तोंका मंगलाचरण इतर प्राकृत भेदवादी पुरुषोंकी तरह नहीं होता है, क्योंकि उनको सर्वत्र एक आत्मदृष्टि ही रहती है । सो स्वामीजीने भी भेदका दर्शनरूपी मंगलाचरण द्वितीयश्लोक करके दर्शाया है—

येनेदं पूरितं सर्वमात्मनैवात्मनात्मनि ।
निराकारं कथं वन्दे ह्यभिन्नं शिवमव्ययम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

येन, इदम्, पूरितम्, सर्वम्, आत्मना, एव, आत्मना, आत्मनि, निराकारम्, कथम्, वन्दे, हि, अभिन्नम्, शिवम्, अव्ययम्॥

पदार्थः ।

येन=जिस	निराकारम्=निराकार आत्माको
आत्मना=आत्माकरके	कथम्=किस प्रकार
एव=निश्चयसे	वन्दे=मैं वन्दन करूं
आत्मनि=अपनेमें ही	हि=क्योंकि वह
आत्मना=अपने करके	अभिन्नम्=जीवसे अभिन्न है फिर वह कैसा है ?
इदम्=यह दृश्यमान	शिवम्=कल्याणस्वरूप है
सर्वम्=संपूर्ण जगत्	अव्ययम्=फिर वह अव्यय है ।
पूरितम्=पूर्ण हो रहा है तिस	

भावार्थः ।

जिस आत्माकरके अर्थात् जिस चेतन ब्रह्मकरके यह दृश्यमान संपूर्ण प्रपंच पूर्ण होरहा है अर्थात् संपूर्ण प्रपंचके भीतर और बाहर वही आत्मा व्यापक होकर स्थित है वह जगत् भी जिस चेतनमें शुक्ति और रजतकी तरह कल्पित होकर स्थित है, वास्तवमें नहीं है, उस निराकार आत्माको हम कैसे वन्दना करैं अर्थात् उसकी वन्दना करनी ही नहीं बनती है, क्योंकि वन्दना उसकी की जाती है जिसका कि, अपनेसे भेद होता है उसका तो भेद नहीं है किन्तु वह अभिन्न है । "अयमात्मा ब्रह्म" यह अपना आत्मा ही ब्रह्म है इत्यादि अनेक श्रुतियां इस जीवात्माको ही ब्रह्मरूप करके कथन करती हैं, फिर यह आत्मा कैसा है ? शिवरूप है अर्थात् कल्याणस्वरूप है फिर वह अव्यय है अर्थात् नाशसे भी रहित है । तात्पर्य यह है कि जब ब्रह्मात्मा अपनेसे भिन्न ही नहीं है अर्थात् अपना आत्मा ही ब्रह्मरूप है तब वन्दना कैसे बन सकती है ? किन्तु कभी नहीं, इसवास्ते इस ग्रन्थके आदिमें अभेदचिंतनरूप ही मंगल किया है ॥ २ ॥

ननु-ब्रह्म चेतन है, जगत् जड है और जड चेतनका अभेद किसी प्रकारसे भी नहीं बनता है इसीसे अभेदचिंतनरूपी मंगल भी नहीं बनता है ?

पञ्चभूतात्मकं विश्वं मरीचिजलसन्निभम् ।
कस्याप्यहो नमस्कुर्यामहमेको निरञ्जनः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

पञ्चभूतात्मकम्, विश्वम्, मरीचिजलसन्निभम्, कस्य, अपि, अहो, नमस्कुर्याम्, अहम्, एकः, निरञ्जनः ॥

पदार्थः ।

पञ्चभूतात्मकम् =पांच भूतोंका समुदायरूप ही—	अहो=इति खेदे
विश्वम्=यह जगत् है और	कस्य=किसको
मरीचिजलसन्निभम् =मृगतृष्णाके जलके सदृश मिथ्या भी है	अहम्=मैं
अपि=निश्चयकरके	नमस्कुर्याम्=नमस्कार करूं, क्योंकि
	एकः=मैं एक ही हूं
	निरञ्जनः=मायामलसे रहित भी हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह जितना दृश्यमान जगत् है सो मृगतृष्णाके जलकी तरह मिथ्या है अर्थात् जैसे मृगतृष्णाका जल वास्तवमें नहीं होता है और भ्रम करके प्रतीत होता है तैसे यह जगत् भी वास्तवमें नहीं है किन्तु अज्ञानकरके अज्ञानी पुरुषोंको सच्चा प्रतीत होता है परन्तु जिसका अज्ञान दूर होगया है उसको मिथ्या प्रतीत होता है । जब कि चेतनसे भिन्न जगत् सब मिथ्या है और मैं एक ही द्वैतसे रहित मायामलसे रहित शुद्ध हूँ तब फिर नमस्कार किसको करूं । नमस्कार तो अपनेसे भिन्न सत्यवस्तु चेतनको किया जाता है । सो अपनेसे भिन्न दूसरा चेतन तो है नहीं और जगत् सब मिथ्या असत्यरूप है । मिथ्या जड वस्तुको तो नमस्कार करना बनता नहीं है और एकमें भी यह व्यवहार नहीं बनता है इसवास्ते अभेदका चिंतनरूप मंगल सिद्ध होता है ॥ ३ ॥

आत्मैव केवलं सर्वं भेदाभेदो न विद्यते ।
अस्ति नास्ति कथं ब्रूयां विस्मयः प्रतिभाति मे ॥४॥

पदच्छेदः।

आत्मा, एव, केवलम्, सर्वम्, भेदाभेदः, न, विद्यते, अस्ति, नास्ति, कथम्, ब्रूयाम्, विस्मयः, प्रतिभाति, मे ॥

पदार्थः।

आत्मा=आत्मा ही
एव=निश्चय करके
केवलम्=केवल है और
सर्वम्=सर्वरूप भी है तिसमें
भेदाभेदः=भेद और अभेद
न विद्यते=विद्यमान नहीं है
अस्ति=है और
नास्ति=नहीं है
कथम्=किस प्रकार
ब्रूयाम्=मैं कहूँ
विस्मयः=आश्चर्यरूप
मे=मेरेको
प्रतिभाति=प्रतीत होता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—संपूर्ण ब्रह्माण्डमें एक आत्मा ही केवल सत्यरूप है, आत्मासे भिन्न दूसरा कोई भी पदार्थ सत्य नहीं है, किन्तु मिथ्या है और सर्व रूप आत्मा ही है, क्योंकि कल्पित पदार्थकी सत्ता अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होती है इसवास्ते सम्पूर्ण विश्व आत्मासे भिन्न नहीं है और अभिन्न भी नहीं कह सकते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण विश्व चक्षु इन्द्रिय करके दिखाई पडता है यदि अभिन्न हो तब आत्माकी तरह कदापि दिखाई न पडे और दिखाई भी पडता है इसवास्ते अनिर्वचनीय है। जिसका सत्य असत्यरूपसे कुछ भी निर्वचन न होसके उसीका नाम अनिर्वचनीय है। जैसे शुक्तिमें रजत, आकाशमें नीलता, रज्जुमें सर्प यह सब जैसे अनिर्वचनीय हैं क्योंकि सत्य होवें तो अधिष्ठानके ज्ञानसे इनका नाश न हो और यदि असत्य होवें तो इनकी प्रतीति न हो, परन्तु इनकी प्रतीति होती है और इनका नाश भी होता है इसी प्रकार जगत्की भी प्रतीति होती है और नाश भी इसका होता है इस वास्ते यह अनिर्वचनीय है और अनिर्वचनीय पदार्थका अपने अधिष्ठानके साथ भेद अभेद भी नहीं कहा जाता है, क्योंकि सत्यरूप आनन्दरूप ज्ञानरूप चेतन अधिष्ठान ब्रह्मके साथ असद्रूप दुःखरूप जडरूप प्रपञ्चका अभेद कदापि नहीं हो सकता है और भेद भी नहीं होसकता है, क्योंकि सत्य असत्यके अभेदमें कोई भी दृष्टान्त नहीं

मिलता है इसवास्ते यह जगत् नास्ति और अस्ति दोनों रूपोंसे नहीं कहा जाता है । इसी वास्ते विस्मयकी तरह अर्थात् आश्चर्यकी तरह यह जगत् हमको प्रतीत होता है अर्थात् विना हुए मृगतृष्णाकी तरह प्रतीत होता है ॥ ४ ॥

ननु, दत्तात्रेयजीका सिद्धान्त क्या है?–

वेदान्तसारसर्वस्वं ज्ञानविज्ञानमेव च ।
अहमात्मा निराकारः सर्वव्यापी स्वभावतः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

वेदान्तसारसर्वस्वम्, ज्ञानविज्ञानम्, एव, च, अहम्, आत्मा, निराकारः, सर्वव्यापी, स्वभावतः ॥

पदार्थः ।

वेदान्तसार-सर्वस्वम् =वेदान्तका जो सार अद्वैत है वही हमारा सर्वस्व है	अहम्=मैं ही
च एव=और निश्चय करके	आत्मा=आत्मा हूँ और
ज्ञानवि-ज्ञानम् =वही हमारा ज्ञान विज्ञान भी है	निराकारः=निराकार भी हूँ
	स्वभावतः=स्वभावसे ही मैं
	सर्वव्यापी=सर्वव्यापी भी हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–वेदान्तका सारभूत जो अद्वैत ब्रह्मका चिन्तन है वही हमारा सर्वस्व है और वही हमारा ज्ञान विज्ञान भी है अर्थात् परोक्ष तथा अपरोक्ष ज्ञान भी हमारा वही है और मैं ही व्यापकरूप आत्मा हूँ और निराकार भी हूँ। अणु, ह्रस्व, मध्यम और दीर्घ आदि आकारोंसे रहित हूँ और स्वभावसे ही मैं सर्वव्यापी भी हूँ ॥ ५ ॥

यो वै सर्वात्मको देवो निष्कलो गगनोपमः ।
स्वभावनिर्मलः शुद्धः स एवाहं न संशयः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

यः, वै, सर्वात्मकः, देवः, निष्कलः, गगनोपमः, स्वभावनिर्मलः, शुद्धः, सः, एव, अहम्, न, संशयः ॥

पदार्थः ।

यः=जो	स्वभावनिर्मलः =स्वभावसे ही निर्मल है
सर्वात्मकः=सर्वरूप	शुद्धः=शुद्ध है
देवः=देव है	स एव=सोई निश्चय करके
वै=निश्चयकरके	अहम्=मैं हूं
निष्कलः=निरवयव है	संशय=संशय इसमें
गगनोपमः =आकाशकी तरह अडोल है	न=नहीं है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं जो सर्वरूप प्रकाशमान देव है सो निरवयव है और गगन जो आकाश है उसकी उपमावाला भी है अर्थात् जैसे आकाश किसी प्रकारसे भी चलायमान नहीं होता है वैसे वह देव भी अर्थात् प्रकाशस्वरूप ब्रह्म भी चलायमान नहीं होता है और स्वभावसे ही वह निर्मल है स्वच्छ और शुद्ध भी है सोई निर्मल शुद्ध चेतन ब्रह्म मैं हूं इसमें किसी प्रकारका भी सन्देह नहीं है ॥ ६ ॥

अहमेवाव्ययोऽनन्तः शुद्धविज्ञानविग्रहः ।
सुखं दुःखं न जानामि कथं कस्यापि वर्तते ॥७॥

पदच्छेदः ।

अहम्, एव, अव्ययः, अनन्तः, शुद्धविज्ञानविग्रहः, सुखम्, दुःखम्, न, जानामि, कथम्, कस्य, अपि, वर्त्तते ॥

पदार्थः ।

अहम् = मैं ही	सुखम् = सुखको और
एव = निश्चयकरके	दुःखम् = दुःखको
अव्ययः = नाशसे रहित हूं	न जानामि = मैं नहीं जानता हूं
अनन्तः = अनन्त भी हूं और	कथम् = किस प्रकार
शुद्धविज्ञानविग्रहः = शुद्ध विज्ञान स्वरूप भी हूं	कस्य = किसको
	अपि = निश्चयकरके
	वर्तते = वर्तते हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपने अनुभवको कहते हैं- मैं ही अव्यय हूं अर्थात् नाशसे रहित हूँ, अनन्त हूँ फिर मैं शुद्धज्ञानस्वरूप हूँ अर्थात् मायामलसे रहित शुद्ध हूँ और ज्ञानस्वरूप हूँ फिर मैं सुख और दुःखको भी नहीं जानता हूं तात्पर्य यह है कि, जिसका शरीरादिकोंके साथ अध्यास होता है वही शरीरादिकोंके धर्म जो कि सुखदुःखादिक हैं उनको जानता है अर्थात् दूसरोंके धर्मोंको अपनेमें मानता है क्योंकि उसका अज्ञान अभी नष्ट नहीं हुआ है और हमारा अज्ञान नष्ट होगया है और देहादिकोंमें हमारा अध्यास भी नहीं रहा है, अध्यासके नष्ट होजानेसे देहादिकोंमें हमारी अहंता और ममता भी नहीं रही है । अहं-ममताके नाश होजानेसे विषयइंद्रियोंके सम्बन्धसे जन्य जो सुख दुःख हैं उनको भी मैं नहीं जानता हूं, सुख-दुःखादिक किस प्रकार किसको होते हैं किसमें वर्तते हैं क्योंकि जीवन्मुक्त विद्वान्की दृष्टिमें केवल ब्रह्मके सिवाय दूसरा कोई भी नहीं होता है ॥ ७ ॥

न मानसं कर्म शुभाशुभं मे
न कायिकं कर्म शुभाशुभं मे ।
न वाचिकं कर्म शुभाशुभं मे
ज्ञानामृतं शुद्धमतीन्द्रियोऽहम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

न मानसम्, कर्म, शुभाशुभम्, मे, न, कायिकम्, कर्म, शुभाशुभम्, मे, न, वाचिकम् कर्म, शुभाशुभम्, मे, ज्ञानामृतम्, शुद्धम्; अतीन्द्रियः; अहम् ॥

पदार्थः ।

मानसम्=मानस	कायिकम्=शारीरिक
कर्म=कर्म जितने कि	कर्म=कर्म जो कि
शुभाशुभम्=शुभ और अशुभ है	शुभाशुभम्=शुभ अशुभ है
मे न=मेरेको नहीं लगते हैं	मे न=मेरेको नहीं लगते हैं

वाचिकम्=वाणीकृत	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
कर्म=कर्म भी	शुद्धम्=शुद्ध और
शुभाशुभम्=शुभ और अशुभ	अतीन्द्रियः=इन्द्रियोंका अविषय
मे न=मेरे नहीं है क्योंकि	अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

मनुस्मृतिमें कायिक वाचिक मानसिक ये तीन तरहके कर्म लिखे हैं, शरीरके जितने कि अच्छे बुरे कर्म होते हैं उनका नाम कायिक है और वाणीकरके जितने अच्छे बुरे कर्म होते हैं उनका नाम वाचिक है और मनकरके जितने अच्छे बुरे कर्म होते हैं उनका नाम मानसिक है, शरीरकरके जो कर्म होते हैं उनका फल शरीर ही भोगता है, वाणी करके जो कर्म होते हैं उनका फल वाणी ही भोगती है, मनकरके जो अच्छे बुरे कर्म होते हैं उनका फल पुरुष मनकरके ही भोगता है, क्योंकि अज्ञानी पुरुषोंका इनके साथ अध्यास होता है इसवास्ते वह शरीरादिकोंके कर्मोंको अपनेमें मानते हैं, ज्ञानवान् जीवन्मुक्तका इनके साथ अध्यास नहीं रहता है इसवास्ते वह इनके कर्मोंको अपनेमें नहीं मानता है किन्तु वह अपनेको इनसे असंग चिद्रूप मानता है सो दत्तात्रेयजी कहते हैं जिस वास्ते ज्ञानस्वरूप अमृतरूप शुद्ध और इन्द्रियोंके हम अविषय हैं इसीवास्ते कायिक, वाचिक, मानसिक यह तीन प्रकारके कर्म भी हमारे नहीं हैं किन्तु देहादिकोंके हैं। किन्तु हम इनके साक्षी द्रष्टा हैं । ननु—जबतक शरीर विद्यमान है, ज्ञानी भी खानपानादिक और गमनागमनादिक कर्मोंको करता है तब फिर यह कथन नहीं बनता है कि हमारे ये कर्म नहीं हैं। उच्यते—जो अपनेमें कर्मोंको मानता है या जिसको शुभ अशुभ कर्मोंका ज्ञान होता है उसीको कर्मोंका फल भी मिलता है । जो न मानता है और न उसको शुभ अशुभ कर्मोंका ज्ञान ही है उसको फल भी नहीं होता है जैसे बालक और पागल अपनेमें न तो कर्मोंको मानते हैं और न उनको शुभ अशुभ कर्मोंके स्वरूपका ही ज्ञान है इसी वास्ते उनको कर्मोंका फल भी नहीं होता है । इसी प्रकार जीवन्मुक्त ज्ञानवान्को भी कायिक वाचिक और मानसिक कर्मोंका फल कुछ भी नहीं होता है क्योंकि एक तो वह अपनेमें मानता नहीं है, द्वितीय आत्मानन्दमें

वह सर्वकाल मग्न रहता है इसवास्ते उसको उनका ज्ञान भी नहीं । इसी तात्पर्यको लेकरके दत्तात्रेयजीने भी कहा है ॥ ८ ॥

मनो वै गगनाकारं मनो वै सर्वतोमुखम् ।
मनोऽतीतं मनः सर्वं न मनः परमार्थतः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, वै, गगनाकारम्, मनः, वैः सर्वतोमुखम् मनः, अतीतम्, मनः, सर्वम्, न मनः, परमार्थतः ॥

पदार्थः ।

मनः=मन ही	मनः=मनसे आत्मा
वै=निश्चयकरके	अतीतम्=अतीत है
गगनाकारम्=गगनके आकारवाला	मनः=मन ही
मनः=मन ही [है	सर्वम्=संपूर्ण विश्व है
वै=निश्चयकरके	परमार्थतः=परमार्थसे
सर्वतो=सब ओरको	मनः=मन भी
मुखम्=मुख है	न=सत्य नहीं है

भावार्थः ।

जीवोंका मन जो है सोई गगनके आकारवाला है अर्थात् जिस कालमें मन संकल्पोंको करने लगता है तब संपूर्ण आकाशमें भी व्याप्त हो जाता है फिर मन कैसा है, सर्व ओर मुखवाला है क्योंकि जिस तरफका संकल्प करता है उधरकोही बेधड़क चलाजाता है कोई भी इसकी रुकावट नहीं कर-सकता है इस वास्ते मनही संपूर्ण विश्वरूप भी है क्योंकि संपूर्ण जगत् इसीका बनाया है वह मन भी परमार्थसे सत्यरूप नहीं है और आत्मा चेतन मनसे भी अतीत और सूक्ष्म है इसी वास्ते वही सत्यरूप है ॥ ९ ॥

अहमेकमिदं सर्वं व्योमातीतंनिरन्तरम् ।
पश्यामि कथमात्मानं प्रत्यक्षं वा तिरोहितम् ॥१०॥

पदच्छेदः ।

अहम्, एकम्, इदम्, सर्वम्, व्योमातीतम्, निरन्तरम्, पश्यामि, कथम्, आत्मानम्, प्रत्यक्षम्, वा, तिरोहितम् ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं	**एकम्**=मैं एक ही हूं और
आत्मानम्=आत्माको	**इदम्**=यह दृश्यमान
प्रत्यक्षम्=प्रत्यक्ष	**सर्वम्**=सर्वरूप भी हूं और
वा=अथवा	**निरन्तरम्**=निरन्तर
तिरोहितम्=तिरोहित	**व्योमातीतम्**=आकाशसे भी सूक्ष्म हूँ ।
कथम्=किस प्रकार	
पश्यामि=देखूं, क्योंकि	

भावार्थः ।

श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं--हम आत्माको प्रत्यक्ष अर्थात् अपरोक्ष और तिरोहित अर्थात् परोक्ष कैसे देखें, क्योंकि वह आत्मा एक है और देखना जो होता है सो भेदको लेकर अपनेसे भिन्नका होता है जब कि आत्मासे भिन्न दूसरी वस्तु ही कोई नहीं है तब देखना कैसे हो सकता है । **ननु**--यद्यपि आत्मा एक भी है तथापि जगत् दृश्यमान तो उससे भिन्न है इस वास्ते जगत्का देखना तो बन जावेगा ? **उच्यते**--यह सम्पूर्ण जगत् भी आत्मरूप ही है क्योंकि कल्पित वस्तु अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होती है इसीपर स्वामीजी कहते हैं--वह निरन्तर आत्मा एक ही है और आकाशसे भी अति सूक्ष्म है । इसी अर्थको श्रुति भी कहती है--**"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन"** वह ब्रह्म चेतन एक ही द्वैतसे रहित है इस ब्रह्ममें जो कि नानारूप करके जगत् प्रतीत होता है सो वास्तवमें नहीं है ॥ १० ॥

त्वमेवमेकं हि कथं न बुध्यसे
समं हि सर्वेषु विमृष्टमव्ययम् ।

सदोदितोऽसि त्वमखण्डितः प्रभो
दिवा च नक्तं च कथं हि मन्यसे ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

त्वम्, एवम्, एकम्, हि, कथम्, न, बुध्यसे, समम्, हि, सर्वेषु, विमृष्टम्, अव्ययम्, सदा, उदितः, असि, त्वम्, अखण्डितः, प्रभो, दिवा, च, नक्तम्, च, कथम्, हि, मन्यसे ॥

पदार्थः ।

त्वम्=तू
एवं=निश्चय करके
एकं हि=एक ही है
कथम्=क्यों अपनेको
न बुध्यसे=नहीं जानता है
सर्वेषु=सम्पूर्ण शरीरोंमें
समम्=बराबर तू है
विमृष्टम्=विचार किया गया है
अव्ययम्=नाशसे रहित है
प्रभो=हे प्रभो !
त्वम्=तूही
सदा=सर्वकाल
उदितः=प्रकाशमान
असि=है और
अखण्डितः=भेदसे रहित है
च=और फिर तू
दिवा=दिनको
च=और
नक्तम्=रात्रिको
कथं हि=किस प्रकार
मन्यसे=मानता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपनेको ही कहते हैं--हे प्रभो ! एक ही ब्रह्मचेतन आत्माको क्यों नहीं जानते हो ? वह कैसा है--सम्पूर्ण प्राणियोंमें सम है अर्थात् तुल्य ही है विमृष्ट अर्थात् विचार किया गया है फिर यह कैसा है अव्यय है नाशसे रहित है सो तुम ही हो फिर तुम सर्वकाल उदित हो अर्थात् प्रकाशमान हो, फिर तुम भेदसे रहित हो, स्वयं स्वप्रकाश होनेपर दिन और रात्रिको तुम कैसे मानते हो, क्योंकि स्वयंप्रकाशमें दिन और रात्रि बन नहीं सकते हैं ॥ ११ ॥

आत्मानं सततं विद्धि सर्वत्रैकं निरन्तरम् ।
अहं ध्याता परं ध्येयमखण्डं खण्ड्यते कथम् ॥१२॥

पदच्छेदः ।

आत्मानम्, सततम्, विद्धि, सर्वत्र, एकम्, निरन्तरम् अहम्, ध्याता, परम्, ध्येयम्, अखण्डम्, खण्ड्यते, कथम् ॥

पदार्थः ।

एकम्=एकही
आत्मानम्=आत्माको
सततम्=निरन्तर
सर्वत्र=सर्वत्र
निरन्तरम्=एकरस
विद्धि=तुम जानो
अहम्=मैं
ध्याता=ध्यानका कर्ता हूं
परम्=आत्मा
ध्येयम्=ध्यानका कर्म है इसप्रकार
अखण्डम्=भेदसे रहित
कथम्=किस प्रकार
खण्ड्यते=भेद कहते हो

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अधिकारियोंके प्रति कहते हैं–हे अधिकारी जनो ! सर्व तुम एकरस एकही आत्मा चेतनको ज्योंका त्यों जानो जब कि, सर्वत्र भेदसे रहित एकही आत्मा है तब फिर उस एकमें यह भेद कैसे बनता है जो मैं ध्याता हूं अर्थात् ध्यानका कर्ता हूं और आत्मा ध्येय है अर्थात् ध्यानका कर्म है क्यों भेदमें ही सब व्यवहार होता है अभेदमें नहीं होता है । यदि कहो बुद्धि आत्माका ध्यान करता है आत्मा अपना ध्यान नहीं करता है तो हम कहते हैं कि, बुद्धि जड है, जड पदार्थमें ध्यान करनेकी शक्ति ही नहीं है । यदि कहो बुद्धिरूपी उपाधिमें स्थित होकरके आपही अपना ध्यान करता है सो यह कथन भी नहीं बनता क्योंकि उपाधि सब आप ही मिथ्या है और कल्पित है वह मिथ्यावस्तु सत्यवस्तुका वास्तवसे भेद भी कदापि नहीं कर सकती है इस वास्ते भेदकी कल्पना सब मिथ्या है, अभेदमें भेदबुद्धि करना इसीका नाम अज्ञान है ॥ १२ ॥

न जातो न मृतोऽसि त्वं न ते देहः कदाचन ।
सर्वं ब्रह्मेति विख्यातं ब्रवीति बहुधा श्रुतिः॥१३॥

पदच्छेदः ।

न, जातः, न, मृतः, असि, त्वम्, न, ते, देहः, कदाचन, सर्वम्, ब्रह्म, इति, विख्यातम्, ब्रवीति, बहुधा, श्रुतिः ॥

पदार्थः ।

त्वम्=तू	सर्वम्=सम्पूर्ण जगत्
न जातः=न तो उत्पन्न हुआ	ब्रह्म=ब्रह्मरूप ही है
असि=है और	इति=इस प्रकार
न मृतः=न मरता है	विख्यातम्=प्रसिद्ध है और
न ते=न तो तुम्हारा	बहुधा=बहुत सी
देहः=देह ही	श्रुतिः=श्रुति भी
कदाचन=कभी है	ब्रवीति=ऐसे ही कथन करती है

भावार्थः ।

हे शिष्य ! वास्तवसे तो न तू कभी उत्पन्न होता है और न कभी मरता ही है अर्थात् यह जन्म-मरण तुम्हारेमें नहीं है क्योंकि तुम एक रस व्यापक हो और तुम्हारा यह देह भी नहीं है क्योंकि वेद आत्माको "अकायम्" अर्थात् शरीरसे रहित कहता है और (सर्वम्) सम्पूर्ण जगत् ही ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मरूप हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण शास्त्रोंमें यह वार्ता प्रसिद्ध है और बहुतसी श्रुतियां भी इसी वार्ताको कहती हैं ॥ १३ ॥

स बाह्याभ्यन्तरोऽसि त्वं शिवः सर्वत्र सर्वदा ।
इतस्ततः कथं भ्रान्तः प्रधावसि पिशाचवत् ॥१४॥

पदच्छेदः ।

सः, बाह्याभ्यन्तरः, असि, त्वम्, शिवः, सर्वत्र, सर्वदा, इतः, ततः, कथम्, भ्रान्तः, प्रधावसि, पिशाचवत् ॥

पदार्थः।

स बाह्याभ्यन्तरः =सो जो चेतन बाह्य और आभ्यन्तर है वह	त्वम् असि=तू ही है
शिवः=कल्याणस्वरूप	इतः ततः=इधर उधर
सर्वत्र=सब स्थानोंमें	भ्रान्तः=भ्रान्त होकर
सर्वदा=सर्वकाल विद्यमान है सो	पिशाचवत्=पिशाचकी तरह
	कथम्=क्या तू
	प्रधावसि=दौडता फिरता है।

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-जिस चेतन ब्रह्मका पीछे निरूपण किया है जो एक है भेदसे रहित है, सोई चेतन सबके बाहर और भीतर भी है और कल्याणस्वरूप भी है और सर्वत्र एकरस सर्वदा विद्यमान भी है, सो तुम ही हो, जब कि शुद्धस्वरूप चेतन तुम ही हो तब फिर उसकी प्राप्तिके वास्ते पिशाचकी तरह तुम इधर उधर क्यों दौडते फिरते हो, किन्तु मत इधर उधर दौडो, अपनेमें ही विचार करके उसको जानो॥ १४॥

संयोगश्च विभागश्च वर्तते न च ते न मे।
न त्वं नाहं जगन्नेदं सर्वमात्मैव केवलम्॥ १५॥

पदच्छेदः।

संयोगः, च, विभागः, च, वर्तते, न, च, ते, न, मे, न, त्वम्, न, अहम्, जगत्, न, इदम्, सर्वम्, आत्मा, एव, केवलम्॥

पदार्थः।

संयोग=संयोग	न च=नहीं
च=और	वर्तते=वर्तते हैं
विभाग=विभाग	च=और
ते=तुम्हारेमें	मे=मेरेमें भी
	न=नहीं वर्तते हैं

त्वम्=तुम भी और
अहम्=मैं भी और
न=नहीं है और
इदम्=यह दृश्यमान
जगत्=जगत् भी
न=वास्तव नहीं है
केवलम्=केवल
आत्मा=आत्मा ही
एव=निश्चयकरके
सर्वम्=सर्वरूप है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं हे मुमुक्षुजन ! संयोग और विभाग तुम्हारेमें नहीं है और मेरेमें भी नहीं है और तुम हम यह भेद भी एक आत्मामें नहीं बनता फिर यह दृश्यमान जगत् भी वास्तवसे रज्जुमें सर्पकी तरह नहीं है किन्तु सर्वरूप केवल आत्मा ही है आत्मासे भिन्न कोई भी वस्तु स्वरूपसे सत्य नहीं है ॥ १५ ॥

शब्दादिपञ्चकस्यास्य नैवासि त्वं न ते पुनः ।
त्वमेव परमं तत्त्वमतः किं परितप्यसे ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

शब्दादिपञ्चकस्य, अस्य, न, एव, असि, त्वम्, न, ते पुनः त्वम्, एव, परमम्, तत्त्वम्, अतः, किम्, परितप्यसे ॥

पदार्थः ।

अस्य=इस
शब्दादिपञ्चकस्य=शब्दादिपञ्चकका
एव=निश्चयकरके
त्वम्=तू
न असि=फिर वह
ते=तुम्हारे भी
न=नहीं है
त्वम्=तूही
एव=निश्चयकरके
परमम्=परम
तत्त्वम्=तत्त्व हो
अतः=इसी हेतुसे
किम्=किसवास्ते
परितप्यसे=तुम संतप्त होते हो

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपने चित्तको ही उपदेश करते हैं-यह जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पांच विषय हैं, इनके साथ तुम्हारा और तुम्हारे साथ इनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि ये सब असद्रूप मिथ्या हैं और तुम सद्रूप चेतन हो, मिथ्या और सत्यका वास्तवसे कोई भी सम्बन्ध नहीं बनता है और तुम ही परमतत्त्वसार वस्तु भी हो इस वास्ते क्यों संतप्त होते हो ॥ १६ ॥

जन्म मृत्युर्न ते चित्तं बन्धमोक्षौ शुभाशुभौ ।
कथं रोदिषि रे वत्स नामरूपं न ते न मे ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ।

जन्म, मृत्युः, न, ते, चित्तम्, बन्धमोक्षौ, शुभाशुभौ, कथम्, रोदिषि, रे, वत्स, नामरूपम्, न, ते, न, मे ॥

पदार्थः ।

जन्म मृत्युः } जन्म और मरण	रे वत्स=हे वत्स !
चित्तम्=चित्तके धर्म हैं	कथम्=किसवास्ते
ते न=तुम्हारे नहीं हैं	रोदिषि=तू रुदन करता है
बन्धमोक्षौ=बन्ध और मोक्ष तथा	नामरूपम्=नाम और रूप भी
शुभाशुभौ=शुभ और अशुभ भी सब चित्तके धर्म हैं	ते न=तुम्हारे नहीं हैं
	मे न=मेरे भी नहीं हैं ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हे वत्स ! पैदा होना और मरना ये सब चित्तके धर्म हैं, तुम्हारे नहीं हैं अर्थात् यह सब तुम्हारेमें नहीं हैं और बन्ध मोक्ष तथा शुभ अशुभ जितने कर्म हैं ये भी सब चित्तके ही धर्म हैं तुम्हारे नहीं हैं और नाम रूप भी चित्तके धर्म हैं तुम्हारे और हमारे नहीं हैं क्योंकि हम तो चित्तके साक्षी हैं ॥ १७ ॥

अहो चित्त कथं भ्रान्तः प्रधावसि पिशाचवत् ।
अभिन्नं पश्य चात्मानं रागत्यागात्सुखी भव ॥१८॥

पदच्छेद. ।

अहो, चित्त, कथम्, भ्रान्तः, प्रधावसि, पिशाचवत्, अभिन्नं, पश्य, च, आत्मानम्, रागत्यागात् सुखी, भव ॥

पदार्थः ।

अहो=बड़ा खेद है	अभिन्नम्=भेदसे रहित
चित्त=हे चित्त !	आत्मानम्=आत्माको
भ्रान्तः=भ्रान्त हुआ	पश्य=तुम देखो और
कथम्=किसप्रकार	
पिशाचवत्=पिशाचकी तरह	रागत्यागात्=रागका त्याग करके
प्रधावसि=दौड़ता फिरता है	सुखी भव=तुम सुखी हो जाओ

भावार्थः ।

हे चित्त ! बड़ा खेद है तुम भ्रान्त होकर पिशाचकी तरह आत्माको अपने से भिन्न जानकरके वनों और पर्वतोंमें पड़े खोजते फिरते हो यही तुम्हारी बड़ी भूल है तुम आत्माको अभिन्न करके अर्थात् भेदसे रहित देखो और विषयोंमें रागका त्याग करके सुखी हो जाओ क्योंकि जब तक राग है तबतक ही दुःख है रागका अभाव होजानेसे दुःखका भी अभाव हो जाता है ॥१८॥

त्वमेव तत्त्वं हि विकारवर्जितं
निष्कम्पमेकं हि विमोक्षविग्रहम् ।
न ते च रागो ह्यथवा विरागः
कथं हि सन्तप्यसि कामकामतः ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ।

त्वम्, एव, तत्त्वम्, हि, विकारवर्जितम्, निष्कम्पम्, एकम्, हि, विमोक्षविग्रहम्, न, ते, च, रागः, हि, अथवा, विरागः, कथम्, हि, संतप्यसि, कामकामतः ॥

पदार्थः ।

त्वम्=तू ही
एव=निश्चयकरके
तत्त्वम्=आत्मस्वरूप है और
हि=निश्चयकरके
विकारवर्जितम्=विकारसे भी तू रहित है
निष्कम्पम्=निष्कम्प और
एकम् हि=एक ही
विमोक्षविग्रहम्=मोक्षस्वरूपभी तू है
च=और
ते=तुम्हारे
रागः=राग
वाः=अथवा
विरागः=विराग भी
न=नहीं है
कामकामतः=तो फिर कामोंकी कामनासे
हि=निश्चय करके
कथम्=किस प्रकार
संतप्यसि=संतप्त होता है

भावार्थः ।

तुम ही चेतन आत्मस्वरूप षड्विकारोंसे रहित हो और निष्कम्प हो अर्थात् किसी देवता विशेषकरके कम्पायमान होनेके योग्य भी तुम नहीं हो किन्तु अचल हो और विशेष करके तुमही मोक्ष स्वरूप भी हो जिसवास्ते तुम मुक्तरूप हो इसवास्ते तुम्हारे राग और विरागका भी कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि राग और विराग बन्धवालेमें ही रहते हैं, फिर तुम कामोंकी कामनाकरके क्यों संतप्त होते हो ॥ १९ ॥

वदन्ति श्रुतयः सर्वा निर्गुणं शुद्धमव्ययम् ।
अशरीरं समं तत्त्वं तन्मां विद्धि न संशयः ॥२०॥

पदच्छेदः ।

वदन्ति, श्रुतयः, सर्वाः, निर्गुणम् शुद्धम्, अव्ययम् अशरीरम्, समम्, तत्त्वम्, तत्, माम्, विद्धि, न, संशयः ॥

पदार्थः ।

सर्वाः=संपूर्ण	समम्=सबमें समरूप और
श्रुतयः=श्रुतियां आत्माको	तत्त्वम्=तत्त्व कथन करती है
निर्गुणम्=निर्गुण ही	तत्=सोई
वदन्ति=कथन करती हैं और उसीको	माम्=मेरेको
शुद्धम्=शुद्ध	विद्धि=तुम जानो
अव्ययम्=नाशसे रहित	न संशयः=इसमें संशय नहिं है
अशरीरम्=शरीरसे रहित	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—सम्पूर्ण श्रुतियां आत्माको निर्गुण अर्थात् सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंसे रहित कथन करती हैं और मायामलसे भी रहित कथन करती हैं, नाशसे भी रहित और शरीरसे भी रहित तथा सबमें समरूप करके ही आत्माको कथन करती हैं सो पूर्वोक्त विशेषणोंकरके युक्त जो आत्मा है सो तू हे चित्त ! मेरेको ही जान इसमें संशय नहीं है । इस प्रकार अपने चित्तको अपना अनुभव कहते हैं ॥ २० ॥

साकारमनृतं विद्धि निराकारं निरन्तरम् ।
एतत्तत्त्वोपदेशेन न पुनर्भवसंभवः ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ।

साकारम्, अनृतम्, विद्धि, निराकारम्, निरन्तरम्, एतत्तत्त्वोपदेशेन, न, पुनः भवसंभवः ॥

पदार्थः ।

साकारम्=साकारको	एतत्तत्त्वोपदेशेन=इसी तत्त्वके उपदेशसे
अनृतम्=मिथ्या	पुनः=फिर
विद्धि=तू जान और	भवसंभवः=संसारका होना
निराकारम=निराकारको	न=नहीं होवेगा
निरन्तरम्=सद्रूप जान	

भावार्थः ।

ब्रह्माण्डके भीतर जितने साकार पदार्थ दिखाई पड़ते हैं इन सबोंको तुम मिथ्या जानो और जो कि सबको सत्ता देनेवाला निराकार चेतन है उसको तुम सद्रूप करके जानो यही यथार्थ उपदेश है इसके धारण करनेसे फिर जन्म-मरणरूपी संसार जीवको कदापि नहीं होता है ॥ २१ ॥

एकमेव समं तत्त्वं वदन्ति हि विपश्चितः ।
रागत्यागात्पुनश्चित्तमेकानेकं न विद्यते ॥२२॥

पदच्छेदः ।

एकम्, एव, समम्, तत्त्वम्; वदन्ति, हि, विपश्चितः रागत्यागात्, पुनः, चित्तम्, एकानेकम्, न, विद्यते ॥

पदार्थः ।

विपश्चितः=विद्वान् जन
एव हि=निश्चय करके
एकम्=एक ही
तत्त्वम्=आत्मतत्त्वको
समम्=समरूप
वदन्ति=कथन करते हैं
रागत्यागात्=रागके त्याग देनेसे
पुनः=फिर
चित्तम्=चित्त
एकानेकम्=द्वैत अद्वैतको भी
न विद्यते=नहीं जानता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-विपश्चित् जो ज्ञानवान् है सो संपूर्ण ब्रह्माण्डमें एक ही आत्मतत्त्वको समरूप करके कथन करते हैं जो आत्मा सर्वत्र एक है और सबमें सम है अर्थात् प्राणिमात्रमें तुल्य ही है विषयोंमें राग करके ही जीवोंका अनेक आत्मा भान होरहे हैं। जब चित्त रागका त्याग कर देता है उसे अनेक अर्थात् द्वैत अद्वैतका भान नहीं होता है किन्तु आत्मा ही ज्योंका त्यों एक रस अपनी महिमामें स्थित होजाता है ॥ २२ ॥

अनात्मरूपं च कथं समाधि-
रात्मस्वरूपं च कथं समाधिः ।

अस्तीति नास्तीति कथं समाधि-
मोक्षस्वरूपं यदि सर्वमेकम् ॥ ३३ ॥

पदच्छेदः ।

अनात्मरूपम्, च, कथम्, समाधिः, आत्मस्वरूपम्, च, कथम्, समाधिः, अस्ति, इति, नास्ति, इति कथम्, समाधिः, मोक्षस्वरूपम्, यदि, सर्वम्, एकम् ॥

पदार्थः ।

अनात्मरूपम्=अनात्मस्वरूपको
समाधिः=समाधि
कथम्=कैसे होसकती है
च=और
आत्मस्वरूपम्=आत्मस्वरूपकी
कथम्=किस प्रकार
समाधिः=समाधि होती है
च=और
अस्ति इति=है इस प्रकार
नास्ति इति=नहीं है इस प्रकार
कथं समाधिः=कैसेसमाधि होसकतीहै
मोक्षस्वरूपम्=मोक्षस्वरूप
यदि=जो
सर्वम्=सब
एकम्=एकही है तब कैसे समाधि होती है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-संसारमें दो ही पदार्थ हैं. एक तो आत्मा दूसरे अनात्मा सो दोनोंमें से एकमें भी समाधि व्यवहार नहीं बनता है। समाधि नाम एकाग्रताका है सो जो कि अनात्मस्वरूप जड़पदार्थ है उसमें तो समाधि किसी प्रकारसे भी नहीं बनती है क्योंकि उसको तो किसी प्रकारका ज्ञान ही नहीं है और जो कि चेतन आत्मा है वह शुद्ध है और ज्योंका त्यों विक्षेपादिकोंसे रहित अपनी महिमामें स्थित है उसमें भी समाधि नहीं बनती क्योंकि जो कि पहले एकाग्र नहीं उसीको एकाग्र होनेकी इच्छा होती है सो आत्मामें यह बात नहीं है और जो पदार्थ सदैव विद्यमानहै उसमें भी समाधि नहीं बन सकती है और जोकि नास्तिहै अर्थात् तीनों कालोंमें विद्यमान नहींहै उसमें तो

समाधिकी संभावना मात्र भी नहीं हो सकती है और फिर जो आत्माकी नित्यशुद्धमुक्तस्वरूप सर्वत्र पूर्ण और एक ही है अर्थात् द्वैतसे रहित है उसमें तो समाधिकी संभावना मात्र भी नहीं बनती है ॥ २३ ॥

विशुद्धोऽसि समं तत्त्वं विदेहस्त्वमजोऽव्ययः ।
जानामीह न जानामीत्यात्मानं मन्यसे कथम् ॥२४॥

पदच्छेदः ।

विशुद्धः असि, समम्, तत्त्वम्, विदेहः, त्वम्, अजः, अव्ययः, जानामि, इह, न, जानामि, इति, आत्मानम् मन्यसे, कथम् ॥

पदार्थः ।

त्वम्=तू
विशुद्धोऽसि=विशेषकरके शुद्ध है
समम्=एकरस
तत्त्वम्=आत्मतत्त्व है
विदेहः=विदेह है तू
अजः=जन्मसे रहित है
अव्ययः=नाशसे रहित है
इह=लोकमें
आत्मानम्=आत्माको
जानामि=मैं जानता हूं
न जानामि=मैंआत्माकोनहींजानताहूं
इति=इस प्रकार
कथम्=कैसे
मन्यसे=तू मानता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे चित्त ! अथवा शिष्य । तू शुद्धस्वरूप है मायामलसे रहित है और सर्वत्र एकरस सम भी है फिर तू विदेह है अर्थात् वास्तवसे तुम्हारा देहके साथ कोई भी सम्बंध नहीं है क्योंकि तू अज अर्थात् जन्मसे रहित है इसी वास्ते अव्यय भी है अर्थात् नाशसे भी रहित है ! जब ऐसा तेरा स्वरूप है तब फिर तुम कैसे कहता है कि मैं आत्माको जानता हूं, मैं आत्माको नहीं जानताहूं, क्योंकि इस प्रकारका तेरा कथन युक्त नहींहै॥२४॥

ननु–इस वार्त्ताको कौन कहता है कि, तू मैं अब अव्यय हूँ! उच्यते:–

तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च स्वात्मा हि प्रतिपादितः ।
नेति नेति श्रुतिर्ब्रूयादनृतं पाञ्चभौतिकम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ।

तत्त्वमस्यादिवाक्यैः, च, स्वात्मा, हि, प्रतिपादितः, नेति, नेति, श्रुतिः, ब्रूयात्, अनृतम्, पाञ्चभौतिकम् ॥

पदार्थः ।

तत्त्वमस्यादिवाक्यैः=“तत्त्वमसि” आदि वाक्योंसे
हि=निश्चयकरके
स्वात्मा=अपना आत्मा ही
प्रतिपादितः=प्रतिपादन किया है
नेति नेति=नेति नेति इस प्रकार
श्रुतिः=श्रुति
ब्रूयात्=कथन करती है
पाञ्चभौतिकम्=पांचभौतिक प्रपञ्च
अनृतम्=सब मिथ्या है

भावार्थः ।

वेदने “ तत्त्वमसि ” आदि वाक्यों करके अपना आत्मा ही प्रतिपादन किया है और श्रुति भी “ नेति नेति ” अर्थात् यह जितना दृश्यमान जगत् है सो वास्तवसे ब्रह्ममें नहीं है ऐसे कहती है और जितना पाञ्चभौतिक जगत् है यह सब मिथ्या है ॥ २५ ॥

आत्मन्येवात्मना सर्वं त्वया पूर्णं निरन्तरम् ।
ध्याता ध्यानं न ते चित्तं निर्लज्जं ध्यायते कथम् ॥ २६ ॥

पदच्छेदः ।

आत्मनि, एव, आत्मना, सर्वम्, त्वया, पूर्णम्, निरन्तरम्, ध्याता, ध्यानम्, न, ते, चित्तम्, निर्लज्जम्, ध्यायते, कथम् ॥

पदार्थः ।

त्वया=तुम्हारे	ध्यानम्=ध्यान
आत्मना=आत्माकरके	ते न=तुम्हारे नहीं हैं
आत्मनि=आत्मामें	निर्लज्जम्=निर्लज्ज
निरन्तरम्=निरंतर ही.	चित्तम्=चित्त
सर्वम्=सब	कथम्=कैसे
पूर्णम्=पूर्ण है	ध्यायते=ध्यान करता है ?
ध्याता=ध्यानवाला और	

भावार्थः ।

तुम्हारे करके तुम्हारेमें अर्थात् व्यापक तुम्हारे आत्मामें निरन्तर एकरस सम्पूर्ण यह जगत् पूर्ण होरहा है, दूसरा तो कोई भी तुम्हारेसे विना नहीं है । जब कि एक ही चेतन आत्मा सर्वत्र व्यापक है तब फिर मैं ध्यानका कर्ता हूँ, आत्मा ध्येय है, यह व्यवहार कैसे बनता है किन्तु किसी तरहसे भी नहीं बनता हैं । फिर लज्जासे रहित चित्त ध्यान कैसे करता है ? क्योंकि एकमें तो ध्यान बनता ही नहीं है ॥ २६ ॥

शिवं न जानामि कथं वदामि
शिवं न जानामि कथं भजामि ।
अहं शिवश्चेत्परमार्थतत्त्वं
समस्वरूपं गगनोपमं च ॥ २७ ॥

पदच्छेदः ।

शिवम्, न, जानामि, कथम्, वदामि, शिवम्, न, जानामि, कथम्, भजामि, अहम्, शिवः, चेत्, परमार्थतत्त्वम्, समस्वरूपम्, गगनोपमम्, च ॥

पदार्थः ।

शिवम्=कल्याणरूपको	चेत्=यदि
न जानामि=मैं नहीं जानता हूं	अहम्=मैं ही
कथम्=किस प्रकार	शिवः=कल्याणरूप हूँ
वदामि=मैं उसको कहूँ	परमार्थतत्त्वम्=परमार्थस्वरूप भी हूँ
शिवम्=शिवको	समस्वरूपम्=समस्वरूप भी हूँ
न जानामि=मैं नहीं जानता हूँ	च=और
कथम्=किस प्रकार	गगनोपमम्=आकाशके तुल्य भीहूँ ।
भजामि=कैसे भजूं	

भावार्थः ।

कल्याणरूप ब्रह्मको मैं नहीं जानता हूं अर्थात् ज्ञानेंद्रियों करके मैं उसके स्वरूपको नहीं विषय कर सकता हूं तो फिर मैं कैसे उसके स्वरूपको कहूं ? जव कि वह किसी भी इंद्रिय करके जाना नहीं जाता है तब फिर उसका भजन मैं कैसे करूं ? क्योंकि विना जानेका भजन हो नहीं सकता है । यदि वेद हमको ही शिवरूप करके कथन करता है और मैं ही शिवरूप परमार्थ स्वरूप और आकाशके तुल्य अचल हूं तब भी फिर जानना और भजन नहीं बन सकता है । क्योंकि जो चेतन सबको जाननेवाला है उसका जानना किस करके होसकता है ? किन्तु किसी करके भी नहीं हो सकता है ॥ २७ ॥

नाहं तत्त्वं समं तत्त्वं कल्पनाहेतुवर्जितम् ।
ग्राह्यग्राहकनिर्मुक्तं स्वसंवेद्यं कथं भवेत् ॥ २८ ॥

पदच्छेदः ।

न, अहम्, तत्त्वम्, समम्, तत्त्वम्, कल्पनाहेतुवर्जितम्, ग्राह्यग्राहकनिर्मुक्तम्, स्वसंवेद्यम्, कथम्, भवेत् ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं	ग्राह्यग्राहकनिर्मुक्तम्=ग्राह्य और ग्राहक व्यवहारसे रहित हूं
तत्त्वम्=तत्त्व	स्वसंवेद्यम्=स्वसंवेद्य भी
न=नहीं हूँ और	कथम्=कैसे
समम्=सम	भवेत्=होवे ?
तत्त्वम्=तत्त्व भी नहीं हूं	
कल्पनाहेतुवर्जितम्=कल्पना और हेतुसे भी रहित हूं	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं भिन्नतत्त्व और समतत्त्व भी नहीं हूं और कल्पना तथा कल्पनाके कारणसे भी रहित हूं । और ग्राह्य (ग्रहण करने योग्य) तथा ग्राहक (ग्रहण करनेवाला) के व्यवहारसे भी रहित हूँ क्योंकि एकमें ग्राह्यग्राहक व्यवहार ही नहीं बनता है तब फिर स्वसंवेद्यता कैसे बनेगी किन्तु नहीं बनेगी ॥ २८ ॥

अनन्तरूपं नहि वस्तु किञ्चित्
तत्त्वस्वरूपं न हि वस्तु किञ्चित् ।
आत्मैकरूपं परमार्थतत्त्वं
न हिंसको वापि न चाप्यहिंसा ॥ २९ ॥

पदच्छेदः ।

अनन्तरूपम्, नहि, वस्तु, किञ्चित्, तत्त्वस्वरूपम्, नहि, वस्तु, किञ्चित् आत्मा, एकरूपम्, परमार्थतत्त्वम्, न, हिंसकः, वा, अपि, न, च, अपि, अहिंसा ॥

पदार्थः ।

अनन्तरूपम्=ब्रह्म चेतन अनन्तरूप हैं उससे भिन्न	नहि=नहीं है
वस्तु किंचित=किञ्चित् वस्तु भी सत्य रूप	तत्त्वस्वरूपम्=वह ब्रह्म ही वास्तवरूप भी है उससे भिन्न
	वस्तु किञ्चित्=सद्रूप वस्तु कोई
	नहि=नहीं है, वह

आत्मा=आत्मा ब्रह्म
एकरूपम्=एक रूप ही है और
परमार्थ- तत्त्वम् } =परमार्थसे तत्त्वस्वरूप भी है
वा अपि=अथवा निश्चय करके
न हिंसकः=न तो कोई हिंसक है
अपि=निश्चय करके
अहिंसा=अहिंसा भी
न च=नहीं है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह चेतन आत्माका अनन्तरूप हैं अर्थात् उसका अन्त नहीं है किन्तु परिच्छिन्न है, उससे भिन्न और कोई भी वस्तु अनन्त नहीं है किन्तु परिच्छिन्न है, अथवा वह आत्मा अनन्त है अर्थात् नाशसे रहित है और सब वस्तु नाशसे रहित नहीं है किन्तु नाशवान् हैं और आत्मा सदैव एकरूपसे ही रहता है और वही वास्तविक तत्त्व भी है। आत्मासे भिन्न और कुछ भी नहीं है इसवास्ते न तो कोई हिंसक अर्थात् हिंसाका कर्ता है और न अहिंसा वास्तवसे है क्योंकि द्वैतको लेकरके अहिंसा और हिंसकका व्यवहार हो, जब कि द्वैत ही नहीं है तो फिर अहिंसा हिंसकका व्यवहार कैसे होसके, किन्तु कदापि नहीं होसकता है॥२९॥

घटे भिन्ने घटाकाशं सुलीनं भेदवर्जितम् ।
शिवेन मनसा शुद्धो न भेदः प्रतिभाति मे ॥ ३० ॥

पदच्छेदः ।

घटे, भिन्ने, घटाकाशम्, सुलीनम्, भेदवर्जितम्, शिवेन, मनसा, शुद्धः, न, भेदः, प्रतिभाति, मे ॥

पदार्थः ।

घटे भिन्ने=घटके नाश होनेपर
घटाकाशम्=घटाकाश (ता है
सुलीनम्=महाकाशमें लीन होजा-
भेदवर्जितम्=भेदसे रहित होजाताहै
शिवेन=शुद्ध
मनसा=मनकरके
शुद्धः=शुद्ध प्रतीत होता है इसवास्ते
मे=मेरेको
भेदः=आत्माका भेद भी
न=नहीं
प्रतिभाति=प्रतीत होता है ।

भावार्थः ।

जबतक घट बना है तबतक घटाकाश यह व्यवहार भी हो जाता है, जब घटका नाश हो जाता है तब घटाकाश यह व्यवहार भी नहीं होता है, क्योंकि घटाकाश महाकाशमें लीन हो जाता है। इसी प्रकार जबतक लिंगशरीररूपी उपाधि विद्यमान है तबतक ही जीवव्यवहार भी होता है, आत्मज्ञान करके अज्ञानके नाश होनेपर अज्ञानका कार्य जो लिंगशरीररूपी उपाधि है उसके नाश होनेपर जीवात्मा भी परमात्मामें लीन होजाता है, अर्थात् फिर भेदव्यवहार नहीं होता है और अशुद्ध मनवालेको अशुद्ध भान होता है। शुद्ध मनकरके आत्मा भी पुरुषको शुद्ध प्रतीत होता है। सो दत्तात्रेयजी कहते हैं-जिसवास्ते शुद्धमन करके शुद्ध आत्माको हमने जान लिया है इसवास्ते आत्माका भेद हमको नहीं भान होता है ॥ ३० ॥

न घटो न घटाकाशो न जीवो जीवविग्रहः ।
केवलं ब्रह्म संविद्धि वेद्यवेदकवर्जितम् ॥ ३१ ॥

पदच्छेदः ।

न, घटः, न, घटाकाशः, न, जीवः, जीवविग्रहः, केवलम्, ब्रह्म, संविद्धि, वेद्यवेदकवर्जितम् ॥

पदार्थः ।

न घटः=घट नहीं है	केवलम्=केवल
घटाकाशः=घटाकाश भी	ब्रह्म=ब्रह्मचेतनको
न=नहीं है	संविद्धि=तू सम्यक् जान, कैसा ब्रह्म ?
न जीवः=जीव भी नहीं है	वेद्यवेदकवर्जितम्=जन्यज्ञानकेविषयसे है औरजन्यज्ञानसे रहितहै
जीवविग्रहः=जीवका जीवित्व भी नहीं है	

भावार्थः ।

जब कि एकरस भेदसे रहित ब्रह्म चेतन ही वास्तवसे सद्रूप है तब उपाधिरूप घट भी नहीं है घटके अभाव होनेसे वास्तवसे घटाकाश भी नहीं है,

इसी प्रकार अन्तःकरणरूपी उपाधिके अभावसे जीव भी नहीं है, क्योंकि जीवनमें अन्तःकरणावच्छिन्न चेतनका है सो अन्तःकरणके मिथ्या होनेसे जीवका विग्रह अर्थात् अन्तःकरणविशिष्ट जीवका स्वरूप भी फिर नहीं रहता है किन्तु केवल अद्वैतसे भले प्रकार तू ब्रह्मको जान-जो कि विषय विषयीभावसे भी रहता है ॥ ३१ ॥

सर्वत्र सर्वदा सर्वमात्मानं सततं ध्रुवम् ।
सर्वं शून्यमशून्यं च तन्मां विद्धि न संशयः ॥ ३२ ॥

पदच्छेदः ।

सर्वत्र, सर्वदा, सर्वम्, आत्मानम्, सततम्, ध्रुवम्, सर्वम्, शून्यम्, अशून्यम्, च, तत्, माम्, विद्धि, न, संशयः ॥

पदार्थः ।

आत्मानम्=आत्माको ही	शून्यम्=शून्य जान
सर्वत्र=सर्वत्र	च=और आत्माको
सर्वदा= सर्वकाल	अशून्यम्=शून्यसे रहित जान
सर्वम्=सर्वरूप	तत्=सो आत्मा
सततम्=निरन्तर	माम्=मेरेको ही
ध्रुवम्=नित्य	विद्धि=तू जान
विद्धि=तू जान और	न संशयः=इसमें संशय नहीं है ।
सर्वम्=सर्व प्रपंचको	

भावार्थः ।

सर्वकाल सर्वत्र सर्वरूप एकरस और नित्य आत्माको ही तुम जानो क्योंकि यह जितना दृश्यमान जगत् है सो सब स्वरूपसे शून्य है अर्थात् वास्तवसे असद्रूप है, और वह आत्मा अशून्य है शून्यसे रहित शून्यका भी वह साक्षी है । दत्तात्रेयजी कहते हैं-हे शिष्य ! सो आत्मा तुम मुझको ही जानो इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥ ३२ ॥

वेदा न लोका न सुरा न यज्ञा
वर्णाश्रमौ नैव कुलं न जातिः ।

न धूममार्गो न च दीप्तिमार्गो
ब्रह्मैकरूपं परमार्थतत्त्वम् ॥ ३३ ॥

पदच्छेदः।

वेदाः, न, लोकाः, न, सुराः, न, यज्ञाः, वर्णाश्रमौ, न, एव, कुलम्, न, जातिः न, धूममार्गः, न, च, दीप्तिमार्गः, ब्रह्मैकरूपम्, परमार्थतत्त्वम् ॥

पदार्थः।

वेदाः=वास्तवसे वेद भी	कुलम्=कुल भी कोई
न=नहीं हैं	न=नहीं है
लोकाः=लोक भी	जातिः=जाति भी
न=नहीं हैं	न=नहीं है
सुराः=देवता भी	धूममार्गः=धूममार्ग भी
न=नहीं हैं	न=नहीं है
यज्ञाः=यज्ञ भी	दीप्तिमार्गः=अग्निमार्ग भी
न=नहीं हैं	न च=नहीं है
वर्णाश्रमौ=वर्णाश्रम भी	ब्रह्मैकरूपम्=ब्रह्म ही केवल एकरूप
न=नहीं हैं	परमार्थतत्त्वम्=परमार्थसे तत्त्व वस्तु है।
एव=निश्चयकरके	

भावार्थः।

स्वामी दत्तात्रेयजीका तात्पर्य यह है कि, जैसे सुषुप्तिकालमें बाहरका जितना प्रपञ्च है इसका अभाव हो जाता है और जाग्रत् अवस्थामें सब प्रपञ्च ज्योंका त्यों बना रहता है इसी प्रकार चतुर्थी भूमिकावाले ज्ञानीकी दृष्टिमें तो सम्पूर्ण वेद शास्त्र और यज्ञादिक कर्मरूप प्रपञ्च सब बना रहता है। परन्तु जीवन्मुक्त छठी और सप्तमी अवस्थावालेकी दृष्टिमें वेद, लोक, देवता और उत्तरायण दक्षिणायन आदि कुछ भी नहीं रहता है, किन्तु परमार्थसे सद्रूप ब्रह्म ही उसकी दृष्टिमें रहता है उसीकी दृष्टिका यह निरूपण है॥ ३३॥

व्याप्यव्यापकनिर्मुक्तं त्वमेकः सफलो यदि ।
प्रत्यक्षं चापरोक्षं च ह्यात्मानं मन्यसे कथम् ॥ ३४ ॥

पदच्छेदः ।

व्याप्यव्यापकानिर्मुक्तम्, त्वम्, एकः, सफलः, यदि, प्रत्यक्षम्, च, अपरोक्षम्, च, हि, आत्मानम्, मन्यसे, कथम् ॥

पदार्थः ।

यदि=यदि
त्वम्=तू
व्याप्यव्याप-कानिर्मुक्तम्=व्याप्य और व्यापकभावसे रहित है
एकः=एक ही
सफलः=फलके सहित है
हि=निश्चय करके
प्रत्यक्षम्=प्रत्यक्ष
च=और
अपरोक्षम्=अपरोक्ष
आत्मानम्=आत्माको
कथम्=कसे
मन्यसे=तू मानता है ।

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपने चित्तको अग्रणी करके सर्व मुमुक्षुओंके प्रति उपदेश करते हैं-हे शिष्यरूपी चित्त ! तू एक ही सबमें फलके सहित है अर्थात् जीवन्मुक्तिरूपी फलके सहित है, व्याप्य और व्यापकभावसे रहित है तब फिर तू आत्माको प्रत्यक्ष और अपरोक्ष कैसे मानता है ? यह व्यवहार तो किसी प्रकार एक ही अपने आत्मामें नहीं बन सकता है और बन्ध मोक्ष व्यवहार भी नहीं बनता है ॥ ३४ ॥

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे ।
समं तत्त्वं न विन्दन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम् ॥ ३५ ॥

पदच्छेदः ।

अद्वैतम्, केचित्, इच्छन्ति, द्वैतम्, इच्छन्ति, च, अपरे, समं, तत्त्वम्, न, विन्दन्ति, द्वैताद्वैतविवर्जितम् ॥

पदार्थः।

कोचित्=कोई एक विद्वान्	च=और वे सब
अद्वैतम्=अद्वैतकी	समं तत्त्वम्=समतत्त्वको
इच्छन्ति=इच्छा करते हैं	न=नहीं
अपरे=और कोई	विन्दन्ति=जानते हैं जो कि
द्वैतम्=द्वैतकी	द्वैताद्वैतविवर्जितम्=द्वैताद्वैतसे रहित है
इच्छन्ति=इच्छा करते हैं	

भावार्थः।

कोई एक आधुनिक मुमुक्षु अथवा आधुनिक वेदान्ती अद्वैतकी ही इच्छा करते हैं परन्तु अद्वैतमें उनका पूरा २ विश्वास नहीं है, क्योंकि भक्तोंके सामने तो बडा भारी अद्वैत ज्ञान छांटते हैं परन्तु जब मरनेका समय आजाता है तब गंगा और काशीमें मरनेके वास्ते दौडते हैं, तिस कालमें अपने भक्तोंसे कहते हैं कि, हमको गंगा या काशी लेचलो जिससे वहांपर हमारे शरीरका त्याग हो, बाजे २ नवीन वेदान्ती हरिद्वार और काशी आदि तीर्थोंमें रहकर भी बरसातके दिनोंमें भी वहींकी नदियोंका मैला जल पीते हैं और उन्हींमें स्नान करके रोगी भी हो जाते हैं तब भी वह अपने हठका त्याग नहीं करते हैं, जड जलादिकोंसे अपने कल्याणको चाहते हैं अद्वैतपर उन मूर्खोंका विश्वास नहीं है उन्हींपर कहा है कि, कोई एक मूर्ख वेदान्ती केवल अद्वैतकी इच्छामात्र ही करते हैं, विश्वास नहीं करते हैं, और कोई एक वैष्णव और आचारी वगैरह मतोंवाले द्वैतकी ही इच्छा करते हैं जो मोक्षावस्थामें भी हम जुदा रहकर विषयभोगोंको भोगते रहें परन्तु वह द्वैतके असली स्वरूपको नहीं जानते हैं इसवास्ते मिथ्या जगत्को वह सत्य मानते हैं और तिलक छापरूपी पांखडोंको धर्म मानते हैं, जीव ईश्वरके यथार्थ रूपको तो वह जानते ही नहीं हैं इसवास्ते वह भी केवल द्वैतमात्रकी इच्छा करते हैं, अपने कल्याणकी इच्छाको वह नहीं करते हैं इसवास्ते पूर्वोक्त दोनों ही असली तत्त्वको नहीं जानते हैं वह तत्त्व कैसा है? द्वैत और अद्वैतसे रहित है, क्योंकि ब्रह्मचेतनसे अतिरिक्त यदि दूसरा कोई सत्यपदार्थ हो तब तो द्वैत है और अद्वैत भी दूसरेकी अपेक्षा करके ही कहा जाता है सो ब्रह्मसे भिन्न जब कि दूसरा कोई भी पदार्थ नहीं है तब द्वैताद्वैतसे भी वर्जित है ॥ ३५ ॥

श्वेतादिवर्णरहितं शब्दादिगुणवर्जितम् ।
कथयन्ति कथं तत्त्वं मनोवाचामगोचरम् ॥ ३६ ॥

पदच्छेदः ।

श्वेतादिवर्णरहितम्, शब्दादिगुणवर्जितम्, कथयन्ति, कथम्, तत्त्वम्, मनोवाचाम्, अगोचरम् ॥

पदार्थः ।

श्वेतादिवर्णरहितम् =श्वेतादि वर्णोंसे रहित	अगोचरम्=अविषयको
शब्दादिगुणवर्जितम् = शब्दादि गुणोंसे भी रहित	कथम्=किस प्रकार
	तत्त्वम्=तत्त्व
मनोवाचाम्=मन और वाणीके	कथयन्ति=कथन करते हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं कि, जिसमें कि श्वेत, पीत आदि वर्ण होते हैं और शब्दादिक गुण होते हैं वही मन और वाणीका विषय होता है अर्थात् उसीको मन और वाणी कथन करते हैं और जो कि निर्गुण ब्रह्म हैं उसमें तो कोई भी गुण नहीं है अर्थात् श्वेत, पीतादि वर्णभी सब उसमें नहीं हैं और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये गुण भी उसमें नहीं हैं तब फिर तिसको तत्त्वरूप करके कैसे कथन करते हैं अर्थात् तत्त्वरूप करके तिसका कथन भी नहीं बनता है ॥ ३६ ॥

यदाऽनृतमिदं सर्वं देहादि गगनोपमम् ।
तदा हि ब्रह्म संवेत्ति न ते द्वैतपरम्परा ॥ ३७ ॥

पदच्छेदः ।

यदा, अनृतम्, इदम्, सर्वम्, देहादि, गगनोपमम्, तदा, हि, ब्रह्म, संवेत्ति, न, ते, द्वैतपरम्परा ।

पदार्थः ।

यदा=जिस कालमें	तदा=उसी कालमें
इदम्=इस दृश्यमान	हि=निश्चय करके
सर्वम्=सम्पूर्ण प्रपञ्चको	ब्रह्म=ब्रह्मको
अनृतम्=मिथ्या जानता है	संवेत्ति=सम्यक् जानता है
देहादि गगनोपमम् =शरीरादिकोंको आकाशके तुल्य शून्य जानता है	ते=तुम्हारेको तब
	द्वैतपरम्परा=द्वैतकी परम्पराका भी
	न=भान नहीं होवेगा

भावार्थः ।

जिस कालमें विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण जगत्को मिथ्या जानलेता है और शरीरादिकोंको आकाशके तुल्य शून्य जान लेता है उसी कालमें ब्रह्मको भी यह भले प्रकार जान जाता है तब द्वैतकी परंपराका भी भान तिसको नहीं होता है ॥ ३७ ॥

परेण सहजात्मापि ह्यभिन्नः प्रतिभाति मे ।
व्योमाकारं तथैवैकं ध्याता ध्यानं कथं भवेत् ॥३८॥

पदच्छेदः ।

परेण, सहजात्मा, अपि, हि, अभिन्नः, प्रतिभाति, मे, व्योमाकारम्, तथा, एव, एकम्, ध्याता, ध्यानम्, कथम्, भवेत् ॥

पदार्थः ।

परेण=परब्रह्मके	व्योमाकारम्=व्यापक है
सहजात्मा=साथ अनादि आत्मा	तथा एव=तैसे ही निश्चय करके
अपि हि=निश्चय करके	एकम्=एक है तब फिर
मे=मुझको	ध्याता=ध्यानका कर्ता और
प्रतिभाति=भान होता है फिर कैसा वह है	ध्यानम्=ध्येयाकारवृत्ति
	कथम्=कसे
अभिन्नः=ब्रह्मसे अभिन्न है और	भवेत्=होवे

भावार्थः।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—जैसे ब्रह्म चेतन अनादि है तैसे जीव चेतन भी अनादि है और जीव ब्रह्मका अभेद भी हमको भान होता है। फिर वह ब्रह्म चेतन एक है और आकाशकी तरह व्यापक भी है। जब कि चेतन सर्वत्र एकही है तब फिर एकमें ध्याता और ध्यानका व्यवहार कैसे हो सकता है? किन्तु कदापि नहीं. क्योंकि ध्याता ध्यानका व्यवहार भेदको ही लेकरके होता है अभेद दृष्टिको लेकरके नहीं होसकता है। **ननु**—ज्ञानी लोगभी एकान्तमें बैठकर ध्यान करते हैं और उनको अभेद निश्चय भी है तब फिर आप कैसे कहते हैं कि, ध्याता ध्यानका व्यवहार नहीं होता है॥ **उच्यते**—ज्ञानी दो प्रकारके हैं, एक तो चतुर्थीभूमिकावाले जो कि आचार्य्य कहेजाते हैं, दूसरी, पांचवीं, छठी, सप्तमी इन तीन भूमिकावाले जीवन्मुक्त कहे जाते हैं सो दोनोंमें जो कि चतुर्थ भूमिकावाले हैं वह चित्तके विक्षेपकी निवृत्तिके वास्ते और जिज्ञासुओंकी अन्तंमुखप्रवृत्ति करानेके वास्ते ध्यानको करते हैं और जो कि जीवन्मुक्त हैं उनके चित्तोंमें विक्षेप नहीं है। अतएव उनकी दृष्टिमें ध्याता ध्यानका व्यवहार भी नहीं है सो उन्ही जीवन्मुक्तोंकी दृष्टिको लेकरके दत्तात्रेयजीने कहा है॥ ३८॥

यत्करोमि यदश्नामि यज्जुहोमि ददामि यत्।
एतत्सर्वं न मे किञ्चिद्विशुद्धोऽहमजोऽव्ययः॥ ३९॥

पदच्छेदः।

यत्, करोमि, यत्, अश्नामि, यत्, जुहेमि, ददाम, यत्, एतत्, सर्वम्, न, मे, किञ्चित्, विशुद्धः, अहम्, अजः, अव्ययः॥

पदार्थः।

यत्=जो कुछ
करोमि=मैं करता हूँ
यत्=जो कुछ
अश्नामि=मैं भक्षण करता हूँ
यत्=जो कुछ
जुहोमि=मैं हवन करता हूं
यत्=जो कुछ
ददामि=म देता हूँ

एतत्=यह
सर्वम्=सम्पूर्ण
मे=मेरा
किञ्चित्=किञ्चित् भी
न=नहीं है क्योंकि
अहम्=मैं
विशुद्धः=शुद्धस्वरूप हूं
अजः=जन्मसे रहित हूँ
अव्ययः=नाशसे रहित हूं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-जो कर्म मैं करता हूं फिर जो कुछ कि मैं खाता पीता हूँ, और जो कि हवन करता हूं, जो कुछ देता हूँ यह सब कुछ मैं नहीं करता हूँ क्योंकि ये सब इन्द्रियोंके धर्म हैं सो इन्द्रियें सब अपने अपने धर्मोंको करती हैं। मेरा इनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है मैं तो शुद्ध हूँ, अज अर्थात् जन्मसे रहित हूँ, नाशसे भी रहित हूँ॥ ३९॥

सर्वं जगद्विद्धि निराकृतीदं सर्वं जगद्विद्धि विकारहीनम्। सर्वं जगद्विद्धि विशुद्धदेहं सर्वं जगद्विद्धि शिवैकरूपम्॥ ४०॥

पदच्छेदः।

सर्वम्, जगत्, विद्धि, निराकृति, इदम्, सर्वम्, जगत्, विद्धि, विकारहीनम्, सर्वम्, जगत्, विद्धि, विशुद्धदेहम्, सर्वम्, जगत्, विद्धि, शिवैकरूपम्॥

पदार्थः।

सर्वम्=संपूर्ण
जगत्=जगत्को
निराकृति=आकारसे रहित
विद्धि=तू जान
इदम्=इस दृश्यमान
सर्वम्=संपूर्ण
जगत=जगत्को
विकारहीनम्=विकारसे रहित
विद्धि=तू जान
सर्वम्=संपूर्ण

जगत्=जगत्को
विशुद्ध-देहम् } =ब्रह्मका शरीर
विद्धि=तू जान
सर्वम्=संपूर्ण
जगत्=जगत्को
शिवैकरूपम्=कल्याणस्वरूप
विद्धि=तू जान

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हे चित्त ! सपूर्ण जगत्को तू निराकार ही जान क्योंकि, कल्पित वस्तु साकार नहीं होती है । जिसवास्ते यह जगत सब ब्रह्ममें कल्पित है इसवास्ते निराकार है और फिर निराकार वस्तु विकारी भी नहीं होती है इसीवास्ते संपूर्ण इस जगतको विकारसे रहित जान और इस जगत्को विशुद्ध देह अर्थात् शुद्धस्वरूप तथा कल्याणस्वरूप भी तू जान, क्योंकि शुद्धस्वरूप और कल्याणस्वरूप ब्रह्म कल्पित जगत् भिन्न नहीं है ॥४०॥

तत्त्वं त्वं हि न संदेहः किं जानाम्यथ वा पुनः ।
असंवेद्यं स्वसंवेद्यमात्मानं मन्यसे कथम् ॥ ४१ ॥

पदच्छेदः ।

तत्, त्वम्, हि, न, संदेहः किम्, जानामि, अथवा, पुनः, असंवेद्यम्, स्वसंवेद्यम्, आत्मानम्, मन्यसे, कथम् ॥

पदार्थः ।

हि=निश्चयकरके
तत् त्वम्=सो तू है
त्वम् तत्=तू सो है
संदेहः=इसमें संदेह
न=नहीं है
अथवा=अथवा
पुनः=फिर और
किम्=क्या
जानामि=मैं जानूं
आत्मानम्=आत्माको
असंवेद्यम्=असंवेद्य
स्वसंवेद्यम्=स्वसंवेद्य
कथम्=कैसे तू
मन्यसे=मानता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--सो ब्रह्म तू है और तू ही सो ब्रह्म है इसमें किसी प्रकारका भी संदेह नहीं है क्योंकि वेद भगवान् आप ही इस वार्ताको स्पष्टरूपसे कहता है तो क्या फिर तुम आत्माको असंवेद्य किसीसे भी नहीं जानने योग्य हैं और (स्वसंवेद्य अपनेसे ही जानने योग्य) ही कैसे मानते हो तात्पर्य यह है कि, जब एक ही चेतन आत्मा ब्रह्म सर्वत्र है तब फिर उपयुक्त सब व्यवहार किसी प्रकारसे भी नहीं बनता है ॥ ४१ ॥

मायाऽमाया कथं तात छायाऽच्छाया न विद्यते ।
तत्त्वमेकमिदं सर्वं व्योमाकारं निरञ्जनम् ॥ ४२ ॥

पदच्छेदः ।

माया अमाया, कथम्, तात, छाया, अच्छाया, न, विद्यते तत्, त्वम्, एकम्, इदम्, सर्वम्, व्योमाकारम्, निरञ्जनम्॥

पदार्थः ।

तात=हे तात
माया=माया और
अमाया=अमाया
कथम्=कैसे है
छाया=छाया और
अच्छाया=अच्छाया
न=नहीं
विद्यते=विद्यमान है
तत्=सो
त्वम्=तू
एकम्=एक ही है
इदम्=यह
सर्वम्=संपूर्ण जगत्
व्योमाकारम्=आकाशके तुल्य आकारवाला
निरञ्जनम्=निरञ्जन ही है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--जब कि चेतन निराकार निरवयव एक ही है तब फिर माया और अमाया, छाया और अच्छाया यह सब व्यवहार कैसे हो

सकता है ? सो ब्रह्म चेतन एक ही है और वह तू ही है । यह जितना कि दृश्यमान जगत् है, सो सब आकाशके तुल्य आकारवाला है अर्थात् ब्रह्मरूप है और वह ब्रह्म मायामलसे रहित है ॥ ४२ ॥

आदिमध्यान्तमुक्तोऽहं न बद्धोऽहं कदाचन ।
स्वभावनिर्मलः शुद्धः इति मे निश्चिता मतिः ॥४३॥

पदच्छेदः ।

आदिमध्यान्तमुक्तः, अहम्, न, बद्धः अहम्, कदाचन, स्वभावनिर्मलः, शुद्धः, इति, मे, निश्चिता, मतिः ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं	स्वभावनिर्मलः=स्वभावसे ही निर्मल हूं
आदिमध्यान्तमुक्तः=आदि मध्य और अन्तसे रहित हूं और	शुद्धः=शुद्ध हूं
अहम्=मैं	इति=इस प्रकार की
कदाचन=कभी	मे=मेरी
बद्धः=बद्ध	निश्चिता=निश्चित
न=नहीं हूं	मतिः=बुद्धि है
अहम्=मैं	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं जो वस्तु कि अपनी उत्पत्तिसे पहले न हो किन्तु उत्पत्तिसे पीछे हो वह आदिवाली कही जाती है और जो उत्पत्तिसे पहले और नाशसे उत्तर न हो वही मध्यवाली और अन्तवाली भी कही जाती है सो आत्मा ऐसा नहीं है कि तु आदि, मध्य, अन्त तीनोंसे रहित अर्थात् न उसका कोई आदि है, न मध्य है, न अन्त है, किन्तु एकरस ज्योंका त्यों है सो मेरा स्वरूप है इस वास्ते मैं कदापि बद्ध नहीं होता हूँ और स्वभावसे ही निर्मल हूँ शुद्ध हूँ ऐसा मेरा निश्चय है ॥ ४३ ॥

महदादि जगत्सर्वं न किंचित्प्रतिभाति मे।
ब्रह्मैव केवलं सर्वं कथं वर्णाश्रमस्थितिः ॥ ४४॥

पदच्छेदः।

महदादि, जगत्, सर्वम्, न, किंचित्, प्रतिभाति, मे, ब्रह्म, एव, केवलम्, सर्वम्, कथम्, वर्णाश्रमस्थितिः ॥

पदार्थः।

महदादि=महत्तत्त्व आदिसे लेकर
सर्वम्=संपूर्ण
जगत्=जगत्
किञ्चित्=किञ्चित् भी
मे=मुझको
प्रतिभाति=भान
न=नहीं होता है
ब्रह्म=ब्रह्म ही
एव=निश्चय करके
केवलम्=केवल
सर्वम्=सर्वरूप है
वर्णाश्रम स्थितिः=वर्णाश्रमकी स्थिति
कथम्=कैसे हो सकती है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं कि, महत्तत्त्व आदिसे लेकर जितने तत्त्वकारण सांख्यके मतमें हैं और उन सम्पूर्ण तत्त्वोंका कार्यरूप जितना यह जगत् है सो सब मेरेको किंचित् भी प्रतीत नहीं होता है क्योंकि केवल द्वैतसे रहित आनन्द-रूप ब्रह्म ही हमको सर्वत्र ज्योंका त्यों भान होता है जब कि ब्रह्मसे भिन्न दूसरा कोई भी वस्तु हमको भान नहीं होता तो फिर हमारी दृष्टिमें वर्णाश्र-मकी स्थिति अर्थात् विभाग भी कैसे सिद्ध होवे ॥ ४४ ॥

जानामि सर्वथा सर्वमहमेको निरन्तरम्।
निरालम्बमशून्यं च शून्यं व्योमादिपञ्चकम् ॥४५॥

पदच्छेदः।

जानामि, सर्वथा, सर्वम्, अहम्, एकः, निरन्तरम्, निरालम्बम्, अशून्यम्, च, शून्यम्, व्योमादिपञ्चकम् ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं
सर्वम्=सबको
सर्वथा=सर्व प्रकारसे
जानामि=जानता हूं
अहम्=मैं
एकः=एक ही हूं
निरन्तरम्=निरन्तर हूं
निरालम्बम्=निरालम्ब हूं
अशून्यम्=शून्यसे रहित हूं
च=और
शून्यम्=शून्य
व्योमादि-पञ्चकम्=आकाशादि पांच हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं सर्वथा सम्पूर्ण जगत् और आकाशादि पांच भूतोंको शून्यरूप जानता हूं, और मैं अपनेको शून्यतासे रहित शून्यका साक्षी जानता हूं, और मैं एक ही हूं, और निरन्तर हूं अर्थात् एकरस हूं आलम्बसे भी रहित हूं ॥ ४५ ॥

न षण्ढो न पुमान्न स्त्री न बोधो नैव कल्पना ।
सानन्दो वा निरानन्दमात्मानं मन्यसे कथम्॥४६॥

पदच्छेद ।

न, षण्ढः, न, पुमान्, न, स्त्री, न, बोधः न, एव, कल्पना, सानन्दः, वा, निरानन्दम्, आत्मानम्, मन्यसे, कथम् ॥

पदार्थः ।

न षण्ढः=आत्मा न नपुंसक है
न पुमान्=न पुरुष है
न स्त्री=न स्त्री है
न बोधः=न ज्ञान है
एव=निश्चयकरके
न कल्पना=कल्पना भी नहीं है
सानन्दः=आनन्दके सहित
वा=अथवा
निरानन्दम्=आनन्दसे रहित
आत्मानम्=आत्माको
कथम्=किस प्रकार
मन्यसे=तुम मानते हो

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–आत्मा नपुंसक नहीं है, और पुरुष तथा स्त्री भी नहीं है, और वृत्तिज्ञान भी नहीं है, क्योंकि वह ज्ञानस्वरूप है, और कल्पनारूप भी नहीं है किन्तु कल्पनाका भी साक्षी है, फिर आत्मा आनन्दके सहित भी नहीं है किन्तु आनन्दरूप है और आनन्दसे रहित भी नहीं है तो फिर हे शिष्य ! आत्माको तुम कैसे मानते हो? यदि तुम पुंनपुंसकादिक रूप करके आत्माको मानते हो तो ऐसा मानना तुम्हारा मिथ्या है ॥ ४६ ॥

ननु–हम स्त्री पुरुषादिक रूपोंसे तो आत्माको भिन्न ही मानते हैं परंतु तिसको अशुद्ध मानकर उसके शोधनका यत्न करते हैं। उच्यते–ऐसा कथन भी ठीक नहीं है–

षडंगयोगान्न तु नैव शुद्धं
मनोविनाशान्न तु नैव शुद्धम् ।
गुरूपदेशान्न तु नैव शुद्धं
स्वयं च तत्त्वं स्वयमेव शुद्धम् ॥ ४७ ॥

पदच्छेदः।

षडंगयोगात्, न, तु, न, एव, शुद्धम्, मनोविनाशात्, न, तु, नैव, शुद्धम्, गुरूपदेशात्, न, तु, एव, शुद्धम्, स्वयम्, च, तत्त्वम्, स्वयम्, एव, शुद्धम् ॥

पदार्थः।

षडंग- योगात् =षडंगयोगसे भी आत्मा
एव=निश्चयकरके
शुद्धम्=शुद्ध
न तु नैव=नहीं होता २

मनोविनाशात्=मनके नाश होनेसे भी आत्मा
शुद्धम्=शुद्ध
न तु नैव=नहीं होता २

गुरूपदेशात्=गुरुके उपदेशसे भी आत्मा
शुद्धम्=शुद्ध
न तु नैव=नहीं होता २
स्वयम्=आप ही आत्मा
तत्त्वम्=सारवस्तु है
च=और
स्वयम्=आप ही
एव=निश्चयकरके
शुद्धम्=शुद्ध वस्तु है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—षट् अंगोंके सहित योगाभ्यासके करनेसे भी आत्माकी शुद्धि नहीं होती है । ननु—मनके नाश करनेसे आत्माकी शुद्धि होती है । उच्यते—नहीं होती है २ । ननु—गुरुके उपदेशसे आत्माकी शुद्धि होती है । उच्यते—नहीं होती है २ । ननु—तो फिर आत्माकी शुद्धि किस उपायके करनेसे होती है । उच्यते—आत्मा स्वतः शुद्ध है, जो वस्तु स्वरूपसे ही शुद्ध है, उसको जो अशुद्ध मानते हैं वे मूर्ख कहे जाते हैं और संसारमें इस प्रकार कोई भी नहीं कहता है कि मेरा आत्मा अशुद्ध है किन्तु मूर्खसे मूर्ख भी यही कहता है कि, मेरा मन बडा अशुद्ध है इसीवास्ते मनके निरोधका ही सब लोग साधन पूछते हैं, आत्माके निरोधका और आत्माकी शुद्धिका साधन न तो कोई पूछता है और न कहीं लिखा ही है इसवास्ते आत्मा नित्य शुद्ध स्वरूप है ॥ ४७ ॥

न हि पञ्चात्मको देहो विदेहो वर्तते न हि ।
आत्मैव केवलं सर्वं तुरीयं च त्रयं कथम् ॥ ४८ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, पञ्चात्मकः, देहः, विदेहः, वर्त्तते, न, हि, आत्मा, एव, केवलम्, सर्वम्, तुरीयम्, च, त्रयम्, कथम् ॥

पदार्थः ।

पञ्चात्मकः=पाञ्चभौतिक	आत्मा=आत्माही
देहः=देह भी	एव=निश्चयकरके
हि=निश्चय करके	केवलम्=केवल है
न=नहीं हैं	सर्वम्=सर्वरूप भी है
विदेहः=देहसे रहित भी	तुरीयम्=तुरीय
हि=निश्चयकरके	च=और
न=नहीं	त्रयम्=तीन अवस्था
वर्तते=वर्तता हैं	कथम्=कैसे हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मा पाञ्चभौतिकरूपी देह नहींहै क्योंकि देह जड़ है, आत्मा चेतन है, और विदेह अर्थात् देहसे रहित भी नहीं है, क्योंकि संपूर्ण देहोंमें पूर्ण होकरके स्थित है, और आत्मा ही केवल सद्रूप है, सर्वरूप भी हैं आत्मासे भिन्न कोई भी वस्तु नहीं है । जबकि आत्मासे भिन्न कोई भी वस्तु नहीं है तब फिर तीन अवस्था और तुरीय अवस्था कैसे बनती हैं॥४८॥

न बद्धो नैव मुक्तोऽहं न चाहं ब्रह्मणः पृथक् ।
न कर्ता न च भोक्ताहं व्याप्यव्यापकवर्जितः ॥४९॥

पदच्छेदः ।

न, बद्धः, न, एव, मुक्तः, अहम्, न, च, अहम्, ब्रह्मणः, पृथक्, न, कर्ता, न, च, भोक्ता, अहम्, व्याप्यव्यापकवार्जितः ॥

अहम्=मैं	एव=निश्चयकरके
बद्धः=बद्ध	न=नहीं हूं
न च=नहीं हूं और	अहम्=मैं
मुक्तः=मुक्त भी	ब्रह्मणः=ब्रह्मसे

पृथक्=भिन्न भी
न=नहीं हूँ
न कर्ता=कर्ता भी नहीं हूँ
अहम्=मैं
भोक्ता=भोक्ता भी
न च=नहीं हूँ और
व्याप्यव्यापकवर्जितः=मैंव्याप्य और व्यापकभावसे भी रहित हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं बद्ध नहीं हूँ फिर मैं मुक्त भी नहीं हूँ क्यों कि स्वयंप्रकाश द्वैतसे रहित आत्मामें बंध और मोक्षका व्यवहार भी नहीं बनता है फिर मैं ब्रह्मसे भिन्न नहीं हूँ, न मैं कर्ता हूँ, और न मैं भोक्ता हूँ क्योंकि " असङ्गोऽयं पुरुषः "—श्रुति आत्माको असंग बतलाती है, फिर मैं व्याप्यव्यापकभावसे भी रहित हूँ, क्योंकि एकमें व्याप्यव्यापकभाव तीनों कालमें नहीं बनता है ॥ ४९ ॥

यथा जलं जले न्यस्तं सलिलं भेदवर्जितम् ।
प्रकृतिं पुरुषं तद्वदभिन्नं प्रतिभाति मे ॥ ५० ॥

पदच्छेदः ।

यथा, जलम्, जले, न्यस्तम्, सलिलम्, भेदवर्जितम्, प्रकृतिम्, पुरुषम्, तद्वत्, अभिन्नम्, प्रतिभाति, मे ॥

पदार्थः ।

यथा=जिस प्रकार
जलम्=जल
जले=जलमें
न्यस्तम्=फेंका हुआ
सलिलम्=जलरूपही
भेदवर्जितम्=भेदसेरहित होजाता है
तद्वत्=तैसेही
प्रकृतिम्=प्रकृति और
पुरुषम्=पुरुष
मे= मेरेको
अभिन्नम्=अभिन्न
प्रतिभाति=प्रतीत होता है

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं कि, जिस प्रकार जलमें फेंकाहुआ जल जलरूप ही होजाता है तिसी प्रकार प्रकृति और पुरुष भी मेरेको अभिन्न-

रूप करके प्रतीत होते हैं। तात्पर्य यह है कि, लोकमें भी जैसे अग्नि और अग्निकी दाहकशक्तिका भेद किसी प्रकारसे भी सिद्ध नहीं होता है इसी प्रकार ब्रह्मचेतनकी शक्तिका भी ब्रह्मचेतनके साथ किसी प्रकारसे भी भेद सिद्ध नहीं होता है. मूर्खलोग भेद मानते हैं, ज्ञानी पुरुष भेद नहीं मानते हैं ॥ ५० ॥

ननु–आत्मा साकार है या निराकार है। उच्यते—

यदि नाम न मुक्तोऽसि न बद्धोऽसि कदाचन।
साकारं च निराकारमात्मानं मन्यसे कथम् ॥ ५१ ॥

पदच्छेदः।

यदि, नाम, न, मुक्तः, असि, न, बद्धः, असि, कदाचन, साकारम्, च, निराकारम्, आत्मानम्, मन्यसे, कथम् ॥

पदच्छेदः।

यदि नाम=यदि यह बात प्रसिद्ध है	**आत्मानम्**=आत्माको
मुक्तः=मुक्त तू	**साकारम्**=साकार
न असि=नहीं है और	**च**=और
कदाचन=कदाचित्	**निराकारम्**=निराकार
बद्धः=बद्ध भी तू	**कथम्**=किस प्रकार
न असि=नहीं है तो फिर	**मन्यसे**=तू मानता है

पदार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे मुमुक्षु ! यदि तू मुक्त नहीं है और बद्ध भी नही है अर्थात् कदाचित् यदि तेरेमें मुक्त और बद्ध व्यवहार नहीं है, तो फिर तू आत्माको साकार और निराकार कैसे मानता है अर्थात् साकार निराकार कथन अज्ञानावस्थामेंही बनता है, क्योंकि उस अवस्थामें बद्धसे मोक्षका व्यवहार होता है, जीवन्मुक्त अवस्थामें तो बद्ध–मोक्ष व्यवहार ही नहीं है अत एव साकार निराकार कथन भी नहीं बनता है ॥ ५१ ॥

जानामि ते परं रूपं प्रत्यक्षं गगनोपमम् ॥
यथा परं हि रूपं यन्मरीचिजलसन्निभम् ॥ ५२ ॥

पदच्छेदः ।

जानामि, ते, परम्, रूपम्, प्रत्यक्षम्, गगनोपमम्, यथा, परम्, हि, रूपम्, यत्, मरीचिजलसन्निभम् ॥

पदार्थः ।

ते=तुम्हारे
परम्=परम
रूपम्=रूपको
जानामि=मैं जानता हूं
प्रत्यक्षम्=प्रत्यक्ष
गगनोपमम्=गगनकी उपमावाला है
यथा=जिस प्रकार
परम्=जगत्का
रूपम्=रूप है
यत्=जो कि
मरीचिजलसन्निभम्=मृगतृष्णाके जलकी तरह है वैसा तुम्हारा नहीं है.

भावार्थः ।

तुम्हारे परमरूपको जानता हूं वह प्रत्यक्ष गगनकी तरह व्यापक है.नित्य है और जगत्का स्वरूप मृगतृष्णाके जलकी तरह मिथ्या है । इतना भी तुम्हारे और जगत्के स्वरूपका फरक है ॥ ५२ ॥

न गुरुर्नोपदेशश्च न चोपाधिर्न मे क्रिया ।
विदेहं गगनं विद्धि विशुद्धोऽहं स्वभावतः ॥ ५३ ॥

पदच्छेदः ।

न, गुरुः, न, उपदेशः, च, न, च, उपाधिः, न, मे, क्रिया, विदेहम्, गगनम्, विद्धि, विशुद्धः, अहम्, स्वभावतः ॥

पदार्थः ।

मे=मेरा	क्रिया=क्रिया भी कोई
गुरुः=गुरु भी कोई	न=नहीं है मुझको
न=नहीं है	विदेहम्=देहसे रहित
च=और	गगनम्=आकाशवत्
उपदेशः=उपदेश भी	विद्धि=तू जान क्योंकि
न=नहीं है और	अहम्=मैं
उपाधिः=उपाधि भी	स्वभावतः=स्वभावसे ही
न च=नहीं है	विशुद्धः=शुद्ध हूं

भावार्थः

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मेरा वास्तवसे गुरु भी कोई नहीं है जब कि गुरु ही परमार्थदृष्टिसे नहीं है तब उपदेश कहांसे बन सकता है ? क्योंकि गुरु और शिष्यका व्यवहार भेदको लेकरके ही होता है, सो जिसकी दृष्टिमें भेदही नहीं रहा है उसकी दृष्टिमें गुरु और शिष्यका व्यवहार भी नहीं रहता है फिर भेद भावनासे रहितकी दृष्टिमें जब कि, उपाधि नहीं है उपाधिकृत क्रिया भी नहीं रहती है । इसीवास्ते कहते हैं हे शिष्य ! हमको देहसे रहित गगनके तुल्य तू व्यापक जान क्योंकि हम स्वभावसेही शुद्ध हैं ॥ ५३ ॥

ननु—तुम तो स्वभावसे ही शुद्ध हो मैं कौन हूं । उच्यते-

विशुद्धोऽस्यशरीरोऽसि न ते चित्तं परात्परम् ।
अहं चात्मा परं तत्त्वमिति वक्तुं न लज्जसे ॥५४॥

पदच्छेदः ।

विशुद्धः, असि, अशरीरः, असि, न, ते, चित्तम्, परात्परम् अहम्, च, आत्मा, परम्, तत्त्वम्, इति, वक्तुम्, न, लज्जसे॥

पदार्थः ।

विशुद्धः=विशेषकरके शुद्ध
असि=तू है फिर तू
अशरीरः=शरीरसे रहित
असि=है
ते=तुम्हारा
चित्तम्=चित्त भी
न=नहीं है
अहम्= मैं
परात्परम्=पर जो माया उससे भी सूक्ष्म है
च=और मैं
आत्मा=आत्मा हूँ
परम्=परम
तत्त्वम्=तत्त्व हूँ
इति=इस प्रकार
वक्तुम्=कथन करते
न लज्जसे=तू लज्जा नहीं करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—तू भी शुद्ध है और शरीरसे रहित है । तेरा चित्तके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है. क्योंकि तू प्रकृतिसे भी अतिसूक्ष्म है, तो फिर यह जो कथन है कि, मैं आत्मा हूँ—परमतत्त्व हूँ, यह भी वास्तवसे नहीं बनता इस वास्ते ऐसे कथन करनेसे भी तू क्या लज्जित नहीं होता ? क्योंकि अद्वैतमें ऐसा कथन नहीं बनता है ॥ ५४ ॥

कथं रोदिषि रे चित्त ह्यात्मैवात्मात्मना भव ।
पिब वत्स कलातीतमद्वैतं परमामृतम् ॥ ५५ ॥

पदच्छेदः ।

कथम्, रोदिषि, रे, चित्त, हि, आत्मा, एव, आत्मा, आत्मना, भव, पिब, वत्स, कलातीतम्, अद्वैतम्, परमामृतम्॥

रे चित्त=हे चित्त
कथम्=क्यों तूं
रोदिषि=रुदन करता है
हि एव=निश्चय करके
आत्मा=तू आत्मारूप है
आत्मना=अपने करके
आत्मा=आत्मा
भव=तू होजा
वत्स=हे वत्स !
कलातीतम्=कलासे रहित
अद्वैतम्=अद्वैतरूपी
परमामृतम्=परम अमृतको
पिब=तू पान कर

भावार्थः ।

हे चित्त ! तू किसवास्ते रुदन करता है ? तेरा रुदन करना व्यर्थ है, क्योंकि तू आत्मस्वरूप है, अनात्मा नहीं है । यदि तूने भ्रमकरके अपनेको अनात्मा मान रखा हो तो फिर तू विचारके द्वारा भ्रमको दूर करके अपने आत्माकरके अर्थात् अपने आत्माके ज्ञानकरके फिर आत्मा होजा अर्थात् अपने स्वरूपमें स्थित होजा । और कल्पनासे रहित परम अद्वैतरूपी अमृतको हे वत्स (प्रिय) ! तू पान कर ॥ ५५ ॥

नैव बोधो न चाबोधो न बोधाबोध एव च ।
यस्येदृशः सदा बोधः स बोधो नान्यथा भवेत् ॥५६॥

पदच्छेदः ।

न, एव, बोधः, न, च, अबोधः, न, बोधाबोधः, एव, च, यस्य, ईदृशः, सदा, बोधः, सः, बोधः, न, अन्यथा, भवेत् ॥

पदार्थः ।

एव=निश्चयकरके	न च=नहीं है और
बोधः=आत्मज्ञान	यस्य=जिस पुरुषको
न=नहीं है	ईदृशः=इस प्रकारका
अबोधः=अज्ञान भी	सदा=सर्वकाल
न च=नहीं है और	बोधः=ज्ञान है
बोधाबोधः=ज्ञान अज्ञान उभयरूप भी	सः बोधः=सो ज्ञानस्वरूप है
	अन्यथा=अन्यथा वह
एव=निश्चय करके	न भवेत्=नहीं होता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-कि, आत्मा अन्तःकरणकी वृत्ति ज्ञानरूप नहीं है और अज्ञानरूपभी नहीं है, और ज्ञान अज्ञान उभयरूप भी नहीं है किन्तु केवल ज्ञानस्वरूप ही है । जिस पुरुषको इस प्रकारका सर्व काल आत्माका ज्ञान है सो पुरुष ज्ञानस्वरूपही है, वह अन्यथा कदापि नहीं होता है ॥ ५६ ॥

ज्ञानं न तर्को न समाधियोगो
न देशकालौ न गुरूपदेशः ।
स्वभावसंवित्तिरहं च तत्त्व-
माकाशकल्पं सहजं ध्रुवं च ॥ ५७ ॥

पदच्छेदः ।

ज्ञानम्, न, तर्कः, न, समाधियोगः, न, देशकालौ, न, गुरूपदेशः, स्वभावसंवित्तिः, अहम्, च, तत्त्वम्, आकाश-कल्पम्, सहजम्, ध्रुवम्, च ॥ ५७ ॥

पदार्थः ।

ज्ञानम्=अन्यज्ञान भी मैं	स्वभाव-संवित्तिः=स्वभावसे ही ज्ञान-स्वरूप
न=नहीं हूँ	च=और
तर्कः=तर्करूपभी	तत्त्वम्=यथार्थवस्तु
न=मैं नहीं हूँ	अहम्=मैं हूँ
समाधियोगः=समाधियोगरूप भी	आकाश-कल्पम्=आकाशके सदृश व्यापक
न=मैं नहीं हूँ	च=और
देशकालौ=देशकालभी	अन्यथा=अन्यथा वह
न=मैं नहीं हूँ	न भवेत्=नहीं होता है
गुरूपदेशः=गुरुका उपदेशरूपभी	
न=मैं नहीं हूँ किन्तु	

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी अपने अनुभवको कहते हैं-हम ज्ञान नहीं हैं अर्थात् जो कि इंद्रिय विषयके सम्बन्धसे अंतःकरणकी वृत्तिरूपजन्य ज्ञान है सो मैं नहीं हूँ । और शास्त्रविरुद्ध अथवा शास्त्रसंमतरूप जो. कि तर्क है सो भी मैं नहीं हूं । और चित्तका निरोधरूपी जो योग और समाधि है सो भी मैं नहीं हूँ । और देशकालरूप भी मैं नहीं हूँ । और उपदेशको

करनेवाला गुरुका उपदेशरूप भी मैं नहीं हूं, किन्तु स्वभावसे ही मैं ज्ञान-स्वरूप हूं, और यथार्थ तत्त्ववस्तु आकाशवत् व्यापक भी मैं हूं। और स्वभाव से ही मैं नित्य भी हूं मेरेसे भिन्न अनित्य है ॥ ५७ ॥

न जातोऽहं मृतो वापि न मे कर्म शुभाशुभम् ।
विशुद्धं निर्गुणं ब्रह्म बन्धो मुक्तिः कथं मम ॥ ५८ ॥

पदच्छेदः ।

न, जातः, अहम्, मृतः, वा, अपि, न, मे, कर्म, शुभाशुभम्, विशुद्धम्, निर्गुणम्, ब्रह्म, बन्धः,मुक्तिः,कथम् मम ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं कभी	विशुद्धम्=शुद्धस्वरूप हूं
न जातः=उत्पन्न नहीं हुआ हूं	निर्गुणम्=निर्गुण हूं
अहम्=मैं कभी	ब्रह्म=ब्रह्म हूं
न मृतः=मरा नहीं हूं	मम=मेरा
मे=मुझको	बन्धः=बन्ध
शुभाशुभम्=शुभ और अशुभ	मुक्तिः=मुक्ति
कर्म न=कर्म भी नहीं है क्योंकि मैं	कथम्=कैसे, क्योंकि मैं मुक्तरूप हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो जन्मता है वह अवश्य ही मरता है—जो कि जन्मता ही नहीं है वह मरता भी नहीं है, सो जन्ममरण साकार और जड़ शरीरादिकोंकेही होते हैं, निराकार निरवयव चेतनके नहीं होते हैं। सो मैं निराकार चेतन व्यापक रूप हूं इसवास्ते मेरे जन्मादिक भी नहीं हैं और शुभ अशुभ कर्म भी सब शरीरादिकोंके धर्म हैं मेरे धर्म नहीं हैं क्योंकि मैं शुद्धस्वरूप निर्गुण ब्रह्म हूं फिर मेरा बन्ध और मुक्ति कैसे हो सकती है? क्योंकि मैं तो नित्य मुक्तरूप हूं ॥ ५८ ॥

यदि सर्वगतो देवः स्थिरः पूर्णो निरन्तरः ।
अन्तरं हि न पश्यामि स बाह्याभ्यन्तरः कथम् ॥५९॥

पदच्छेदः ।

यदि, सर्वगतः, देवः, स्थिरः, पूर्णः, निरन्तरः, अन्तरम्, हि, न, पश्यामि, सः, बाह्याभ्यन्तरः, कथम् ॥

पदार्थः ।

यदि=जब कि	**अन्तरम्**=शरीरके भीतर ही तिसको
देवः=प्रकाशमान आत्मा	**न पश्यामि**=मैं नहीं देखताहूं क्योंकि
सर्वगतः=सर्वगत है	**सः**=सो देव
स्थिरः=स्थिर भी है	**बाह्याभ्यन्तरः**=बाहर और भीतर सर्वत्र है
पूर्णः=पूर्ण भी है	
निरन्तरः=एकरस भी हैं	**कथम्**=कैसे सर्वत्र न देखूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-वह प्रकाशमान आत्मा सर्वगत है । अर्थात् सर्वत्र एकरस प्राप्त है. कहीं भी न्यून अधिक नहीं है, और स्थिर भी है, अर्थात् अचल भी है, किसी तरहसे भी वह चलायमान नहीं होता है, पूर्ण है, एकरसभी है, और शरीरके भीतर ही मैं तिसको नहीं देखता हूँ क्योंकि वह केवल शरीरके भीतर ही नहीं है किन्तु बाहर भीतर सर्वत्र है इस वास्ते बाहर भीतर हम तिसको देखते हैं ॥ ५९ ॥

स्फुरत्येव जगत्कृत्स्नमखण्डितनिरन्तरम् ।
अहो मायामहामोहौ द्वैताद्वैतविकल्पना ॥ ६० ॥

पदच्छेदः ।

स्फुरति, एव, जगत्, कृत्स्नम्, अखण्डितनिरन्तरम्, अहो, मायामहामोहौ, द्वैताद्वैतविकल्पना ॥

पदार्थः ।

कृत्स्नम्=सम्पूर्ण	अहो=बडा खेद है
जगत्=	मायामहामोहौ=माया और महामोह
अखण्डितनिरन्तरम्=अखंडित निरन्तरही	द्वैताद्वैतविकल्पना=द्वैतादेत और अद्वैतकी कल्पनाका भी स्फुरण होता है
एव=निश्चय करके	
स्फुरति=स्फुरण होता है	

भावार्थः ।

निराकार व्यापक चेतनमें संपूर्ण जगत् अखंडित अर्थात् प्रवाहरूपसे निरन्तर ही स्फुरण होता है और माया तथा महामोह भी उसीमें स्फुरण होते हैं और द्वैत अद्वैतकी कल्पना भी उसीमें स्फुरण होती है. वास्तवसे उसमें यह सब कुछ भी नहीं है ॥ ६० ॥

साकारं च निराकारं नेति नेतीति सर्वदा ।
भेदाभेदविनिर्मुक्तो वर्तते केवलः शिवः ॥ ६१ ॥

पदच्छेदः ।

साकारम्, च, निराकारम्, न, इति, न, इति, इति, सर्वदा, भेदाभेदविनिर्मुक्तः, वर्तते, केवलः, शिवः ॥

पदार्थः ।

साकारम्=स्थूल	सर्वदा=सर्वकाल वह
च=और	भेदाभेदविनिर्मुक्तः=भेद और अभेदसे रहित
निराकारम्=सूक्ष्म जितना है	केवलः=केवल
इति न=यह सब नहीं है	शिवः=कल्याणरूप ही
इति न=यह सब नहीं है	वर्तते=वर्तता है
इति=इस प्रकार श्रुति कहती है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-जितना कि स्थूल और सूक्ष्मरूप जगत् है इस संपूर्ण जगत्का श्रुति निषेध करती है कि, वास्तवसे यह सब ब्रह्ममें सर्व-

कालमें नहीं है वह ब्रह्म केवल है अर्थात् द्वैतसे रहित है और कल्याण-स्वरूप भी है ॥ ६१ ॥

न ते च माता च पिता च बन्धु-
र्न ते च पत्नी न सुतश्च मित्रम् ।
न पक्षपातो न विपक्षपातः
कथं हि सन्तप्तिरियं हि चित्ते ॥ ६२ ॥

पदच्छेदः ।

न, ते, च, माता, च, पिता, च, बन्धुः, न, ते, च, पत्नी, न, सुतः, च, मित्रम्, न, पक्षपातः, न, विपक्षपातः, कथम्, हि, सन्तप्तिः, इयम्, हि, चित्ते ॥

पदार्थः ।

ते=तुम्हारी
माता=माता
न=नहीं है
च=और तुम्हारा
पिता=पिता भी नहीं है
च=और तुम्हारा
बन्धुः=सम्बंधी भी
न=नहीं है
च=और
ते=तुम्हारी
पत्नी=स्त्री भी
न=नहीं है
च=और तुम्हारा
सुतः=पुत्र भी
न=नहीं है
च=और तुम्हारा
मित्रम्=मित्र भी
न=नहीं है
पक्षपातः=पक्षपाती भी तुम्हारा कोई
न=नहीं है
विपक्षपातः=विपक्षपाती भी
न=तुम्हारा नहीं है
हि=निश्चय करके
चित्ते=चित्तमें
इयम्=यह
सन्तप्तिः=सन्ताप
कथम्=कैसे करते हो

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हे जीव! न तो वास्तवसे तुम्हारी कोई माता ही है और न कोई तुम्हारा पिता ही है, और न कोई तुम्हारा संबंधी ही है, न तो तुम्हारी स्त्री है, न कोई तुम्हारा पुत्र और मित्र ही है। यह तो सब अपने २ स्वार्थके ही हैं, और तुम्हारा पक्षपाती या विपक्षी भी कोई नहीं है, फिर तुम चित्तमें संतापको क्यों करते हो? यह तो स्वप्नसृष्टिकी तरह मिथ्या है ॥ ६२ ॥

दिवानक्तं न ते चित्ते उदयास्तमयौ न हि।
विदेहस्य शरीरत्वं कल्पयन्ति कथं बुधाः ॥६३॥

पदच्छेदः।

दिवानक्तम्, न, ते, चित्ते, उदयास्तमयौ, न, हि, विदेहस्य, शरीरत्वम्, कल्पयन्ति, कथम्, बुधाः ॥

पदार्थः।

ते=हे शिष्य! तुम्हारे
चित्ते=चेतनमें
दिवानक्तम्=दिन और रात्रि भी
न=वास्तवसे नहीं है और
उदयास्तमयौ=उदय और अस्तभी
न हि=तुम्हारा नहीं है
विदेहस्य=देहसे रहितका
शरीरत्वम्=शरीर
बुधाः=बुद्धिमान्
कथम्=कैसे
कल्पयन्ति=कल्पना करते हैं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हे जीव! तुम्हारे चेतनस्वरूपमें दिन और रात्रि नहीं है, और उदय अस्तभाव भी उसमें नहीं है क्योंकि वह सदैव एक रस ज्योंका त्यों ही रहता है और तुम्हारा चेतन आत्मा भी वास्तवसे देहसे रहित है इसीवास्ते वह शरीरवाला भी कदापि नहीं हो सकता है तब फिर विद्वान् लोग उससे शरीरकी कल्पना कैसे करते हैं? किन्तु कदापि नहीं करते हैं ॥ ६३ ॥

नाविभक्तं विभक्तं च न हि दुःखसुखादि च।
न हि सर्वमसर्वं च विद्धि चात्मानमव्ययम् ॥६४॥

पदच्छेदः ।

न, अविभक्तम्, च, न, हि, दुःखसुखादि, च, न, हि, सर्वम्, असर्वम्, च, विद्धि, च, आत्मानम्, अव्ययम् ॥

पदार्थः ।

अविभक्तम्=विभागसे रहित और	सर्वम्=सर्वरूपता
विभक्तम्=विभागके सहित आत्मा	असर्वम्=असर्वरूपताभी
न=नहीं है	न हि=नहीं है
च=और	च=और
दुःखसुखादि=दुःखसुखादिक भी आत्माके	आत्मानम्=आत्माको
न हि=धर्म नहीं है	अव्ययम्=नाशसे रहित
च=और	विद्धि=तू जान

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–आत्मामें विभागपना और अविभागपना भी नहीं बनता है क्योंकि यदि निराकार दो आत्मा होवें तब तो विभागादिक भी बने विना उपाधिके निराकार निरवयवका विभाग कभी नहीं हो सकता है और उपाधि सब मिथ्या है इस वास्ते वास्तवसे विभागादि नहीं बनते हैं। और स्वयंप्रकाश सुखरूप आत्मामें जन्म दुःखसुखादिक भी नहीं बनते हैं। इसी तरह सर्वमिथ्या प्रपंचरूपता अरूपता भी तिसमें नहीं बनती है इसवास्ते तिस आत्माको तू अव्यय जान ॥ ६४ ॥

नाहं कर्ता न भोक्ता च न मे कर्म पुराधुना ।
न मे देहो विदेहो वा निर्ममेति ममेति किम् ॥६५॥

पदच्छेदः ।

न, अहम्, कर्ता, न, भोक्ता, च, न, मे, कर्म, पुरा, अधुना, न, मे, देहः, विदेहः, वा, निर्मम, इति, मम, इति, किम् ॥

पदार्थः।

अहम्=मैं
कर्ता=कर्मोंका कर्ता
न=नहीं हूं
च=और उनके फलोंका
भोक्ता=भोक्ता भी
न=नहीं है
मे कर्म=मेरे कर्म
पुराऽधुना=पूर्व और अब
न=नहीं है
मे=मेरा
देहः=देहभी
न=नहीं है
वा=अथवा
विदेहः=मैं देहसे रहितभी नहीं हूं
निर्ममेति=ममतासे रहित और
ममेति=ममताके सहित
किम्=कैसे मैं हो सकता हूं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-न तो मैं कर्मोंका कर्ता हूं, और न मैं उनके फलोंको भोक्ता ही हूँ। फिर न तो मेरे पहिले जन्मोंके ही कर्म हैं, और न इसी जन्मके कर्म हैं। जिस कारण पूर्वोत्तर जन्मके मेरा कर्म कोई नहीं है इसीवास्ते मेरा शरीर भी नहीं है और मैं विदेह अर्थात् देहसे रहित भी नहीं हूँ क्योंकि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही मेरा शरीर है किंतु मैं जीवन्मुक्त हूँ इसीवास्ते ममतासे रहित और ममताके सहित भी मैं नहीं हूँ किन्तु अपने आत्मानन्दमें मग्न हूँ॥६५॥

न मे रागादिको दोषो दुःखं देहादिकं न मे।
आत्मानं विद्धि मामेकं विशालं गगनोपमम्॥६६॥

पदच्छेदः।

न, मे, रागादिकः, दोषः, दुःखम्, देहादिकम्, न, मे, आत्मानम्, विद्धि, माम्, एकम्, विशालम्, गगनोपमम्॥

पदार्थः।

रागादिकः=रागादिक
दोषः=दोष भी
मे न=मेरे नहीं हैं
दुःखम्=दुःखरूप
देहादिकम्=देहादिकभी
मे न=मेरे नहीं हैं
माम्=मुझको
आत्मानम्=आत्मारूप और
एकम्=एक
विशालम्=विस्तारवाला
गगनोपमम्=आकाशके तुल्य
विद्धि=तू जान

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—राग और द्वेषादिक दोष भी मेरेमें नहीं हैं, और दुःखरूप देहादिक भी मेरे नहीं हैं किन्तु मुझको एक और विशाल (अतिविस्तृत) आकाशके सदृश हे शिष्य ! तू जान ॥ ६६ ॥

सखे मनः किं बहुजल्पितेन
सखे मनः सर्वमिदं वितर्क्यम् ।
यत्सारभूतं कथितं मया ते
त्वमेव तत्त्वं गगनोपमोऽसि ॥ ६७ ॥

पदच्छेदः ।

सखे, मनः, किम्, बहुजल्पितेन, सखे, मनः, सर्वम्, इदम्, वितर्क्यम्, यत्, सारभूतम्, कथितम्, मया, ते, त्वम्, एव, तत्त्वम्, गगनोपमः, असि ॥

पदार्थः ।

सखे मनः=हे सखे मन !	मया=मैंने
बहुजल्पितेन=बहुत कथन करनेसे	कथितम्=कथन किया
किम्=क्या प्रयोजन है	ते=तुम्हारे प्रति
सखे मनः=हे सखे मन !	त्वम्=तू ही
इदम्=यह जगत्	एव=निश्चय करके
सर्वम्=सम्पूर्ण	तत्=सो है
वितर्क्यम्=तर्क करनेके योग्य है	तत्त्वम्=सो तुम
यत्= जो कि	गगनोपमः=आकाशके तुल्य
सारभूतम्=सारभूत	असि=है

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी अपने मनके प्रति कहते हैं—हे सखे मन ! तुम्हारे प्रति बहुत कथन करनेका कुछ भी प्रयोजन नहीं किन्तु जितना कि यह

दृश्यमान जगत् है सो तर्क करनेके योग्य है और जो कि हमने तुम्हारे प्रति पूर्व सारभूत सिद्धान्त कथन किया है कि ब्रह्मचेतन तुम ही हो सो तुम आकाशके तुल्य निर्लेप और असंग भी हो ॥ ६७ ॥

येन केनापि भावेन यत्र कुत्र मृता अपि ।
योगिनस्तत्र लीयन्ते घटाकाशमिवाम्बरे ॥ ६८ ॥

पदच्छेदः ।

येन, केन, अपि, भावेन, यत्र, कुत्र, मृताः, अपि, योगिनः, तत्र, लीयन्ते, घटाकाशम्, इव, अम्बरे ॥

पदार्थः ।

येन केन=जिस किसी	योगिनः=ज्ञानवान्
भावेन=भावसे	तत्र=उसी ब्रह्ममें ही
अपि=निश्चयकरके	लीयन्ते=लीन हो जाते हैं
यत्र कुत्र=जहां कहीं	घटाकाशम्=घटाकाशके
मृताः=मरणको प्राप्त	इव=समान
अपि=भी	अम्बरे=महाकाशमें लीन होजाता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-ज्ञानवान् पुरुष जिस किसी निमित्तसे जहां कहीं प्राणोंका त्याग भी कर देता है, अर्थात् उत्तम मध्यमादि भूमियोंमें शरीरको भी छोड देता है तब भी वह पूर्ण ब्रह्ममें ही लीन हो जाता है. जैसे घटके फूटजानेपर घटाकाश महाकाशमें लीन हो जाता है ॥ ६८ ॥

तीर्थे चान्त्यजगेहे वा नष्टस्मृतिरपि त्यजन् ।
समकाले तनुं मुक्तः कैवल्यव्यापको भवेत् ॥ ६९ ॥

पदच्छेदः ।

तीर्थे, च, अन्त्यजगेहे, वा, नष्टस्मृतिः, अपि, त्यजन्, समकाले, तनुम्, मुक्तः, कैवल्यव्यापकः, भवेत् ॥

पदार्थः ।

तीर्थे=तीर्थमें	समकाले=समकालमें
च=और	तनुम्=शरीरको
अन्त्यजगेहे=चाण्डालके घरमें	त्यजन्=त्यागता
वा=अथवा	मुक्तः=मुक्त हुआ
नष्टस्मृतिः=बेहोश हुआ भी	कैवल्यव्यापकः=व्यापक ब्रह्मरूप
अपि=निश्चयकरके	भवेत्=हो जाता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-ज्ञानवान् जीवन्मुक्त सचेत हुआ २ अथवा अचेत हुआ २ किसी तीर्थमें या चाण्डालके घरमें समकालमें अर्थात् प्रारब्ध कर्मके समाप्त होजानेपर शरीरको त्यागकर मुक्त हुआ भी मुक्तरूप व्यापक चेतन-ब्रह्ममें ही मिलजाता हैं, लोकान्तरको या देहान्तरको नहीं प्राप्त होजाता है इसी अर्थको श्रुति भी कहती है "न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति" तिस ज्ञानवान्के प्राण लोकान्तरमें या देहान्तरमें गमन नहीं करते हैं किन्तु "अत्रैव समवलीयन्ते" इसी लोकमें अपने कारणमें लीन हो जाते हैं और विद्वान्का आत्मा ब्रह्मचेतनमें लीन हो जाता है अर्थात् ब्रह्मके साथ तिसका अभेद हो जाता है फिर तिसका जन्म नहीं होता है ॥ ६९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षांश्च द्विपदादिचराचरम् ।
मन्यन्ते योगिनः सर्वं मरीचिजलसन्निभम् ॥ ७० ॥

पदच्छेदः ।

धर्मार्थकाममोक्षान्, च, द्विपदादिचराचरम्, मन्यन्ते, योगिनः, सर्वम्, मरीचिजलसन्निभम् ॥

पदार्थः ।

धर्मार्थकाममोक्षान्=धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष	सर्वम्=सबको
च=और	योगिनः=ज्ञानी लोग
द्विपदादिचराचरम्=द्विपद आदि जितने चर अचर हैं	मरीचिजलसन्निभम्=मृगतृष्णाके जलके सदृश
	मन्यन्ते=मानते हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थोंका और संसारमें जितने दोपांव तथा चार पांववाला इत्यादिक जंगम जीव हैं और जितने कि वृक्षादिक स्थावर हैं इन सबको ज्ञानीलोग मृगतृष्णाके जलके तुल्य मानते हैं अर्थात् मिथ्या मानते हैं इसीवास्ते इनमेंसे किसीसे भी वह गतिको नहीं चाहते हैं ॥ ७० ॥

अतीतानागतं कर्म वर्तमानं तथैव च ।
न करोमि न भुञ्जामि इति मे निश्चला मतिः॥७१॥

पदच्छेदः ।

अतीतानागतम्, कर्म, वर्तमानम्, तथा, एव, च, न, करोमि, न, भुञ्जामि, इति, मे, निश्चला, मतिः ॥

पदार्थः ।

अतीतानागतम् = भूत और भविष्यत् कर्मोंको और	न करोमि=नहीं करता हूं और
तथा=तैसे ही	न भुञ्जामि=इनके फलको भी मैं नहीं भोगता हूं
एव=निश्चय करके	इति=इस प्रकारकी
वर्तमानम्=वर्तमान	मे=मेरी
कर्म=कर्मको	निश्चला=स्थिर
अहम्=मैं	मतिः=बुद्धि है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-भूत, भविष्यत् और वर्तमान ये तीन प्रकारके कर्म हैं उनमें जो पूर्वके जन्मोंमें कर्म किये गये हैं वह भूत कर्म कहाते हैं और जो भविष्यत् जन्मोंमें किये जायंगे वह भविष्यत् कर्म कहेजाते हैं, जो वर्तमान जन्ममें किये जाते हैं वह वर्तमान कर्म कहेजाते हैं। इनको मैं न करता हूं और न इनके फलका भोक्ता हूं ऐसी मेरी स्थिर बुद्धि है। तात्पर्य यह है कि जिसका कर्मादिकोंमें अध्यास है वही अपनेको कर्त्ता

मानकर दुःखको प्राप्त होता है, और जिसका अध्यास निवृत्त होगया है वह अपनेको न तो कर्ता मानता है और न दुःखको प्राप्त होता है, इसी वास्ते वह जीवन्मुक्त भी कहा जाता है । इसीमें दत्तात्रेयजीका तात्पर्य है ॥ ७१ ॥

शून्यागारे समरसपूत-
स्तिष्ठन्नेकः सुखमवधूतः ।
चरति हि नग्नस्त्यक्त्वा गर्वं
विन्दति केवलमात्मनि सर्वम् ॥ ७२ ॥

पदच्छेदः ।

शून्यागारे, समरसपूतः, तिष्ठन्, एकः, सुखम्, अवधूतः, चरति, हि, नग्नः, त्यक्त्वा, गर्वम्, विन्दति, केवलम्, आत्मनि, सर्वम् ॥

पदार्थः ।

शून्यागारे=शून्य मन्दिरमें	त्यक्त्वा=त्याग करके
समरसपूतः=समतारूपी रसकरके पवित्र हुआ	नग्नः=नग्न
एकः=अकेला	हि=निश्चयकरके
अवधूतः=अवधूत	चरति=विचरताभी है
सुखम्=सुखपूर्वक	केवलम्=केवल
तिष्ठन्=स्थिर होता है	आत्मनि=आत्मामें
गर्वम्=अहंकारको	सर्वम्=सबको
	विन्दति=जानता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-जीवन्मुक्त अवधूत समदृष्टिवाला हुआ २ शून्य मन्दिरमें पवित्र होकर स्थित होता है । अर्थात् निर्जन देशमें ही रहता है, और सर्व पदार्थोंमें अहंकारका त्याग करके ही विचरते हैं । इसीवास्ते वह सुखी अपने आत्मामें ही सर्व प्रपञ्चको कल्पित देखता है ॥ ७२ ॥

**त्रितयतुरीयं नहि नहि यत्र विन्दति केवलमा-
त्मनि तत्र । धर्माधर्मौ नहि नहि यत्र बद्धो
मुक्तः कथमिह तत्र ॥ ७३ ॥**

पदच्छेदः ।

त्रितयतुरीयम्, नहि, नहि, यत्र, विंदति, केवलम्, आत्मनि, तत्र, धर्माधर्मौ, नहि, नहि, यत्र, बद्धः मुक्तः, कथम्, इह, तत्र ॥

पदार्थः ।

तत्र=जिस जीवन्मुक्ति अवस्थामें
त्रितय-तुरीयम् =जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय यह चारों
नहि नहि=नहीं है नहीं है
तत्र=तिसी जीवन्मुक्ति अवस्थामें
आत्मनि=आत्मामें ही
केवलम्=ब्रह्मानन्दकोही
विन्दति=लभता है फिर

यत्र=जिस जीवनन्मुक्ति अवस्थामें
धर्माधर्मौ=धर्माधर्म भी
नहि नहि=नहीं है नहीं है
तत्र=तिस अवस्थामें
बद्धः=यह बद्ध है
मुक्तः=यह मुक्त है
इह=यहां
कथम्=यह व्यवहार कैसे होता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-जिस जीवन्मुक्ति अवस्थामें जीवन्मुक्तकी दृष्टिमें जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय यह चारों अवस्था नहीं हैं उसी अवस्थामें जीवन्मुक्त अपने आत्मामें ब्रह्मानन्दको प्राप्त होता है फिर जिस अवस्थामें धर्म अधर्म भी नहीं हैं उस अवस्थामें यह बद्ध है और यह मुक्त है यह व्यवहार कैसे हो सकता है ? ॥ ७३ ॥

**विन्दति विन्दति नहि नहि मंत्रं छन्दो लक्षणं
नहि नहि तंत्रम् । समरसमग्नो भावितपूतः
प्रलपितमेतत्परमवधूतः ॥ ७४ ॥**

पदच्छेदः ।

विन्दति, विन्दति, नहि, नहि, मन्त्रम्, छन्दः, लक्षणम्, नहि, नहि, तन्त्रम्, समरसमग्नः, भावितपूतः, प्रलपितम्, एतत्, परम्, अवधूतः ॥

पदार्थः ।

समरस-मग्नः=आत्मरसमें जो कि मग्न है	छन्दः=छन्द
भावितपूतः=चित्तसे शुद्ध है ऐसा जो कि	लक्षणम्=रूप
अवधूतः=अवधूत है वह	तन्त्रम्=तंत्रको
मन्त्रम्=मन्त्रको	नहि नहि=नहीं लभता २
विन्दति=लभता है	एतत्=इस
विन्दति=लभता है	परम्=परब्रह्मको ही
नहि नहि=नहीं लभता २	प्रलपितम्=कथन करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-जीवन्मुक्त जो कि अवधूत पदवीको प्राप्त हो गया है सो उस पदवीको प्राप्त होकर किसी मन्त्रविशेषको नहीं प्राप्त होता है और न किसी छन्दरूपी तन्त्रको ही लभता है किन्तु वह परब्रह्मको ही लभता है अर्थात् अपने आत्मासे भिन्नको ब्रह्म वह नहीं जानता है किन्तु अपने आत्माकाही चिन्तन करता है कैसा वह अवधूत है ? अन्तःकरणसे पवित्र है और एकरस आत्मानन्दमेंही मग्न है ॥ ७४ ॥

सर्वशून्यमशून्यं च सत्यासत्यं न विद्यते ।
स्वभावभावतः प्रोक्तं शास्त्रसंवित्तिपूर्वकम् ॥ ७५ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायामात्म-
संवित्त्युपदेशो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

सर्वशून्यम्, अशून्यम्, च, सत्यासत्यम्, न, विद्यते, स्वभावभावतः, प्रोक्तम्, शास्त्रसंवित्तिपूर्वकम् ॥

पदार्थः ।

सर्वशून्यम्=संपूर्ण जगत् शून्यरूपहै	स्वभाव भावतः=स्वभासे ही भावरूप
च=और	
अशून्यम्=आप शून्यसे रहित है	प्रोक्तम्=कहा है
सत्यासत्यम्=सत्य और असत्य भी	शास्त्रसंवित्तिपूर्वकम्=शास्त्रके ज्ञान-पूर्वक कहा है
न विद्यते=तिसमें विद्यमान नहीं है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–उस आत्मा ब्रह्ममें संपूर्ण जगत् शून्यकी तरह है और आप वह शून्यसे रहित हैं किन्तु शून्यका भी साक्षी है। उस चेतन आत्मामें सत्य असत्य ये दोनों भी विद्यमान नहीं हैं। और शास्त्रीय ज्ञानपूर्वक स्वभावसे ही तिसको विद्वानोंने भावरूप करके कथन किया है ॥ ७५ ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्द-विरचितपरमानन्दीभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अवधूत उवाच ।

बालस्य वा विषयभोगरतस्य वापि
मूर्खस्य सेवकजनस्य गृहस्थितस्य ।
एतद्गुरोः किमपि नैव न चिन्तनीयं
रत्नं कथं त्यजति कोऽप्यशुचौ प्रविष्टम् ॥१॥

पदच्छेदः ।

बालस्य,वा,विषयभोगरतस्य,वा,अपि,मूर्खस्य,सेवकजनस्य, गृहस्थितस्य, एतत्, गुरोः, किम्,अपि, नैव, न,चिन्तनीयम्, रत्नम्, कथम्, त्यजति, कः, अपि, अशुचौ, प्रविष्टम् ॥

पदार्थः ।

बालस्य=बालकको
वा=अथवा
विषयभोगरतस्य=विषयभोगमें प्रीतिवालेको
अपि=निश्चय करके
मूर्खस्य=मूर्खको
सेवकजनस्य=सेवकजनको
गृहस्थितस्य=गृहमें स्थितको
एतत्=इन
गुरोः=गुरुओंसे
किम्=कुछभी
अपि=निश्चय करके
नैव लभ्यते=लाभ नहीं होता है
न चिंतनीयं=ऐसा चिंतन नहीं करना
अशुचौ=अपवित्र कीच आदिमें
प्रविष्टम्=गिरे हुए
रत्नम्=रत्नको
कथम्=कैसे
कोऽपि=कोई भी
त्यजाति=त्याग कर देता है ?

भावार्थः ।

श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—बालकगुरुसे, विषयीगुरुसे, मूर्खगुरुसे, सेवकगुरुसे, गृहस्थीगुरुसे अर्थात् इस तरहके जो गुरु हैं उनसे कुछ भी लाभ नहीं होता है ऐसा चिन्तन मत करो किन्तु उनमें भी कोई न कोई गुण अवश्य होवेगा उसी गुणका ग्रहण करके उनका त्याग करदेओ क्योंकि अपवित्र कीच आदिमें जो हीरा पडा होता है उस हीरेका कौन पुरुष त्याग करता है तैसे ही जिस किसीसे भी गुण मिलजावे उसीसे गुणको ग्रहण कर लेओ ॥ १ ॥

नैवात्र काव्यगुण एव तु चिन्तनीयो
ग्राह्यः परं गुणवता खलु सार एव ॥

सिन्दूरचित्ररहिता भुवि रूपशून्या
पारं न किं नयति नौरिह गन्तुकामान् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

न, एव, अत्र, काव्यगुणः, एव, तु, चिन्तनीयः, ग्राह्यः, परम्, गुणवता, खलु, सारः, एव, सिन्दूरचित्ररहिता, भुवि, रूपशून्या, पारम्, न, किम्, नयति, नौः, इह, गन्तुकामान् ॥

पदार्थः ।

अत्र=गुरुमें	भुवि=पृथिवीतलमें
काव्यगुणः=काव्यके गुण	सिन्दूरचित्ररहिता=सिंदूरकी चित्रकारीसे रहिता और
एव तु=निश्चयकरके	रूपशून्या=रूपसे शून्य
नैव=नहीं	नौः=नौका
चिन्तनीयः=चिन्तन करने चाहिये	पारम्=पारको
खलु=निश्चय करके	गन्तुकामान्=जानेकी कामनावालोंको
गुणवता=गुणवान्से	इह=इस संसारमें
परम्=परम	किम्=क्या
सारः=सारवस्तुका	न नयति=पारको नहीं प्राप्त करती है
एव=ही	
ग्राह्यः=ग्रहण करना योग्य है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं कि, किसी भी गुरुमें काव्यादिक गुणोंका चिन्तन नहीं करना कि गुरुने काव्य, कोशादिकोंको पढा है. वा नहीं पढा है. किन्तु गुणोंवाले गुरुमें जो सारवस्तु हो उसीका ग्रहण करलेना और सब असार वस्तुका त्याग कर देना उचित है. इसीमें एक दृष्टान्त कहते हैं- इस लोकमें जैसे सिन्दूरके-चित्रोंवाली नौका नदीसे पार कर देती है तैसे ही सिन्दूरके चित्रोंसे रहित भी नौका नदीसे पार करदेती है । इसी प्रकार सारभूत गुणकी आकांक्षा करे चाहो उत्तम जातिवालेसे मिले

चाहो कनिष्ठ जातिवालेसे मिले वह गुण ही संसारसे पार करदेता है दत्तात्रेयजीका यह तात्पर्य है कि, लकीरके फकीर मत बनो । कानमें फूँक लगवाकर किसीकेभी पशु मत बनो, किन्तु गुणग्राही बनो और उत्तम गुणोंको धारण करो, क्योंकि विना ज्ञान वैराग्यादि गुणोंके धारण करनेसे पुरुष बन्धनसे नहीं छूटता है ॥ २ ॥

प्रयत्नेन विना येन निश्चलेन चलाचलम् ।
ग्रस्तं स्वभावतः शान्तं चैतन्यं गगनोपमम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

प्रयत्नेन, विना, येन, निश्चलेन, चलाचलम्, ग्रस्तम्, स्वभावतः, शान्तम्, चैतन्यम्, गगनोपमम् ॥

पदार्थः ।

येन=जिस	ग्रस्तम्=ग्रसा है
निश्चलेन=निश्चलकरके	स्वभावतः=स्वभावसे ही
प्रयत्नेन=प्रयत्नसे	शान्तम्=शान्तरूप है
विना=विनाही	चैतन्यम्=चैतन्यस्वरूप है
चलाचलम्=चल अचल सब वह चेतन	गगनोपमम्=आकाशकी उपमावाला है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-जिस निश्चय आत्मा चेतनकरके विना प्रयत्नही संपूर्ण चल और अचलरूप जगत् ग्रसा है, वह स्वभावसे ही शान्त है, आकाशकी तरह स्थिर और व्यापक है सो चेतन मैं ही हूँ ॥ ३ ॥

अयत्नाच्चालयेद्यस्तु एकमेव चराचरम् ।
सर्वगं तत्कथं भिन्नमद्वैतं वर्तते मम ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

अयत्नात्, चालयेत्, यः, तु, एकम्, एव, चराचरम्, सर्वगम्, तत्, कथम्, भिन्नम्, अद्वैतम्, वर्तते, मम ॥

पदार्थः ।

तु=पुनः फिर	सर्वगम्=वह सर्वगत है
यः=जो	अद्वैतम्=अद्वैत है
एकम्=एकही	मम=मुझसे
एव=निश्चय करके	भिन्नम्=भिन्न
अयत्नात्=विनाही यत्नसे	तत्=सो
चराचरम्=चर अचरको	कथम्=कैसे
चालयेत्=चलायमान करता है	वर्तते=वर्तता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–कि जो एक ही व्यापक चेतन विना प्रयत्नके ही संपूर्ण चर अचर जगत्को चलायमान करता है वह सर्वगत भी है, सो मेरेसे भिन्न अद्वैतरूप हो करके कैसे वर्तता है? अर्थात् नहीं। तात्पर्य यह है कि, यदि भिन्न होकर अद्वैतरूपसे वर्ते तब तो द्वैतकी प्राप्ति हो जावेगी। इसवास्ते वह भिन्न होकर अद्वैतरूपसे नहीं वर्तता है, किन्तु अभिन्न होकरही वह अद्वैतरूपसे वर्तता है ॥ ४ ॥

अहमेव परं यस्मात्सारासारतरं शिवम् ।
गमागमविनिर्मुक्तं निर्विकल्पं निराकुलम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

अहम्, एव, परम्, यस्मात्, सारासारतरम्, शिवम्, गमागमविनिर्मुक्तम्, निर्विकल्पम्, निराकुलम् ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैंही	शिवम्=कल्याणस्वरूप हूँ
एव=निश्चय करके	गमागमविनिर्मुक्तम्=और गमनागमनसे भी रहित हूँ और
यस्मात्=जिस प्रकृतिसे	
परम्=सूक्ष्म हूँ और	निर्विकल्पम्=निर्विकल्प हूँ
सारासारतरम्=सारअसारसे भी रहित हूं	निराकुलम्=कुलसे रहित हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं ही प्रकृतिसे सूक्ष्म हूँ, सार असारसे रहित हूँ, कल्याणरूप हूँ, गमनागमनसे रहित हूँ, और विकल्पसे भी रहित हूँ, अर्थात् मेरेमें द्वैत, अद्वैतका विकल्प भी नहीं बनता है, और कुलसे भी रहित हूँ ॥५॥

सर्वावयवनिर्मुक्तं तदहं त्रिदशार्चितम् ।
संपूर्णत्वान्न गृह्णामि विभागं त्रिदशादिकम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

सर्वावयवनिर्मुक्तम्, तत्, अहम्, त्रिदशार्चितम्, संपूर्णत्वात्, न, गृह्णामि, विभागम्, त्रिदशादिकम् ॥

पदार्थः ।

तत् अहम्=सो मैं	सम्पूर्णत्वात्=सम्यक् पूर्ण होनेसे
सर्वावयव-निर्मुक्तम्=संपूर्ण अवयवोंसे रहित हूँ और	त्रिदशादिकम्=देवतादिकोंके
त्रिदशार्चितम्=देवताओंसे भी पूजित हूँ	विभागम्=विभागको
	न गृह्णामि=मैं ग्रहण नहीं करता हूँ

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—कि, सो सच्चिदानन्दरूप मैं निरवयव हूँ, अर्थात् अवयवरहित हूँ और सब देवताभी मेरा पूजन करते हैं । सबमें पूर्ण होनेसे देवता आदिकोंमें भी मैं ही हूँ. इसी वास्ते देवताओंके साथ भी मेरा विभाग अर्थात् भेद नहीं है किन्तु अभेद ही है ॥ ६ ॥

प्रमादेन न सन्देहः किं करिष्यामि वृत्तिमान् ।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते बुद्बुदाश्च यथा जले ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

प्रमादेन, न सन्देहः, किम्, करिष्यामि, वृत्तिमान्, उत्पद्यन्ते, विलीयन्ते, बुद्बुदाः, च, यथा, जले ॥

पदार्थः।

प्रमादेन=प्रमादकरके
वृत्तिमान्=अन्तःकरणकी वृत्तियों-[वाला
किम्=क्या
करिष्यामि=मैं करता हूँ ? किन्तु नहीं
यथा=जिस प्रकार
जले=जलमें
बुद्बुदाः=बुलबुले
उत्पद्यन्ते=उत्पन्न होते हैं
च=और
विलीयन्ते=लय होजाते हैं इसी प्रकार अन्तःकरणकी वृत्तियां भी उत्पन्न होती हैं। लय होती हैं
न संदेहः=इसमें संदेह नहीं है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—अन्तःकरणकी वृत्तियोंको मैं प्रमादकरके उत्पन्न नहीं कर्ता हूँ, किन्तु जैसे जलमें बुलबुले आपसे आप उत्पन्न होते हैं, और फिर उसीमें लय होजाते हैं, इसी प्रकार अन्तःकरणकी वृत्तियां भी आपसे आप उत्पन्न होती हैं, और फिर उसीमें लय भी हो जाती हैं, इसमें किसी तरहका संदेह नहीं है मैं तो इनका साक्षी हूँ ॥ ७ ॥

महदादीनि भूतानि समाप्यैवं सदैव हि।
मृदुद्रव्येषु तीक्ष्णेषु गुडेषु कटुकेषु च ॥ ८ ॥
कटुत्वं चैव शैत्यत्वं मृदुत्वं च यथा जले।
प्रकृतिः पुरुषस्तद्वदभिन्नं प्रतिभाति मे ॥ ९ ॥

पदच्छेदः।

महदादीनि, भूतानि, समाप्य, एवम्, सदा, एव, हि, मृदुद्रव्येषु तीक्ष्णेषु गुडेषु, कटुकेषु, च, कटुत्वम्, च, एव, शैत्यत्वम्, मृदुत्वम्, च, यथा, जले, प्रकृतिः, पुरुषः, तद्वत्, अभिन्नम्, प्रतिभाति, मे ॥

पदार्थः ।

महदादीनि=महत्तत्त्व आदि	चैव=और निश्चय करके
भूतानि=भूतोंको	शैत्यत्वम्=शीतता
सदैव=सब काल	च=और
हि=निश्चयकरके	मृदुत्वम्=कोमलता
एवम्= इस प्रकार	यथा=जिस प्रकार
समाप्य=समाप्त करै	जले=जलमें भिन्न प्रतीत होते हैं
मृदुद्रव्येषु=मृदुद्रव्योंमें	तद्वत्=तैसे ही
च=और	प्रकृतिः=प्रकृति और
तीक्ष्णेषु=तीक्ष्ण द्रव्योंमें	पुरुषः=पुरुष
गुडेषु=गुडमें	मे=मुझको
कटुकेषु=कटुद्रव्योंमें	अभिन्नम्=अभेदही
कटुत्वम्=कटुरस	प्रतिभाति=भान होता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जैसे मृदु अर्थात् कोमल द्रव्योंमें कोमलता उनसे भिन्न करके भान नहीं होती है, और मिरचा आदिक तीक्ष्णद्रव्योंमें तीक्ष्णता, और मधुर गुडादिक द्रव्योंमें मधुरता, और नीमादिक कटुद्रव्योंमें कटुता, उनसे भिन्न करके भान नहीं होती है इसी प्रकार जैसे जलमें शीतता और कोमलता जलसे भिन्न करके प्रतीत नहीं होती है अर्थात् अपने २ द्रव्यके गुण अपने २ द्रव्यमें ही लीन हो जाते हैं, इसी प्रकार महत्तत्त्वसे आदि लेकर स्थूलभूतोंपर्यन्त इनको भी अपने कारणोंमें लय करके बाकी जो संपूर्ण तत्त्वोंका कारणीभूत प्रकृति है, उसका भी पुरुषके साथ हमको भेद किसी प्रकारसे भी प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि प्रकृतिको चेतनकी शक्ति माना है, शक्तिका शक्तिवालेसे भेद किसी प्रकारसे भी नहीं होसकता है। जैसे अग्निकी शक्ति अग्निसे भिन्न होकर प्रतीत नहीं होती है किन्तु कार्यद्वारा अनुमान की जाती है। इसी प्रकार चेतनकी शक्ति भी चेतनसे भिन्न नहीं भान होती है, किन्तु चेतनसे तिसका भेद नहीं है अर्थात् चेतनरूपही है ॥ ८–९ ॥

सर्वाख्यारहितं यद्यत्सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं परम् ।
मनोबुद्धीन्द्रियातीतमकलङ्कं जगत्पतिम् ॥ १० ॥

ईदृशं सहजं यत्र अहं तत्र कथं भवेत्।
त्वमेव हि कथं तत्र कथं तत्र चराचरम्॥ ११॥

पदच्छेदः।

सर्वाख्यारहितम्, यद्वत्, सूक्ष्मात्, सूक्ष्मतरम्, परम्, मनोबुद्धीन्द्रियातीतम्, अकलंकम्, जगत्पतिम्, ईदृशम्, सहजम्, यत्र, अहम्, तत्र, कथम्, भवेत्, त्वम्, एव, हि, कथम्, तत्र, कथम्, तत्र, चराचरम्॥

पदार्थः।

यद्वत्=जिसवास्ते
सर्वाख्या-रहितम् } आत्मा सम्पूर्ण संज्ञासे रहित है इसीवास्ते
सूक्ष्मात्=सूक्ष्मसे भी
सूक्ष्मतरम्=अतिसूक्ष्म है
परम्=उत्कृष्ट है
मनोबुद्धीं-द्रियातीतम् } मन बुद्धि और इंद्रियोंकाअविषयहै फिर
अकलंकम्=कलंकसे रहित है
जगत्पतिम्=जगत्का पति है
ईदृशम्=इस प्रकारके गुण
सहजम्=स्वभावसे
यत्र=जिसमें विद्यमान है
तत्र=तिसमें
अहम्=मैं
कथम्=किस प्रकार
भवेत्=कहना बनता है और
कथम्=कैसे बनता है और
त्वम् एव हि=तू निश्चयकरके
कथम्=कैसे बनता है और
तत्र=तिसमें फिर
चरारचम्=चर अचर
कथम्=कैसे बनता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-वह ब्रह्मचेतन जिसवास्ते सम्पूर्ण नामादिक संज्ञासे रहित है, इसीवास्ते वह सबसे सूक्ष्म जो कि प्रकृति है, उससे भी अतिसूक्ष्म और श्रेष्ठ है, और मन बुद्धि तथा इंद्रियोंका भी वह विषय नहीं है फिर वह कलंकसे अर्थात् उपाधिसे भी रहित है, संपूर्ण जगत्का स्वामी है। इस प्रकारका जिसका स्वभावसे ही स्वरूप है तिस चेतन आत्मामें "अहम्" मैं और "त्वम्" तू यह कथन किस प्रकारसे बनता है?

अर्थात् अहम् त्वम् आदि भेदोंका कथन तिसमें नहीं बनता है । और यह चराचररूप जगत् भी तिसमें कैसा बनता है किन्तु किसी प्रकारसे भी नहीं बनता है ॥ १० ॥ ११ ॥

गगनोपमं तु यत्प्रोक्तं तदेव गगनोपमम् ।
चैतन्यं दोषहीनं च सर्वज्ञं पूर्णमेव च ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

गगनोपमम्, तु, यत्, प्रोक्तम्, तत्, एव, गगनोपमम्, चैतन्यम्, दोषहीनम्, च, सर्वज्ञम्, पूर्णम्, एव, च ॥

पदार्थः ।

तु यत्=पुनः जो कि	दोषहीनम्=दोषोंसे हीन है
गगनोपमम्=आकाशकी उपमा-	च=और
प्रोक्तम्=कथन किया है [वाला	सर्वज्ञम्=सर्वज्ञभी है
तत् एव=सोई निश्चय करके	च एव=और निश्चय करके
गगनोपमम्=गगनकी उपमावाला है	पूर्णम्=पूर्ण भी है
चैतन्यम्=वह चेतन है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जो कि गगनकी उपमावाला कहा है वही गगनकी उपमावाला है, उससे भिन्न दूसरा गगन कोई भी गगनकी उपमावाला नहीं है, सो चेतनसे भिन्न दूसरा चेतनभी उपमावाला नहीं है । सो चेतन है जो दोषसे रहित है, वही सर्वज्ञ और पूर्ण भी है ॥ १२ ॥

पृथिव्यां चरितं नैव मारुतेन च वाहितम् ।
वारिणा पिहितं नैव तेजोमध्ये व्यवस्थितम् ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

पृथिव्याम्, चारितम्, न, एव, मारुतेन, च, वाहितम्, वारिणा, पिहितम्, नैव, तेजोमध्ये, व्यवस्थितम् ॥

पदार्थः।

पृथिव्याम्=पृथिवीमें वह चेतन
चरितम्=गमन
एव=निश्चय करके
न=नहीं करता है
मारुतेन=मारुत जो है सो
वाहितम्=वाहन तिसको
न च=नहीं करता है
वारिणा=जल करके
पिहितम्=आच्छादित वह
नैव=नहीं है और
तेजोमध्ये=तेजके मध्यमें
व्यवस्थितम्=स्थित भी है,और तेज तिसको जला भी नहीं सकता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह चेतन आत्मा पृथिवीमें चलता नहीं वायु उसको ले नहीं जा सकता, न पानी ही उसको ढक सकता है। वह तेजके बीच स्थिर रहता है ॥ १३ ॥

आकाशं तेन संव्याप्तं न तद्व्याप्तं च केनचित्।
स बाह्याभ्यन्तरं तिष्ठत्यवच्छिन्नं निरन्तरम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः।

आकाशम्, तेन, संव्याप्तम्,न, तत्, व्याप्तम्,च,केनचित्, सः, बाह्याभ्यन्तरम्, तिष्ठति, अवच्छिन्नम्, निरन्तरम् ॥

पदार्थः।

तेन=तिस चेतन करके
आकाशम्=आकाश
संव्याप्तम्=सम्यक् व्याप्त है
च तत्=और सो चेतन
केनचित्=किसीप्रकारके भी
न व्याप्तम्=नहीं व्याप्त है
सः=सो व्यापक चेतन
अवच्छिन्नम्=व्यवधानसे रहित
निरन्तरम्=एकरस
बाह्याभ्यन्तरम्=सबके बाहर और भीतर
तिष्ठति=स्थित है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस चेतनसे आकाश अच्छे प्रकारसे व्याप्त है और वह किसीसे व्याप्त नहीं है, वह सर्वव्यापक बाहर भीतर सर्वत्र

व्यवधानसे रहित सदा स्थित रहता है, आकाशका कोई अन्त नहीं पासकता यह इतना मालूम पडता है कि इसकी कोई सीमा नहीं है, कि, कहांतक यह है । इसका अनुमान भी नहीं होसकता ऐसा आकाश भी उस परमात्मासे व्याप्त है अर्थात् सर्वत्र आत्मा ही है ॥ १४ ॥

सूक्ष्मत्वात्तदहृश्यत्वान्निर्गुणत्वाच्च योगिभिः ।
आलम्बनादि यत्प्रोक्तं क्रमादालम्बनं भवेत् ॥१५॥

पदच्छेदः ।

सूक्ष्मत्वात्,तत्, अदृश्यत्वात्, निर्गुणत्वात्, च, योगिभिः, आलम्बनादि, यत्, प्रोक्तम्, क्रमात्, आलम्बनम्, भवेत् ॥

पदार्थः ।

योगिभिः=योगियोंने	**क्रमात्**=क्रमसे
यत्=जो चेतनका	**भवेत्**=होता है
आलम्बनादि=आलम्बनादि	**तत्सूक्ष्मत्वात्**=तिस सूक्ष्म होनेसे
प्रोक्तम्=कहा है सो	**अदृश्यत्वात्**=अदृश्य होनेसे
आलम्बनम्=आलम्बन	**निर्गुणत्वात्**=निर्गुण होनेसे

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-योगियोंने अर्थात् जीवन्मुक्त ज्ञानवानोंने जिस चेतन ब्रह्मका आश्रयण करना कहा है सो एकवारभी नहीं होता है किन्तु क्रमसे ही होता है । प्रथम स्थूलपदार्थमें मनका निरोध किया जाता है फिर धीरे २ उससे सूक्ष्ममें फिर उससे सूक्ष्ममें इस रीतिसे धीरे २ तिसका साक्षात्कार होकर ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति भी हो जाती है क्योंकि वह चेतन अति सूक्ष्म है अदृश्य है निर्गुण है इस वास्ते इसका आलबन एकबारभी नहीं होता है, किन्तु क्रमसे और युक्तिसे होता है ॥ १५ ॥

योगियोंने जो आलम्बनका क्रम कहा है सो क्रम अब इस श्लोकमें दिखाते हैं-

सतताऽभ्यासयुक्तस्तु निरालम्बो यदा भवेत् ।
तल्लयाल्लीयते नान्तर्गुणदोषविवर्जितः ॥ १६ ॥

पदच्छेदः।

सतताभ्यासयुक्तः, तु, निरालम्बः, यदा, भवेत्, तल्लयात्, लीयते, न, अन्तः, गुणदोषविवर्जितः ॥

पदार्थः।

यदा तु=जिस कालमें पुनः
सतताभ्यासयुक्तः=निरन्तर अभ्यास करके युक्त हुआ २
निरालम्बः=निरालम्ब
भवेत्=होताहै और
अन्तः=भीतरसे
गुणदोषविवर्जितः=गुण और दोषोंसे रहित होतहै तिसी कालमें
तल्लयात्=चित्तके लय करनेसे
लीयते=लय हो जाता है
न=विना इसके नहीं होता

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जो पुरुष प्रथम निरालम्ब होकर अर्थात् किसी भी देवता आदिकको आश्रथण न करके केवल चेतनको आश्रयण करके निरन्तर ही अभ्यास करके युक्त होता है और अविद्याकृत गुणों और दोषोंसे रहित होजाता हैं तब इसका चित्त लय होजाता है चित्तके लय होजानेसे स्वयं भी ब्रह्ममें ही लीन होजाता है ॥ १६ ॥

विषविश्वस्य रौद्रस्य मोहमूर्च्छाप्रदस्य च।
एकमेव विनाशाय ह्यमोघं सहजामृतम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः।

विषविश्वस्य, रौद्रस्य, मोहमूर्च्छाप्रदस्य, च, एकम्, एव, विनाशाय, हिं, अमोघम्, सहजामृतम् ॥

पदार्थः।

विषविश्वस्य=विषरूपी विषयके
विनाशाय=नाशके लिये
एव हिं=निश्चयकरके
एकम्=एक
अमोघम्=अमोघ और
सहजामृतम्=सहज ही अमृत है फिर कैसा वह विषय है
रौद्रस्य=बडा भयानक
च–और
मोहमूर्च्छाप्रदस्य=मोह तथा मूर्च्छाको देनेवाला है

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जगत्‌रूपी एक बडाभारी विष है. यह विष भयानक और मोहमूर्च्छाके देनेवाला भी है । इसके नाशके लिये एक ही अमोघ अर्थात् यथार्थ और सहज ही अमृत है, सो आत्मज्ञानरूपी एक अमृत है क्योंकि विना आत्मज्ञानके यह विष दूर नहीं होता है ॥ १७ ॥

अव उसी अमृतको दिखाते हैं:—

भावगम्यं निराकारं साकारं दृष्टिगोचरम् ।
भावाभावविनिर्मुक्तमन्तरालं तदुच्यते ॥ १८ ॥

पदच्छेदः ।

भावगम्यम्, निराकारम्, साकारम्, दृष्टिगोचरम्, भावाभावविनिर्मुक्तम्, अन्तरालम्, तत्, उच्यते ॥

पदार्थः ।

निराकारम्=निराकार जो चेतन है सो	भावाभावविनिर्मुक्तम्=भाव अभावसे जो रहित है
भावगम्यम्=चित्तसे ही जानाजाता है और जो कि	तत्=सो
साकारम्=साकार है वह	अन्तरालम्=अन्तराल ही
दृष्टिगोचरम्=दृष्टिका विषय है	उच्यते=कहाजाता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो कि निराकार व्यापक चेतन है सो केवल चित्तकरके ही जाना जाता है क्योंकि वह इन्द्रियोंका विषय नहीं है, और जो कि साकार है वह दृष्टिका विषय है, इतना ही निराकार साकारका फरक है, फिर जो कि भाव पदार्थसे और अभावरूपसे भी रहित है सो अन्तराल ही कहा जाता है ॥ १८ ॥

बाह्यभावं भवेद्विश्वमन्तः प्रकृतिरुच्यते ।
अन्तरादन्तरं ज्ञेयं नारिकेलफलाम्बुवत् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ।

बाह्यभावम्, भवेत्, विश्वम्, अन्तः, प्रकृतिः, उच्यते, अन्तरात्, अन्तरम्, ज्ञेयम्, नारिकेलफलाम्बुवत् ॥

बाह्यभावम्=बाहर जितना कि भाव पदार्थ है
विश्वम्=सो जगत्
भवेत्=होता है और
अन्तः=बाह्यभावके भीतर
प्रकृतिः=प्रकृति
उच्यते=कही जाती है
अन्तरात्=अन्तर प्रकृतिसे भी
अन्तरम्=भीतर
ज्ञेयम्=वह ब्रह्म जाननेके योग्य है
नारिकेल-फलाम्बुवत्=जैसे नारिकेल फलके अन्दर जल होता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—बाहर जो कुछ दिखाता है यह सब स्थूलभाव पदार्थ विश्व कहा जाता है और इसके भीतर इसका कारण जो है उसका नाम प्रकृति है उस सूक्ष्म प्रकृतिके भीतर और प्रकृतिसे भी सूक्ष्म वह चेतन ब्रह्म व्यापक जाननेके योग्य है इसीमें दृष्टान्तको कहते हैं। जैसे नारियलके फलका ऊपरका बकला बड़ा कड़ा होता है और उसके भीतरकी गिरी बकलेसे सूक्ष्म होती है उस गिरीसे भीतर सूक्ष्म उसके जल रहता है। इसी प्रकार दार्ष्टान्त में भी घटा लेना ॥ १९ ॥

भ्रान्तिज्ञानं स्थितं बाह्ये सम्यग्ज्ञानं च मध्यगम् ।
मध्यान्मध्यतरं ज्ञेयं नारिकेलफलाम्बुवत् ॥ २० ॥

पदच्छेदः ।

भ्रान्तिज्ञानम्, स्थितम्, बाह्ये, सम्यग्ज्ञानम्, च, मध्यगम्, मध्यात्, मध्यतरम्, ज्ञेयम् नारिकेलफलाम्बुवत् ॥

पदार्थः ।

भ्रान्तिज्ञानम्=भ्रांतिज्ञान
बाह्ये=बाहरके पदार्थोंमें
स्थितम्=स्थित है
च=और
सम्यग्ज्ञानम्=यथार्थ ज्ञान
मध्यगम्=अन्तर है
मध्यात्=मध्यसे भी
मध्यतरम्=अतिमध्य
ज्ञेयम्=जाननेके योग्य है
नारिकेलफलाम्बुवत्=नारियलके फलके जलकी तरह

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—बाहरके प्रपंचमें तो भ्रांतिज्ञान होता है और उसके अन्तर अर्थात् मध्यमें स्थितका जो ज्ञान है सो समीचीन ज्ञान है जैसे नारियलके फलके भीतर जल रहता है इसी प्रकार उसके सूक्ष्म आत्मा जाननेके योग्य हैं उसीके ज्ञानसे जीवन्मुक्त होता हैं ॥२०॥

पौर्णमास्यां यथा चंद्र एक एवातिनिर्मलः ।
तेन तत्सदृशं पश्येद्द्विधा दृष्टिविपर्ययः ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ।

पौर्णमास्याम्, यथा, चन्द्रः, एकः, एव, अतिनिर्मलः, तेन, तत्सदृशम्, पश्येत्, द्विधा, दृष्टिविपर्ययः ॥

पदार्थः ।

पौर्णमास्याम्=पौर्णमासीमें	**तेन**=तिसी कारणसे
यथा=जिस प्रकार	**तत्सदृशम्**=तिस चन्द्रमाके तुल्य ही
एकः=एकही	**पश्येत्**=आत्माको भी निर्मल देखें
चन्द्रः=चन्द्रमा	**द्विधा**=दो प्रकारका
एव=निश्चयकरके	**दृष्टिविपर्ययः**=दृष्टिविपर्यय ज्ञान है
अतिनिर्मलः=अतिनिर्मल होता है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जैसे पूर्णमासीका जो चन्द्रमा है सो एकही अति निर्मल दिखाई पडता है इसी प्रकार आत्मा भी अति निर्मल और एक है चन्द्रमाकी तरह एकही आत्माको शुद्ध देखे । जैसे नेत्रमें रोग होनेसे दो चन्द्रमा देख पडते हैं सो विपर्यय ज्ञान है अर्थात् भ्रमज्ञान है क्योंकि वास्तवमें चन्द्रमा दो नहीं हैं किन्तु एकही है इसी प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्डभरमें आत्मा भी एकही है आत्मामें जो द्वैतकी कल्पना है, सो भ्रमज्ञान है ॥२१॥

अनेनैव प्रकारेण बुद्धिभेदो न सर्वगः ।
दाता च धीरतामेति गीयते नामकोटिभिः ॥ २२ ॥

पदच्छेदः ।

अनेन, एव, प्रकारेण, बुद्धिभेदः, न, सर्वगः, दाता, च, धीरताम्, एति, गीयते, नामकोटिभिः ॥

अनेन=इसीपूर्वोक्त	च=और
प्रकारेण=प्रकारसे	दाता=देनेवाला
एव=निश्चयकरके	धीरताम्=धीरताको
बुद्धिभेदः=ज्ञानका भेद	एति=प्राप्त होता है
सर्वगः=सवगतमें	नामकोटिभिः=कोटि नामों करके
न=नहीं होता है	गीयते=गाया जाता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–इसी पूर्वोक्त प्रकार करके सर्वगत चेतनमें किसी-प्रकारसे भी भेदकी कल्पना नहीं बन सकती है । जो विद्वान् जिज्ञासुओंके प्रति उस ब्रह्मचेतनके अभेद ज्ञानका ज्ञान करता है वह धैर्यताको प्राप्त होता है और करोडों नामों करके गायन किया जाता है अर्थात् जिज्ञासुजन तिसकी करोडों नामों करके स्तुति करते हैं ॥ २२ ॥

गुरुप्रज्ञाप्रसादेन मूर्खो वा यदि पंडितः ।
यस्तु सम्बुध्यते तत्त्वं विरक्तो भवसागरात् ॥२३॥

पदच्छेदः ।

गुरुप्रज्ञाप्रसादेन, मूर्खः, वा, यदि, पंडितः, यः, तु, सम्बुध्यते, तत्त्वम्, विरक्तः, भवसागरात् ॥

पदार्थः ।

गुरुप्रज्ञा- प्रसादेन } =गुरुकी बुद्धिकी प्रसन्नताकरके	तु यः=पुनः जो
	तत्त्वम्=आत्मतत्त्वको
मूर्खः=मूर्ख हो	सम्बुध्यते=जान लेता है वह पुरुष
वा= अथवा	भवसागरात्=संसाररूपी समुद्रसे
यदि=यदि	विरक्तः=विरक्त
पंडितः=पंडित हो	(भवति=विरक्त होजाता है)

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-मूर्ख हो अथवा पंडित हो, गुरुकी कृपासे जो आत्मतत्त्वको यथार्थ रूपसे जानलेता है वह शीघ्रही संसाररूपी समुद्रसे विरक्त अर्थात् उपराम युक्त होकर जन्म मरणसे छूटजाता है, फिर संसार-चक्रमें नहीं आता है ॥ २३ ॥

रागद्वेषविनिर्मुक्तः सर्वभूतहिते रतः ।
दृढबोधश्च धीरश्च स गच्छेत्परमं पदम् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ।

रागद्वेषविनिर्मुक्तः, सर्वभूतहिते, रतः, दृढबोधः, च, धीरः, च, सः, गच्छेत्, परमम्, पदम् ॥

पदार्थः ।

रागद्वेषविनिर्मुक्तः=जो रागद्वेषसे रहित है	दृढबोधः=जिसको दृढवोध है
च=और	धीरः=धीर है
सर्वभूतहिते रतः=संपूर्ण भूतोंके हितमें प्रीतिवाला है	सः=विद्वान्
च=और	परमम्=परम
	पदम्=पदको
	गच्छेत्=गमन करता है

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं-सोई विद्वान् अर्थात् ज्ञानवान् परमपदको प्राप्त होता है जो कि रागद्वेषादिकोंसे रहित है और संपूर्ण भूतोंके हित-कीही इच्छा करता है किसीके भी अहितकी जो इच्छा नहीं करता है फिर जिसको आत्माकाभी दृढ बोध है अर्थात् यथार्थ ज्ञान है और धैर्यतावाला भी है वही परमपदको प्राप्त होता है दूसरा नहीं ॥ २४ ॥

घटे भिन्ने घटाकाश आकाशे लीयते यथा ।
देहाभावे तथा योगी स्वरूपे परमात्मनि ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ।

घटे, भिन्ने, घटाकाशः, आकाशे, लीयते, यथा, देहाभावे, तथा, योगी, स्वरूपे, परमात्मनि ।

पदार्थः ।

घटे भिन्ने=घटके नाश होनेपर	तथा=तैसे ही
यथा=जैसे	देहाभावे=देहके नाश होनेपर
घटाकाशः=घटाकाश	योगी=जीवन्मुक्त
आकाशे=महाकाशमें	परमात्मनि=परमात्माके
लीयते=लय होजाता है	स्वरूपे=स्वरूपमें लीन होजाता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-जबतक घटरूपी उपाधि बनी है तबतक घटाकाशका भी महाकाशके साथ भेद प्रतीत होता है । उपाधिके नाश होजानेपर जैसे घटाकाशका महाकाशके साथ अभेद होजाता है तैसे ही लिंगशरीररूपी उपाधिके नाश होजानेपर ज्ञानवान्का आत्मा भी परमात्मामें ही लीन होजाता है अर्थात् दोनोंका अभेद होजाता है ॥ २५ ॥

उक्तेयं कर्मयुक्तानां मतिर्यान्तेऽपि सा गतिः ।
न चोक्ता योगयुक्तानां मतिर्यान्तेऽपि सा गतिः२६॥

पदच्छेदः ।

उक्ता, इयम्, कर्मयुक्तानाम्, मतिः, या, अन्ते, अपि सा, गतिः, न, च, उक्ता, योगयुक्तानाम्, मतिः, या, अन्ते, अपि, सा, गतिः ॥

पदार्थः ।

कर्मयुक्तानाम्=कार्मियोंके लिये	योगयुक्तानाम्=जीवन्मुक्त ज्ञानियोंके लिये
इयम्=यह	न च उक्ता=नहीं कहा है
उक्ता=कहा है कि,	या=जैसी
या=जैसी	अन्ते=अन्तमें
अन्ते=अन्तमें	अपि=निश्चय करके
मतिः=बुद्धि होती है	मतिः=मति होती है
अपि=निश्चय करके	सा गतिः=सोई गति होती है
सा गतिः=वैसी गति होती है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--जिस वार्तामें जिसका रात्रिदिन अधिक अभ्यास होता है उसीके दृढ संस्कार तिसके भीतर होते हैं और अन्तसमयमें अर्थात् मरणकालमें भी वही संस्कार उद्भूत होकर उसको उसी गतिको प्राप्तकर देते हैं तात्पर्य यह है कि, जिसका कि जिस वस्तुमें अति प्रेम होता है, स्त्रीमें या पुत्रमें या धनमें या पशुपक्षी आदिकोंमें अन्तसमयमें भी उसका मन उसी तरफ चला जाता है और वह मर करके उसी योनिमें जन्मता है सो यह अन्तवाली गतिकी गति कार्मियोंके लिये कही है, जीवन्मुक्त ज्ञानवालोंके लिये यह अन्तवाली मतिकी गति नहीं कही है, क्योंकि योगी लोग तो सदैव ब्रह्मके ही चिन्तनमें रहते हैं इसीवास्ते अन्त समयमें भी उनकी मति ब्रह्म चिन्तनको ही करती है और वह मर करके ब्रह्ममें ही लीन हो जाते हैं ॥ २६ ॥

या गतिः कर्मयुक्तानां सा च वागिन्द्रियाद्वदेत् ।
योगिनां या गतिः क्वापि ह्यकथ्या भवतार्जिता ॥ २७ ॥

पदच्छेदः ।

या, गतिः, कर्मयुक्तानाम्, सा, च, वागिन्द्रियात्, वदेत्, योगिनाम्, या, गतिः, क्वापि, हि, अकथ्या, भवता, अर्जिता ॥

पदार्थः।

कर्मयुक्तानाम्=कर्मयोगियोंकी
या गतिः=जो गति शास्त्रोंमें कही है
सा=सो गति
वागिन्द्रियात्=वाणी इंद्रियकरके
वदेत्=कही जाती है
च=और
योगिनाम्=योगियोंकी
या गतिः=जो गति
हि=निश्चयकरके
भवता=तुमने
अर्जिता=संग्रह की है
क्वापि=कहीं भी वह
अकथ्या=कथन करनेके योग्य नहीं है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-कर्मयोगियोंकी जो स्वर्ग और नरककी प्राप्तिरूपी गति है सो तो शास्त्रोंमें कथन की है और वागिन्द्रिय भी उसको कथन करसकती है। और आत्मज्ञानियोंको जो गति आपलोगोंने शास्त्रमें देखी है वह मन वाणी करके भी कथन नहीं की जाती है॥ २७॥

एवं ज्ञात्वा त्वमुं मार्गं योगिनां नैव कल्पितम्।
विकल्पवर्जनं तेषां स्वयं सिद्धिः प्रवर्तते॥ २८॥

पदच्छेदः।

एवम्, ज्ञात्वा, तु, अमुम्, मार्गम्, योगिनाम्, न; एव, कल्पितम्, विकल्पवर्जनम्, तेषाम्, स्वयम्, सिद्धिः, प्रवर्तते॥

पदार्थः।

एवं=इस प्रकारसे
तेषाम्=उन पूर्वोक्त
योगिनाम्=योगियोंके
विकल्पवर्जनम्=विकल्पसे रहित
अमुम्=इस पूर्वोक्त
मार्गम्=मार्गको
ज्ञात्वा=जानकरके
स्वयम्=आपसे आप
सिद्धिः=सिद्धि
प्रवर्तते=प्रवृत्त होती है
तु=पुनः फिर वह
एव=निश्चयकरके
न कल्पितम्=कर्मियोंके मार्गकी तरह कल्पित नहीं है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–ज्ञानयोगियोंका जो मार्ग पूर्व कहा है सो कर्मियोंके मार्गकी तरह कल्पनासे रहित अर्थात् जैसे कर्मियोंका मार्ग मिथ्या और पुनरावृत्तिवाला है तैसे नहीं है। जो विद्वान् इस प्रकार जानकरके ज्ञानयोगियोंके मार्गमें प्रवृत्त होता है उसमें आपसे आप सिद्धि प्रवृत्त होती है और वह फिर संसारबंधनसे मुक्त भी होजाता है ॥ २८ ॥

तीर्थे वांत्यजगेहे वा यत्र कुत्र मृतोऽपि वा ।
न योगी पश्यते गर्भ परे ब्रह्मणि लीयते ॥ २९ ॥

पदच्छेदः ।

तीर्थे, वा, अन्त्यजगेहे, वा, यत्र, कुत्र, मृतः, अपि, वा, न, योगी, पश्यते, गर्भम्, परे, ब्रह्मणि, लीयते ॥

पदार्थः ।

योगी=आत्मज्ञानी	गर्भम्=गर्भको
तीर्थे=तीर्थमें	न पश्यते=नहीं देखता है
वा=अथवा	अपि=निश्चयकरके
अन्त्यजगेहे=चांडालके गृहमें	परे=उत्कृष्ट
वा=अथवा	ब्रह्मणि=ब्रह्ममें ही
यत्र कुत्र=जहां कहीं	लीयते=लय भावको प्राप्त होता है
मृतः=मरनेपर	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जीवन्मुक्त ज्ञानवान् चाहे किसी तीर्थपर शरीरका त्याग करदे अथवा चांडालके घरमें शरीरका त्याग करदे अथवा जहां कहीं अर्थात् जलमें, थलमें, अन्तरिक्षमें, रास्ता वगैरहमें शरीरका त्याग करदे तो भी फिर कर्मी मूर्खकी तरह माताके गर्भमें नहीं आता है किंतु ब्रह्ममेंही लीन होजाता है ॥ २९ ॥

सहजमजमचिन्त्यं यस्तु पश्येत्स्वरूपं
घटति यदि यथेष्टं लिप्यते नैव दोषैः ॥

सकृदपि तदभावात्कर्म किञ्चिन्न कुर्यात्
तदपि न च विबद्धः संयमी वा तपस्वी ॥ ३० ॥

पदच्छेदः।

सहजम्, अजम्, अचिन्त्यम्, यः, तु, पश्येत्, स्वरूपम्, घटति, यदि, यथा, इष्टम्, लिप्यते, न, एव, दोषः, सकृत्, अपि, तदभावात्, कर्म, किंचित्, न, कुर्यात्, तत्, अपि, न, च, विबद्धः, संयमी, वा, तपस्वी ॥

पदार्थः।

तु=पुनः फिर	नव=नहीं
यः=जो विद्वान्	लिप्यते=लिप्त होता है
सहजम्=स्वाभाविक	तदभावात्=दोषोंका अभाव हो जानेसे
अजम्=जन्मसे रहित	किञ्चित्=किञ्चित्
अचिन्त्यम्=मन वाणीके अविषय	कर्म=कर्मको
स्वरूपम्=स्वरूपको	न कुर्यात्=न भी करै
सकृत=एक बार भी	तदपि=तब भी
अपि=निश्चय करके	संयमी=संयमी
पश्येत्=देखे और	वा=अथवा
यदि=यदि वह	तपस्वी=तपस्वी
यथेष्टम्=यथेष्ट चेष्टाको	विबद्धः=बद्ध
घटति=करता है तो	न च=नहीं होता है
दोषैः=दोषों करके	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो विद्वान् स्वभावसे ही अज और अचिन्त्य आत्माके स्वरूपको एकवार भी देख लेता है वह यथेष्ट चेष्टाको करनेसे भी अर्थात् शास्त्रसंगत अथवा शास्त्रविरुद्ध चेष्टाके करनेसे भी दोषों करके

कदापि लिपायमान नहीं होता है । जब कि, तिसमें कोई भी दोष नहीं रहता हैं तब फिर वह यदि किसी भी कर्मको न करै चाहे वह संयमी हो, अथवा तपस्वी हो, फिर वह किसी प्रकारसे भी बंधायमान नहीं होता है ॥ ३० ॥

निरामयं निष्प्रतिमं निराकृतिं
निराश्रयं निर्वपुषं निराशिषम् ।
निर्द्वन्द्वनिर्मोहमलुप्तशक्तिकं
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३१ ॥

पदच्छेदः ।

निरामयम्, निष्प्रातिमम्, निराकृतिम्, निराश्रयम्, निर्वपुषम्, निराशिषम्, निर्द्वन्द्वनिर्मोहम्, अलुप्तशक्तिकम्, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

तम्=विद्वान् तिस	**निराश्रयम्**=निराश्रयको
आत्मानम्=आत्माको	**निर्वपुषम्**=शरीरसे रहितको
उपैति=प्राप्तहोता है कैसे आत्माको	**निराशिषम्**=इच्छासे रहितको
ईशम्=जगत्के स्वामीको	**निर्द्वन्द्व- निर्मोहम्**=रागद्वेषसे और मोहसे रहितको
शाश्वतम्=नित्यको	**अलुप्तश- क्तिकम्**=विद्यमान शक्ति-वालेको
निरामयम्=रोगसे रहितको	
निष्प्रातिमम्=प्रतिमासे रहितको	
निराकृतिम्=निराकृतिको	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-ज्ञानवान् उस आत्माको प्राप्त होता है जो कि सम्पूर्ण जगत्का स्वामी है, ईश्वर है । फिर वह कैसा है ? नित्य है, नाशसे रहित है, रोगसे रहित है, प्रतिमासे अर्थात् मूर्तिसे रहित है, आकार-

सेभी रहित है और संसारमें जितने स्थूलपदार्थ हैं ये सब सूक्ष्मप्रकृतिके आश्रित हैं, और प्रकृति चेतन आत्माके आश्रित है, आत्मा निराश्रय है अर्थात् किसीके भी वह आश्रित नहीं है। फिर वह कैसा है? शरीरसे रहित है, इच्छासे रहित है, रागद्वेषादिक और सुखदुःखादिक द्वन्द्वोंसे भी रहित है, मोहसे भी रहित है, और अलुप्तशक्तिक है अर्थात् उसकी शक्ति भी लुप्त नहीं हुई है ॥ ३१ ॥

वेदो न दीक्षा न च मुण्डनक्रिया
गुरुर्न शिष्यो न च यन्त्रसम्पदः ।
मुद्रादिकं चापि न यत्र भासते
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३२ ॥

पदच्छेदः ।

वेदः, न, दीक्षा, न, च, मुण्डनक्रिया, गुरुः, न, शिष्यः, न, च, यन्त्रसंपदः, मुद्रादिकम्, च, अपि, न, यत्र, भासते, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

यत्र=जिसमें
वेदः=वेद और
दीक्षा=दीक्षा भी
न=नहीं भान होता है और
मुण्डनक्रिया= मुंडन क्रिया भी
न च=नहीं भान होती है और
गुरुः=गुरु तथा
शिष्यः=शिष्य भी
न=नहीं भासता
यंत्रसंपदः=यंत्रोंकी संपदाभी हैं नहीं

च अपि=और निश्चयकरके
मुद्रादिकम्=मुद्रा आदिक भी
यत्र=जिसमें
न भासते=नहीं ही भासते हैं
तम्=तिसी
ईशम्=ईश्वर
आत्मानम्=आत्माको
शाश्वतम्=नित्यको
उपैति=विद्वान् प्राप्त होता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जिस जीवन्मुक्ति अवस्थामें गुरुशिष्यादि व्यवहार नहीं होता है और जितनी कि, मुंडन आ दिक किया हैं और यन्त्र मन्त्र आदिक संपदा हैं वे भी सब प्रतीत नहीं होती हैं और जिस आत्मामें यह गुरु शिष्यादिक व्यवहार सब नहीं भासता है उसी आत्मामें ज्ञानवान् सब मरकरके लय होजाते हैं ॥ ३२ ॥

न शांभवं शाक्तिकमानवं न वा
पिण्डं च रूपं च पदादिकं न वा।
आरम्भनिष्पत्तिघटादिकं च नो
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३३ ॥

पदच्छेदः।

न, शांभवम्, शाक्तिकमानवम्, न, वा, पिण्डम्, च, रूपम्, च पदादिकम्, न, वा, आरम्भनिष्पत्तिघटादिकम्, च, नो, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः।

शाम्भवम्=उस चेतन आत्मामें शांभवपना भी
न=नहीं है और
शाक्तिकमानवम्=शक्तिक तथा मानव-पना भी उसमें नहीं हैं
च वा=और अथवा
पिंडम्=पिण्डभाव भी
न=तिसमें नहीं है
च=और
रूपम् न=रूपभी तिसमें नहीं है और
पदादिकम्=पदादिक भी
न वा=उसमें नहीं है
च=और
आरम्भनिष्पत्तिघटादिकम्=घटादिकोंका आरम्भ और उत्पत्तिभी
नो=उसमें नहीं है विद्वान्
तम्=उसी चेतन
शाश्वतम्=नित्यको
ईशम्=ईश्वर
आत्मानम्=आत्माको
उपैति=प्राप्त होता है

भावार्थः।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं–उस चेतन आत्मामें शांभव और शाक्तिक आदिक किसी प्रकारका व्यवहार नहीं बनता है और घटादिक पदार्थोंकी उत्पत्ति आदिक भी वास्तवसे नहीं बनते हैं उसी नित्य आत्माको विद्वान् प्राप्त होता है अर्थात् शरीरका त्याग करके उसीमें लीन होजाता है ॥२३॥

यस्य स्वरूपात्सचराचरं जग-
दुत्पद्यते तिष्ठति लीयतेऽपि वा।
पयोविकारादिव फेनबुद्बुदा-
स्तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः।

यस्य, स्वरूपात्, सचराचरम्, जगत्, उत्पद्यते, तिष्ठति, लीयते, अपि, वा, पयोविकारात्, इव, फेनबुद्बुदाः, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः।

यस्य=जिस आत्माके	**पयोविकारात्**=जलके विकारसे
स्वरूपात्=स्वरूपसे	**फनबुद्बुदाः**=फेनबुद्बुदोंकी
सचराचरम्=सहित चर अचरके	**इव**=तरह होते हैं
जगत्=जगत्	**तम्**=तिसी
उत्पद्यते=उत्पन्न होता है	**ईशम्**=ईश्वर
तिष्ठति=जिनमें स्थिर हो जाता है	**आत्मानम्**=आत्मा
लीयते=फिर लय होजाता है	**शाश्वतम्**=नित्यको
अपि=वा निश्चय करके	**उपैति**=विद्वान् प्राप्त होता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जिस चेतन आत्माके स्वरूपसे सम्पूर्ण चर अचर अर्थात् स्थावर जंगमरूप जगत् उत्पन्न होता है और उसीमें स्थित होकर फिर तिसीमें लयभावको भी प्राप्त होजाता है, जिसतरह जलसे बुद्बुदे उत्पन्न

होकर फिर जलमें ही लय होजाते हैं एवं उसी नित्यरूप आत्माको विद्वान् भी प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

नासानिरोधो न च दृष्टिरासनं
बोधोऽप्यबोधोऽपि न यत्र भासते ।
नाडीप्रचारोऽपि न यत्र किञ्चित्
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३५ ॥

पदच्छेदः ।

नासानिरोधः, न, च, दृष्टिः, आसनम्, बोधः, अपि, अबोधः, अपि, न, यत्र, भासते, नाडीप्रचारः, अपि, न, यत्र, किंचित्, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

यत्र=जिस आत्मामें
नासानिरोधः=नासानिरोध और
दृष्टिः=दृष्टि
न च=नहीं है और
आसनम्=आसन और
बोधः=ज्ञान भी
अपि=निश्चय करके
अबोधः=अबोध भी
न च=नहीं
भासते=भान होता है
यत्र=फिर जिस आत्मामें
नाडीप्रचारः=नाडियोंका प्रचार भी
अपि=निश्चय करके
किञ्चित्=किञ्चित् भी
न=नहीं भासता है
तम्=तिसी
ईशम्=ईश
आत्मानम्=आत्मा
शाश्वतम्=नित्यको
उपैति=विद्वान् प्राप्त होता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिस चेतन व्यापक आत्मामें नासिकाके अग्रमें दृष्टिका निरोध करना नहीं है क्योंकि आत्माके नासिकादिक नहीं हैं तब निरोध कैसे बनता है ? किन्तु कदापि भी नहीं, और फिर बोध अर्थात् ज्ञानवाला भी नहीं है क्योंकि ज्ञानस्वरूप है, और अज्ञान-वाला भी नहीं है क्योंकि प्रकाशस्वरूप आत्मामें तमरूप अज्ञान रह

भी नहीं सकता हैं फिर तिसमें नाडियोंका प्रचार भी नहीं है क्योंकि नाडियोंका प्रचार शरीरमें होता है वह शरीर नहीं किन्तु शरीरसे भिन्न है उसी नित्य आत्मामें विद्वान् मर करके लय होजाता है और फिर जन्म मरणको प्राप्त नहीं होता है ॥ ३५ ॥

नानात्वमेकत्वमुभत्वमन्यता
अणुत्वदीर्घत्वमहत्त्वशून्यता ।
मानत्वमेयत्वसमत्ववर्जितं
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३६ ॥

पदच्छेदः ।

नानात्वम्, एकत्वम्, उभत्वम्, अन्यता, अणुत्वदीर्घत्व-महत्त्वशून्यता, मानत्वमेयत्वसमत्ववर्जितम्, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

तम्=विद्वान् तिस
ईशम्=ईश
आत्मानम्=आत्माको
उपैति=प्राप्त होता है जो कि
शाश्वतम्=नित्य है और
नानात्वम्=नानात्व
एकत्वम्=एकत्व
उभत्वम्=उभयत्वसे
अन्यता=भेदसे और
अणुत्वदीर्घत्वमहत्त्वशून्यता=अणु, दीर्घ, महत्त्वसे और शून्यतासे रहित है
मानत्वमेयत्वसमत्ववर्जितम्=मान मेय और समत्वसे भी वह रहित है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस चेतन आत्मामें नानारूप जगत् भी वास्तवसे नहीं है और एकत्व भी नहीं हैं क्योंकि नानात्वकी अपेक्षासे एकत्व होता है अर्थात् पहले नानात्व सिद्ध होले तब पीछे एकत्व सिद्ध हो

और जो एकत्व सिद्ध होले तब नानात्व सिद्ध हो, इस रीतिसे अन्योन्याश्रय दोष आता है। जब कि, नानात्व नहीं, तब एकत्व अर्थसे ही सिद्ध नहीं होता है। इसवास्ते नानात्व एकत्व दोनों उसमें नहीं हैं जब कि वह दोनों नहीं तब अर्थसे ही उभयत्व भी तिसमें नहीं है और जो कोई दूसरा वास्तवसे सत्य हो तब तो तिसका भेद भी उसमें हो जिसवास्ते दूसरा नहीं है इसी वास्ते भेदसे भी रहित है। और मान जो कि प्रमाण और मेय जो कि, विषय हैं और समभाव जो है इनसे भी वह आत्मा रहित है और अणु, ह्रस्व, दीर्घ और महत्त्व इन परिमाणोंसे भी जो कि वह रहित है उसी ईश्वर आत्माको वह ज्ञानवान् प्राप्त होजाते हैं ॥ ३६ ॥

सुसंयमी वा यदि वा न संयमी
सुसंग्रही वा यदि वा न संग्रही ।
निष्कर्मको वा यदि वा सकर्मक-
स्तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३७ ॥

पदच्छेदः ।

सुसंयमी, वा, यदि, वा, न, संयमी, सुसंग्रही, वा, यदि, वा, न, संग्रही, निष्कर्मकः, वा, यदि, वा, सकर्मकः, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः ।

सुसंयमी=ज्ञानवान् सुष्ठु संयमवाला [हो
वा=अथवा
न संयमी=संयमवाला न हो
यदि वा=अथवा
सुसंग्रही=सुष्ठु संग्रह करनेवाला हो
यदि वा=अथवा
न संग्रही=संग्रह करनेसे रहित हो
वा=अथवा
निष्कर्मकः=कर्मसे रहित हो
यदि वा=अथवा
सकर्मकः=कर्मके सहित हो
तम्=तिसी
ईशम्=ईश्वर
शाश्वतम्=नित्य
आत्मानम्=आत्माको ज्ञानी
उपैति=प्राप्त होजाता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—ज्ञानवान् इंद्रियोंका संयम करनेवाला हो अथवा इंद्रियोंका संयम करनेवाला न हो किन्तु विषयोंका भोगनेवाला हो अथवा पदार्थोंको संग्रह करनेवाला हो यदि वह पदार्थोंका संग्रह करनेवाला न हो अथवा कर्मोंको न करनेवाला हो या कर्मोंको करनेवाला हो तब भी वह उसी आत्मानित्यमें ही प्राप्त हो जाता है ॥ ३७ ॥

मनो न बुद्धिर्न शरीरमिन्द्रियं
तन्मात्रभूतानि न भूतपंचकम्।
अहंकृतिश्चापि वियत्स्वरूपकं
तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३८ ॥

पदच्छेदः।

मनः, न, बुद्धिः न, शरीरम्, इंद्रियम्, तन्मात्रभूतानि, न, भूतपञ्चकम्, अहंकृतिः, च, अपि, वियत्स्वरूपकम्, तम्, ईशम्, आत्मानम्, उपैति, शाश्वतम् ॥

पदार्थः।

मनः=मन और
बुद्धिः=बुद्धिभी जिसके
न=नहीं है और
शरीरम् शरीर तथा
इन्द्रियम्=इन्द्रिय भी
न=जिसके नहीं है
तन्मात्रभूतानि=पंचतन्मात्रारूपी भूत भी
भूतपञ्चकम्=पृथ्वी आदि ५ महाभूत
न=जिसमें नहीं हैं
अहंकृतिः=अहंकार भी
अपि=निश्चयकरके जिसके नहीं हैं
च=और
वियत्स्वरूपकम्=आकाशके तुल्य व्यापक रूपवाला भी है
तम् शाश्वतम्=उस नित्य
ईशम्=ईश्वर
आत्मानम्=आत्माको विद्वान्
उपैति=प्राप्त हो जाता है

भावार्थः ।

जिसके मन और बुद्धि नहीं, शरीर और इन्द्रिय नहीं, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द नहीं, अहंकार भी नहीं, जो आकाशके समान व्यापक है, उस नित्य आत्माको प्राप्त हो जाता है ॥ ३८ ॥

विधौ निरोधे परमात्मतां गते
न योगिनश्चेतसि भेदवर्जिते ।
शौचं न वाऽशौचमलिङ्गभावना
सर्वं विधेयं यदि वा निषिध्यते ॥ ३९ ॥

पदच्छेदः ।

विधौ, निरोधे, परमात्मतां गते, न, योगिनः, चेतसि, भेदवर्जिते, शौचम्, न, वा, अशौचम्, अलिंगभावना, सर्वम्, विधेयम्, यदि, वा, निषिध्यते ॥

पदार्थः ।

भेदवर्जिते=भेदसे रहित
परमात्मतां गते=परमात्मताको [प्राप्त
योगिनः=योगीके
चेतसि=चित्तमें
विधौ निरोधे=विधि और निरोध
न भवतः=नहीं होते हैं
शौचम्=पवित्रता
वा=अथवा
न अशौचम्=अपवित्रता भी नहीं होती है और
अलिङ्गभावना=चिह्नकी भावना भी नहीं होती है
यदि वा=अथवा
सर्वम्=सम्पूर्ण
विधेयम्=विधयका भी
निषिध्यते=निषेध हो जाता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जिन ज्ञानवान् योगियोंका चित्त भेदसे रहित परमात्माके स्वरूपमें ही लीन होगया है उनके वास्ते विधि और निषेध

नहीं होता है तथा पवित्रता और अपवित्रता भी उनके लिये नहीं है और उनका चिह्न भी कोई नहीं होता है अथवा कर्मियोंके लिये जिन विधियोंका विधान किया है उन सब विधियोंका योगीके लिये निषेध हो जाता है ॥ ३९ ॥

मनो वचो यत्र न शक्तमीरितुं
नूनं कथं तत्र गुरूपदेशता ।
इमां कथामुक्तवतो गुरोस्त-
द्युक्तस्य तत्त्वं हि समं प्रकाशते ॥ ४० ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायामात्म-
संवित्त्युपदेशो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, वचः, यत्र, न, शक्तम्, ईरितुम्, नूनम्, कथम्, तत्र, गुरूपदेशता, इमाम्, कथाम्, उक्तवतः, गुरोः, तद्युक्तस्य, तत्त्वम्, हि, समम्, प्रकाशते ॥

पदार्थः ।

यत्र=जिस आत्मामें	इमाम्=इस
मनः वचः=मन और वाणी	कथाम्=कथाको
ईरितुम्=कथन करनेको	उक्तवतः=कथन करनेवाले और
शक्तम्=समर्थ	तद्युक्तस्य=तिस आत्मामें जुडे हुए
न=नहीं है	गुरोः=गुरुको
नूनम्=निश्चय करके	हि=निश्चयकरके
तत्र=तिस आत्मामें	समम्=सम एकरस
गुरूपदेशता=गुरु और उपदेश व्यवहार	तत्त्वम्=आत्मतत्त्व
कथम्=कैसे बन सकता है	प्रकाशते=प्रकाशमान होता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-उस चेतन ब्रह्मको मन वाणी भी कथन करनेको समर्थ नहीं होती है अतएव वह चेतन आत्मा मन वाणीका विषय ही नहीं है तब फिर गुरुके उपदेशकी गम्य कहां है ? किन्तु कहीं भी नहीं है । इस चेतन ब्रह्मकी कथाको निरूपण करनेवाला जो कि तिसी चेतन आत्मामें जुडा हुआ गुरु है तिस गुरुको वह आत्मतत्त्व सम ही प्रकाशमान होता है ॥४०॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां परमहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्द-
विरचितपरमानन्दीभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अवधूत उवाच ।

गुणविगुणविभागो वर्तते नैव किञ्चि-
द्रतिविरतिविहीनं निर्मलं निष्प्रपञ्चम् ।
गुणविगुणविहीनं व्यापकं विश्वरूपं
कथमहमिह वन्दे व्योमरूपं शिवं वै ॥१॥

पदच्छेदः ।

गुणविगुणविभागः, वर्त्तते, न, एव, किञ्चित्, रतिविरतिविहीनम्, निर्मलम्, निष्प्रपञ्चम्, गुणविगुणविहीनम्, व्यापकम्, विश्वरूपम्, कथम्, अहम्, इह, वन्दे, व्योमरूपम्, शिवम्, वै॥

पदार्थः ।

यत्र=जिस आत्मामें
एव=निश्चय करके
किञ्चित्=किञ्चित् भी
गुणविगुण-विभागः=गुण और निर्गुण विभाग
वर्तते=वर्तता
न=नहीं है एवंभूत
शिवम्=कल्याणरूपके
व्योमरूपम्=आकाशवत् व्यापकके
इह=इस ग्रन्थमें
अहम्=मैं
कथम्=किसी प्रकार

वन्दे=वन्दनाको करूं ? कैसा वह है
रतिविरति- विहीनम् } =रति और विरतिसे रहित है
निर्मलम्=निर्मलको
निष्प्रपंचम्=प्रपंचसे रहितको और
गुणविगुण- विहीनम् } =सगुण निर्गुणतासे भी रहितको
व्यापकम्=सर्वत्र व्यापकको
विश्वरूपम्=विश्वरूपको कैसे मैं वन्दना करूं ?

भावार्थः।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं–जिस चेतन आत्मामें सगुण और निर्गुण विभाग नहीं है और रति जो प्रेम विरति जो कि उपरामता यह भी नहीं है क्योंकि रति विरति भी भेदको ले करके होते हैं। इसीसे वह निर्मल है मायामलसे भी रहित है और प्रपंचसे भी वह रहित है क्योंकि प्रपंच सब मायाका कार्य है जब कि, उसमें माया ही वास्तवसे नहीं है तब प्रपंच कैसे होसकता है ? और सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंके विभागसे भी वह रहित है, व्यापक है, विश्वरूप भी है, कल्याणस्वरूप भी है, और हमारा अपना आत्मा भी है, उसको हम कैसे वन्दना करें ? वंदना भी भेदको लेकरके होती है, एकमें वन्दना भी नहीं बनती है ॥ १ ॥

श्वेतादिवर्णरहितो नियतं शिवश्च
कार्यं हि कारणमिदं हि परं शिवश्च।
एवं विकल्परहितोऽहमलं शिवश्च
स्वात्मानमात्मनि सुमित्र कथं नमामि ॥ २॥

पदच्छेदः।

श्वेतादिवर्णरहितः, नियतम्, शिवः, च, कार्यम्, हि, कारणम्, इदम्, हि, परम्, शिवः, च, एवम्, विकल्परहितः, अहम्, अलम्, शिवः, च, स्वात्मानम्, आत्मनि, सुमित्र, कथम्, नमामि ॥

पदार्थः ।

सुमित्र=हे सुमित्र ।	इदम्=यह
अहम्=मैं	कार्यम्=कार्य है यह
स्वात्मानम्=अपने आत्माको	कारणम्=कारण है
आत्मनि=अपने आत्मामें	परम्=यह श्रेष्ठ है
कथम्=किस प्रकार	च=और
नमामि=नमस्कार करूँ	शिवः=यह कल्याण है
श्वेतादिवर्ण-रहितः=श्वेतपीतादि वर्णोंसे भी रहित हूँ	एवम्=इस प्रकारके
	विकल्प-रहितः=विकल्पोंसे भी मैं रहित हूँ फिर
नियतम्=नित्य	अलम्=परिपूर्ण
शिवः=कल्याणरूप हूँ	च शिवः=और कल्याणरूप हूँ
च हि=और निश्चयकरके	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे सुमित्र ! मैं शिवरूप हूँ अर्थात् कल्याणस्वरूप हूँ और श्वेतपीतादिवर्णोंसे रहित हूँ, कार्यकारणरूपी जगत्से भी मैं रहित हूँ और फिर मैं शुद्धस्वरूप हूँ तब फिर अपने आत्माको अपने आत्मामें मैं कैसे नमस्कार करूँ ? क्योंकि नमस्कारका करना भेदको ले करके ही होता है अभेदको लेकरके नहीं होता है ॥ २ ॥

निर्मूलमूलरहितो हि सदोदितोऽहं
निर्धूमधूमरहितो हि सदोदितोऽहम् ।
निर्दीपदीपरहितो हि सदोदितोऽहं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

निर्मूलमूलरहितः, हि, सदा, उदितः, अहम्, निर्धूमधूमरहितः, हि, सदा, उदितः, अहम्, निर्दीपदीपरहितः,

हि, सदा, उदितः, अहम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अहं हि=मैं निश्चय करके	निर्दीपदीपरहितः=निर्दीप हूं और दीपकसे रहित हूं
निर्मूलमूलरहितः=निर्मूल हूँ और मूल कारणसे रहित हूं	हि=निश्चयकरके
सदा=सर्वकाल ही मैं	सदा=सर्वकाल
उदितः=उदित हूं फिर	अहम्=मैं
निर्धूमधूमरहितः=निर्धूम और धूमसे रहित	उदितः=उदित हूं फिर कैसा हूं
हि=निश्चयकरके	ज्ञानामृतम्=ज्ञानामृत और
सदा=सर्वकाल	समरसम्=समरस
अहम् उदितः=मैं उदित हूं	गगनोपमः अहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिस हेतुसे मैं निर्मूल हूं अर्थात् मेरा मूलकारण कोई भी नहीं है और मैं भी किसीका मूलकारण नहीं हूं अर्थात् अज्ञान मेरेमें नहीं रहता है और जिस हेतुसे निर्धूम हूं इसीवास्ते मैं अज्ञानसे भी रहित हूं, फिर जिस हेतुसे निर्दीप हूं अर्थात् दीपक मेरेको प्रकाश नहीं करसकता है मैं दीपसे रहित स्वयंप्रकाश हूं और सदैव उदित हूं ज्ञानस्वरूप अमृतरूप समरस अर्थात् एकरस सर्वत्र ज्योंका त्यों आकाशकी उपमावाला मैं हूं । मेरेसे भिन्न दूसरा कोई भी नहीं है ॥ ३ ॥

निष्कामकाममिह नाम कथं वदामि
निःसंगसंगमिह नाम कथं वदामि ।
निःसारसाररहितं च कथं वदामि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

निष्कामकामम्, इह, नाम, कथम्, वदामि, निःसंगसंगम्, इह, नाम, कथम्, वदामि, निःसारसाररहितम्, च, कथम्, वदामि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निष्कामकामम्=कामनासे रहितको कामनावाला
नाम=प्रसिद्ध
इह=इस लोकमें
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कहूं
निःसंगसंगम्=संगसे रहितको संगवाला
इह=इस लोकमें
नाम=प्रसिद्ध
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कहूं
च=और
निःसारसाररहितम्=निःसारको सारसे रहित
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कहूं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप और
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=गगनकी उपमावाला
अहम्=मैं हूं

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—निष्काम आत्माको कामनावाला मैं कैसे कहूं । फिर जो कि निःसंग है अर्थात् असंग है उसको संगवाला संबंधवाला मैं कैसे कहूं ? फिर जो कि निःसार है अर्थात् सारसे रहित है उसको मैं सारवाला कैसे कहूं ? किन्तु मैं ज्ञानरूपी अमृत और समरस अर्थात् एकरस आकाशकी उपमावाला हूं ॥ ४ ॥

अद्वैतरूपमखिलं हि कथं वदामि
द्वैतस्वरूपमखिलं हि कथं वदामि ।
नित्यं त्वनित्यमखिलं हि कथं वदामि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः।

अद्वैतरूपम्, अखिलम्, हि, कथम्, वदामि, द्वैतस्वरूपम्, अखिलम्, हि, कथम्, वदामि, नित्यम्, तु, अनित्यम्, अखिलम् हि, कथम्, वदामि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः।

अद्वैतरूपम्=अद्वैतरूप	तु=पुनः
अखिलम्=संपूर्ण प्रपंचको	नित्यम्=नित्य और
हि=निश्चय करके	अनित्यम्=अनित्य
अहम्=मैं	अखिलम्=संपूर्णको
कथम्=कैसे	कथम्=कैसे
वदामि=कथन करूं	वदामि=कहूँ
अखिलम्=संपूर्ण जगत्को मैं	अहम्=मैं
द्वैतरूपम्=द्वैतरूप	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप हूं
हि=निश्चय करके	समरसम्=एकरस हूं
अहम्=मैं	गगनोपमः=आकाशकी उपमावाला हूँ
कथम्=किस प्रकार	
वदामि=कथन करूं	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—सम्पूर्ण प्रपंचोंको अद्वैतरूप करके कैसे कहूँ क्यों कि प्रत्यक्ष प्रमाणसे वह द्वैतरूप करके दिखाता है और द्वैतरूपकरके भी मैं नहीं कहसकता हूँ क्यों कि सुषुप्ति और मोक्ष अवस्थामें इसका अभाव हो जाता है अर्थात् तिस कालमें द्वैत नहीं रहता है। फिर मैं संपूर्ण जगत्को नित्य और अनित्य कैसे कहूँ ? क्यों कि यदि नित्य हो तब तो इसका नाश कभी भी न होवे और नाश तो जरूर होता है। इस वास्ते नित्य नहीं है और अनित्य भी नहीं है, यदि अनित्य हो तब दृष्टिका गोचर न हो वंध्या पुत्रकी तरह, और दृष्टिका गोचर भी होता है । इस-

वास्ते नित्य और अनित्य भी इसको किसी प्रकारसे भी मैं नहीं कहसकता हूं किन्तु यह संपूर्ण प्रपंच अनिर्वचनीय है और मैं ज्ञानरूपी अमृत एकरस आकाशकी उपमावाला अर्थात् आकाशकी तरह व्यापक हूं ॥ ५ ॥

स्थूलं हि नो नहि कृशं न गतागतं हि
आद्यन्तमध्यरहितं न परापरं हि ।
सत्यं वदामि खलु वै परमार्थतत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

स्थूलम्, हि, नः, न, हि, कृशम्, न, गतागतम्, हि, आद्यन्तमध्यरहितम्, न, परापरम्, हि, सत्यम्, वदामि, खलु, वै, परमार्थतत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

नः=हमारा आत्मा
हि=निश्चय करके
स्थूलम्=स्थूल
न हि=नहीं है और
कृशम्=कृश तथा
न गतागतम्=गमनागमनवाला भी नहीं है
आद्यंतमध्यरहितम्=आदि अन्त और मध्यसे भी रहित है
हि=निश्चयकरके
न परापरम्=पर अपररूप भी नहीं
खलु=निश्चयकरके
सत्यम्=सत्यको ही
वदामि=मैं कहता हूं
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थतत्त्वस्वरूप मैं हूं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत हूंऔर
समरसम्=एकरस हूँ
गगनोपमोऽहम्=आकाशकी उपमावाला मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हमारा जो आत्मा है सो स्थूल नहीं है और कृश भी नहीं अर्थात् अणु भी नहीं है और गमनागमनवाला भी नहीं है और

आदि मध्य तथा अन्तवाला भी नहीं है अर्थात् उत्पत्ति स्थिति और लयवाला भी नहीं हैं किन्तु उत्पत्ति आदिकोंसे रहित है और पर अपरवाला भी नहीं है क्योंकि व्यापक है यह वार्ता मैं सत्य कहता हूं क्योंकि मैं परमार्थतत्त्वरूप हूं और ज्ञानरूप अमृत हूं समरस भी हूं गगनकी उपमावाला भी मैं हूं ॥ ६ ॥

संविद्धि सर्वकरणानि नभोनिभानि
संविद्धि सर्वविषयांश्च नभोनिभांश्च ।
संविद्धि चैकममलं न हि बन्धमुक्तं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

संविद्धि, सर्वकरणानि, नभोनिभानि, संविद्धि, सर्वविषयान्, च, नभोनिभान्, च, संविद्धि, च, एकम्, अमलम्, न, हि, बन्धमुक्तम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

सर्वकरणानि = संपूर्ण करणोंको
नभोनिभानि = आकाशकेतुल्य शून्य
संविद्धि = सम्यक् तू जान
च = और
सर्वविषयान् = संपूर्ण विषयोंको
नभोनिभान् = आकाशके तुल्य शून्य ही
संविद्धि = सम्यक् तू जान
च = और
एकम् = एक आत्माको
अमलम् = शुद्ध मलसे रहित
संविद्धि = सम्यक् तू जान कैसे आत्माको
बन्धमुक्तम् = बंध और मोक्ष जिसमें
न हि = नहीं है सो आत्मा
ज्ञानामृतम् = ज्ञानस्वरूप अमृतरूप
समरसम् = एकरस
गगनोपमः = आकाशवत्
अहम् = मैं ही हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जितने कि इंद्रिय हैं ये सब वास्तवसे आकाशके तुल्य शून्य हैं ऐसे तू जान और संपूर्ण विषय भी आकाशकी तरह शून्य हैं, ऐसे ही तू जान और एक आत्माको ही अमल अर्थात् मायामलसे रहित तू जान, कैसा वह आत्मा है ? बन्ध और मुक्तिसे रहित है सोई मैं हूँ, फिर मैं कैसा हूँ ज्ञानस्वरूप अमृतरूप हूँ और एकरस आकाशवत् व्यापक हूँ ॥ ७ ॥

दुर्बोधबोधगहनो न भवामि तात
दुर्लक्ष्यलक्ष्यगहनो न भवामि तात ।
आसन्नरूपगहनो न भवामि तात
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

दुर्बोधबोधगहनः, न, भवामि, तात, दुर्लक्ष्यलक्ष्यगहनः, न, भवामि, तात, आसन्नरूपगहनः, न, भवामि, तात, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

दुर्बोधबोध- गहनः =दुर्बोध आत्माका जो वृत्तिज्ञान है सो बडा गम्भीर है
तात=हे तात सो
न भवामि=मैं नहीं हूं
तात=हे तात
दुर्लक्ष्यल- क्ष्यगहनः =दुर्लक्ष्यका लक्ष्य भी गंभीर है सो
न भवामि=मैं नहीं हूं
तात=हे तात
आसन्नरूप- गहनः =अतिसमीप भी तिसका बडा गंभीर है
न भवामि=मैं आसन्न भी नहीं हूं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत मैं हूं
समरसम्=एकरस हूं
गगनोप- मोऽहम् =आकाशकी उपमा- वाला हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--हे तात ! हे प्रिय ! वह आत्मा बडा ही दुर्बोध है अर्थात् बडे कष्टसे उसका बोध होता है सो बोध भी वृत्तिज्ञान है सो मैं नहीं हूं क्योंकि वह मिथ्या है फिर वह आत्मा दुर्लक्ष्य है अर्थात् किसी भी इन्द्रियकरके वह लक्ष्य नहीं होता है क्योंकि बडा गहन है सो उस दुर्लक्ष्यका जो कि लक्ष्य अर्थात् जानना है वह भी मैं नहीं हूं फिर तिसका रूप मनबुद्धिके अतिसमीप भी है तव भी तिसका जानना कठिन है क्योंकि वह मन आदिकोंका विषय नहीं है इस वास्ते मैं तिसके अतिसमीप भी नहीं हूं किन्तु मैं वही ज्ञानरूपी अमृत हूं और एकरस गगनकी उपमावाला हूँ मेरेसे वह भिन्न नहीं है ॥ ८ ॥

निष्कर्मकर्मदहनो ज्वलनो भवामि
निर्दुःखदुःखदहनो ज्वलनो भवामि ।
निर्देहदेहदहनो ज्वलनो भवामि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

निष्कर्मकर्मदहनः, ज्वलनः, भवामि, निर्दुःखदुःखदहनः, ज्वलनः, भवामि, निर्देहदेहदहनः, ज्वलनः, भवामि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं
निष्कर्मकर्मदहनः=कर्मोंसे रहितहूँतब भी कर्मोंका दाहक
ज्वलनः=अग्नि
भवामि=मैं हूं
निर्दुःखदुःखदहनः=मैं दुःखसे रहित हूँ तबभी दुःखको दाहक
ज्वलनः=अग्नि
भवामि=मैं हूं
निर्देहदेहदहनः=देहसे रहित हूं तब भी देहसे रहित करनेमें
ज्वलनः=अग्निरूप
भवामि=मैं हूं फिर मैं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृत हूं
समरसम्=एकरस हूं
गगनोपमः=गगनकी उपमावाला
अहम्=मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं कर्मोंसे रहित हूं और कर्मोंके जलानेमें जलती हुई अग्नि मैं हूँ, फिर मैं सम्पूर्ण दुःखोंसे रहित भी हूं, तब भी दुःखोंके जलानेमें मैं अग्निरूप हूं, फिर मैं शरीरसे रहित भी हूं, तब भी जन्ममरणके हेतु जो लिंगशरीर और कारण शरीर हैं उनके जलानेमें मैं जलती हुई अग्निरूप हूं, फिर मैं ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस और आकाशवत् व्यापक भी हूं ॥ ९ ॥

निष्पापपापदहनो हि हुताशनोऽहं
निर्धर्मधर्मदहनो हि हुताशनोऽहम् ।
निर्बन्धबन्धदहनो हि हुताशनोऽहं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

निष्पापपापदहनः, हि, हुताशनः, अहम्, निर्धर्मधर्मदहनः, हि, हुताशनः,अहम्, निर्बन्धबन्धदहनः, हि, हुताशनः,अहम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निष्पापपापदहनः=पापसे रहित पापके दाह करनेमें
अहम्=मैं
हि=निश्चयकरके
हुताशनः=अग्निरूप
निर्धर्मधर्मदहनः=धर्मसे रहित होकरके भी धर्मके दाह करनेमें
हि=निश्चय करके
हुताशनः=अग्निरूप
अहम्=मैं हूं
निर्बन्धबन्धदहनः=बन्धसे रहित हूँ और बन्धके दाह करनेमें
हि=निश्चयकरके
हुताशनः=अग्निरूप
अहम्=मैं हूं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूपअमृतरूपहूँ
समरसम्=एकरस (हूं
गगनोपमोऽहं=गगनकी उपमावाला

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-मैं पापोंसे रहित हूँ और पापोंके दाह करनेमें अग्नि-रूप भी हूँ अर्थात् जैसे अग्नि लकडियोंको जलाकरके भस्म कर देती है तैसे मैं भी पापोंको जलाकरके भस्म करदेता हूँ, फिर मैं धर्मसे भी रहित हूँ और धर्मअधर्मके जलानेमें अग्निरूप भी हूँ, फिर मैं बन्धसे रहित भी हूँ तब भी बन्धके जलानेमें मैं अग्निरूप हूँ और ज्ञानस्वरूप अमृतरूप एकरस आकाश-वत् व्यापक भी हूँ ॥ १० ॥

निर्भावभावरहितो न भवामि वत्स
निर्योगयोगरहितो न भवामि वत्स।
निश्चित्तचित्तरहितो न भवामि वत्स
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः।

निर्भावभावरहितः, न, भवामि, वत्स, निर्योगयोगरहितः, न, भवामि, वत्स, निश्चित्तचित्तरहितः, न, भवामि, वत्स, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः।

वत्स=हे वत्स
निर्भावभावरहितः=निर्भाव होकरके भी भावसे रहित
न भवामि=मैं नहीं हूँ
वत्स=हे वत्स
निर्योगयोगरहितः=निर्योग होकरके भी योगसे रहित
न भवामि=नहीं हूँ
वत्स=हे वत्स
निश्चित्तचित्तरहितः=चित्तसे रहित होकरके भी चित्तसे रहित
न भवामि=मैं नहीं हूँ किन्तु
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृत मैं हूँ
समरसम्=समरस भी मैं हूँ
गगनोपमोऽहम्=आकाशकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-मैं निर्भाव हूँ अर्थात् प्रेम मेरा किसी भी पदार्थमें

नहीं है परन्तु प्रेमसे रहित भी मैं नहीं हूँ किन्तु प्रेमरूप ही हूँ । फिर मैं योग से रहित हूँ क्योंकि योग नाम है चित्तकी वृत्तियोंके निरोधका सो मैं निरोध-रूप नहीं हूँ परन्तु निरोधरूपी योगसे रहित भी मैं नहीं हूं क्योंकि मेरेमें ही सम्पूर्ण जगत्का लयरूपी निरोध होता है । हे वत्स ! मैं निश्चित हूँ अर्थात् चित्तसे रहित हूं अर्थात् वास्तवसे मेरा चित्त साथ कोई भी संबंध नहीं है तव भी मैं चित्तसे रहित नहीं हूँ क्योंकि संपूर्ण चित्त मेरेमें ही कल्पित हैं हे वत्स ! मैं ज्ञानरूप अमृतरूप समरस आकाशकी उपमावाला हूं ॥ ११ ॥

निर्मोहमोहपदवीति न मे विकल्पो
निःशोकशोकपदवीति न मे विकल्पः ।
निर्लोभलोभपदवीति न मे विकल्पो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

निर्मोहमोहपदवी, इति, न, मे, विकल्पः, निःशोकशो-कपदवी, इति, न, मे, विकल्पः, निर्लोभलोभपदवी, इति, न, मे, विकल्पः ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निर्मोहमोह पदवी=मोहसे रहित अथवा मोहवाला
इति=इस प्रकारका
मे=मेरेमें
विकल्पः=विकल्प
न=नहीं है
निःशोक-शोकपदवी=शोकसे रहित या शोकवाला
इति=इस प्रकारका भी
मे=मेरेमें
विकल्पः=विकल्प
न=नहीं है
निर्लोभ लोभपदवी=लोभसे रहित या लोभवाला
इति=इसप्रकारका भी
मे=मेरेमें
विकल्पः=विकल्प
न=नहीं है किन्तु
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृत मैं हूँ
समरसम्=एकरस भी हूँ
गगनोप-मोऽहम्=आकाशका व्यापक भी हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं मोहसे रहित हूँ, या मोहवाला हूं, इस प्रकारका विकल्प भी मेरेमें नहीं युक्त है । फिर मैं शोकवाला हूं, या शोकसे रहित हूं इस प्रकारका विकल्प भी मेरेमें नहीं युक्त है । फिर मैं लोभ वाला हूं, या लोभसे रहित हूं, इस प्रकारका संकल्प भी मेरेमें नहीं योग्य है, किन्तु मैं ज्ञानरूपी अमृतस्वरूप हूं समरस हूं और आकाशवत् निर्लेप भी हूं ॥१२॥

संसारसन्ततिलता न च मे कदाचित्
सन्तोषसन्ततिसुखं न च मे कदाचित् ।
अज्ञानबन्धनमिदं न च मे कदाचित्
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥१३॥

पदच्छेदः ।

संसारसन्ततिलता, न, च, मे, कदाचित, सन्तोषसन्ततिसुखम्, न च, मे, कदाचित, अज्ञानबन्धनम्, इदम्, न, च, मे, कदाचित, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

संसारसंततिलता=संसाररूपी प्रवाहकी लता
कदाचित्=कदाचित् भी
मे न च=मेरेको नहीं है
सन्तोषसन्ततिसुखम्=सन्तोषरूपी सन्ततिका सुख भी
कदाचित्=कदाचित् भी
मे न च=मेरेको नहीं है
इदम्=यह
अज्ञानबन्धनम्=अज्ञानरूपी बन्धनभी
कदाचित्=कदापि
मे न च=मेरेको नहीं है किंतु
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत और
समरसम्=एकरस और
गगनोपमोऽहम्=आकाशवत् व्यापक मै हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जैसे कि, जन्ममरणरूपी संसारकी लता कर्मियोंके लिये फैलती है वह लता कदाचित् भी मेरे लिये नहीं फैलती है और जो कि सन्तोषकी सन्ततिसे जन्यसुख अज्ञानियोंको भान होता है सो मेरेको नहीं भान होता है क्योंकि मैं सुखरूप हूं । फिर जैसे कर्मी जीव या दूसरे जीव अज्ञानरूपी बन्धनमें बन्धायमानहैं तैसे मैं कदापि अज्ञानरूपी बन्धनकरके बन्धायमान नहीं हूं किन्तु ज्ञानरूपी अमृतरूप और एकरस आकाशवत् असंगहूं १३

संसारसन्ततिरजो न च मे विकारः
सन्तापसन्ततितमो न च मे विकारः ।
सत्त्वं स्वधर्मजनकं न च मे विकारो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

संसारसन्ततिरजः, न, च, मे, विकारः सन्तापसन्ततितमः, न, च, मे, विकारः, सत्त्वम्, स्वधर्मजनकम्, न, च, मे, विकारः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

संसारसंततिरजः=संसाररूपी प्रवाहका जो रज है सो	स्वधर्मजनकम्=अपने धर्मका जनक जो
मे=मेरा	सत्त्वम्=सत्त्वगुण है वह भी
विकारः=विकार	मे=मेरा
न च=नहीं है	विकारः=विकार
सन्तापसन्ततितमः=सन्तापरूपी प्रवाह जो कि अज्ञान है सो	न च=नहीं है क्योंकि
मे=मेरा	अहम्=मैं
विकारः=विकार	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत हूं
न च=नहीं है	समरसम्=एकरस हूं
	गगनोपमः=गगनकी उपमावाला हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-यह संसाररूपी प्रवाह अनादिकालसे चला आता है और बार २ जन्म लेना और मरना यही इसकी रज है अर्थात् धूली है सो भी मेरा विकार अर्थात् कार्य नहीं है फिर इस संसारमें जो कि जन्मते हैं उनको जन्मभर सन्तापका प्रवाह चलाही जाता है, वह भी मेरा विकार नहीं है और सत्त्वगुण ही अपने धर्मका जनक है, सो सत्त्वगुण भी मेरा विकार नहीं है क्यों कि मैं ज्ञानरूपी अमृत और एकरस गगनकी उपमावाला हूं ॥ १४ ॥

सन्तापदुःखजनको न विधिः कदाचित्
सन्तापयोगजनितं न मनः कदाचित् ।
यस्मादहङ्कृतिरियं न च मे कदाचि-
ज्ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ।

संसारदुःखजनकः, न, विधिः, कदाचित्, सन्तापयोगजनितम्, न, मनः, कदाचित्, यस्मात्, अहङ्कृतिः, इयम्, न, च, मे, कदाचित्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

सन्तापदुःखजनकः = सन्तापरूपी दुःखका जनक	यस्मात् = जिसी कारणसे
विधिः = जो विधि है सो	इयम् = यह
कदाचित् = कदाचित् भी	अहङ्कृतिः = अहंकार भी
मे न = मेरेलिये नहीं है	कदाचित् = कदाचित्
सन्तापयोगजनितम् = सन्तापके संबन्धसे जनित जो	मे न च = मेरा नहीं है
मनः = संकल्परूप मन है सो भी	तस्मात् = तिसी कारणसे
कदाचित् = कदाचित्	अहम् = मैं
मे न = मेरा नहीं है	ज्ञानामृतम् = ज्ञानरूपी अमृत
	समरसम् = एकरस
	गगनोपमः = गगनवत् हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--सन्तापरूपी दुःखका जनक ही विधि है क्यों कि स्वर्गादिकोंकी प्राप्तिके वास्ते सब विधियां बनी हैं उनके करनेसे पुरुष स्वर्गको जाता हैं वहांपर अपनेसे अधिक योग्यतावालेको देखकर सन्तापरूपी दुःख उत्पन्न होता है सो सब विधियां अज्ञानियोंके लिये बनी हैं मेरे लिये नहीं फिर सन्तापके सम्बन्धसे संकल्परूप मन भी उत्पन्न होता है सो मन भी मेरा कदाचित् नहीं है फिर अहंकारसे ही मन आदिकोंकी उत्पत्ति भी होती है वह अहंकार जिस कारणसे मेरा नहीं है इसी कारणसे मैं ज्ञानरूपी अमृत एकरस गगनकी उपमावाला हूं॥१५॥

निष्कम्पकम्पनिधनं न विकल्पकल्पं
स्वप्नप्रबोधनिधनं न हिताहितं हि ।
निःसारसारनिधनं न चराचरं हि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

निष्कम्पकम्पनिधनम्, न, विकल्पकल्पम्, स्वप्नप्रबोधनिधनम्, न, हिताहितम्, हि, निःसारसारनिधनम्, न, चराचरम्, हि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निष्कम्पकम्पनिधनम् =कम्पसे रहित और कंप दोनोंका नाशरूप भी
अहम्=मैं नहीं हूँ
विकल्पकल्पम्=विकल्प और कल्परूप भी
न मैं नहीं हूं
स्वप्नप्रबोधनिधनम् =स्वप्न और जाग्रत्का नाशरूपभी
न=मैं नहीं हूँ
हिताहितम्=हित और अहितरूपभी
हि न=निश्चयकरके मैं नहीं हूँ
निःसारसारनिधनम् =सारसे हित और सारका भी नाशरूप
न=मैं नहीं हूं
चराचरम्=चरअचररूपभी मैं नहीं हूं
हि=निश्चय करके
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=आकाशकी उपमावाला
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं कम्परहित या सकम्प नहीं हूं ! न विकल्प हूं न कल्पसहित हूं । सोना और जागना इन दोनोंसे रहित हूं। न हित हूं न अहित हूं न निस्सार हूं न सारयुक्त हूं। न चर हू। न अचर हू परन्तु ज्ञानस्वरूप, नित्य, एकरस और व्यापक हू ॥ १६ ॥

नो वेद्यवेदकमिदं न च हेतुतर्क्यं
वाचामगोचरमिदं न मनो न बुद्धिः ।
एवं कथं हि भवतः कथयामि तत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥१७॥

पदच्छेदः ।

नो, वेद्यवेदकम्, इदम्, न, च, हेतुतर्क्यम्, वाचाम्, अगोचरम्, इदम्, न, मनः, न, बुद्धिः, एवम्, कथम्, हि, भवतः, कथयामि, तत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम्॥

पदार्थः ।

इदम्=यह आत्मा ब्रह्म
नो=नहीं
वेद्यवेदकम्=जानने योग्य और जाननेवाला भी है
हेतुतर्क्यम्=कारण और तर्कसे
न च=नहीं जानाजाता है
इदम्=यह चेतन ब्रह्म
वाचाम्=वाणीका
अगोचरम्=विषय नहीं है
मनः=मन भी इसको
न=नहीं जान सकता है
बुद्धिः=बुद्धिभी इसको
न=नहीं जान सकती है
एवम्=इस प्रकारके
तत्त्वम्=चेतन ब्रह्मको
भवतः=तुम्हारेको
हि=निश्चयकरके
कथम्=किस प्रकार
कथयामि=मैं कथन करूं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=गगनकी उपमावाला
अहम्=मैंही हूं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह ब्रह्म चेतन किसीसे नहीं जानाजाताहै हेतु और तर्कोंकरके भी वह नहीं जाना जाता है और न किसी इन्द्रिय से ही वह जाना जाता है क्योंकि वाणीका वह विषय नहीं है अर्थात् वाणी उसको इदन्ता-करके कथन नहीं कर सकती है और मन तथा बुद्धिका भी विषय नहीं है ऐवंरूप उस ब्रह्मको तुम्हारे प्रति मैं किस प्रकार कथन करूं फिर वह जो ब्रह्म है सो ज्ञानरूपी अमृत समरस आकाशवत् है सो मैं ही हूं मेरेसे भिन्न दूसरा नहीं है ॥ १७ ॥

निर्भिन्नभिन्नरहितं परमार्थतत्त्व-
मन्तर्बहिर्न हि कथं परमार्थतत्त्वम् ।
प्राक्संभवं न च रतं न हि वस्तु किञ्चि-
ज्ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥१८॥

पदच्छेदः।

निर्भिन्नभिन्नरहितं, परमार्थतत्त्वम्, अन्तर्बहिः, न, हि कथम्, परमार्थतत्त्वम्, प्राक्संभवम्, न, च, रतम्, न, हि वस्तु, किञ्चित्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः।

निर्भिन्नभिन्नरहितम् =यह आत्मभेदन क्रियाका न कर्महै न कर्त्ता है	न च=उसमें नहीं है
परमार्थतत्त्वम् =किन्तु परमार्थ स्वरूप है	रतम्=किसीमें वह लिप्त भी
कथम्=किसी प्रकारसेभी	नहि=नहीं हैं
अन्तर्बहिः=भीतरबाहर किसीकेभी	वस्तु किञ्चित् =आत्मासे अतिरिक्त और कोई भी वस्तु
न हि=वह नहीं है क्योंकि वही	न हि=नहीं है फिर वह
परमार्थतत्त्वम् =परमार्थ सार है भेदसे रहित है	ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृतरूप
प्राक्संभवम् =पूर्व होना फिर न होना यह बात भी	समरसम्=एकरस
	गगनोपमः=गगनकी उपमावाला है
	अहम्=सोई आत्मा मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—भेदाभेदरहित, परमार्थतत्त्व, भीतर बाहर आदि व्यवहारसे शून्य है, पहले किसी समयमें भी उसका होना सम्भव नहीं, किसी पदार्थमें लिप्त भी वह नहीं है, कोई पदार्थ भी वह नहीं है, पर वह ज्ञानस्वरूप नाशरहित, सदा आनन्दमय और आकाशके समान व्यापक, निर्लिप्त है ॥ १८ ॥

रागादिदोषरहितं त्वहमेव तत्त्वं
देवादिदोषरहितं त्वहमेव तत्त्वम् ।
संसारशोकरहितं त्वहमेव तत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ।

रागादिदोषरहितम्, तु, अहम्, एव, तत्त्वम्, देवादिदोषरहितम्, तु, अहम्, एव, तत्त्वम्, संसारशोकरहितम्, तु, अहम्, एव, तत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

रागादिदोषरहितम् = रागादिदोषोंसे रहित
तु अहम् = पुनः मैं ही
एव = निश्चयकरके
तत्त्वम् = तत्त्व हूं
तु अहम् = पुनः मैं ही
एव = निश्चयकरके
देवादिदोषरहितम् = देवादिदोषोंसे रहित हूँ
तत्त्वम् = तत्त्व हूँ
तु अहम् = पुनः मैं ही
एव = निश्चय करके
संसारशोकरहितम् = संसारशोकसे रहित
तत्त्वम् = तत्त्व हूँ फिर
अहम् = मैं ही
ज्ञानामृतम् = ज्ञान अमृतरूप
समरसम् = एकरस
गगनोपमः = गगनवत् हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—रागद्वेषादिक दोषोंसे रहित आत्मतत्त्व मैं हूँ ओर जितने कि, दैव आदि दोष हैं अर्थात् आधिदैविक जो कि देवतोंसे दुःख होते हैं और जो कि अग्नि आदिक भूतोंसे दुःख होते हैं और जो कि ग्रहोंके दुःख होते हैं उन सम्पूर्ण दुःखोंसे मैं रहित हूँ और संसाररूपी शोकसे भी मैं रहित हूँ ज्ञानरूपी अमृत और एकरस गगनवत् मैं हूँ ॥ १९ ॥

स्थानत्रयं यदि च नेति कथं तुरीयं
कालत्रयं यदि च नेति कथं दिशश्च ।
शान्तं पदं हि परमं परमार्थतत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः ।

स्थानत्रयम्, यदि, च, न, इति, कथम्, तुरीयम्, कालत्रयम्, यदि, च, न, इति, कथम्, दिशः, च, शांतम्, पदम्, हि, परमम्, परमार्थतत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् २० ॥

पदार्थः ।

यदि च=यदि च
स्थानत्रयम्=जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति रूप तीन स्थान
इति=इस प्रकारके
न=नहीं है तब
तुरीयम्=तुरीय स्थान
कथम्=कैसे होसकता है
यदि च=यदि च
कालत्रयम्=भूत भविष्यत् वर्तमान यह तीन काल भी
इति न=इस ब्रह्ममें नहीं है
कथम्=कैसे फिर
दिशः=दिशा है
च=और वह ब्रह्म
शान्तंपदम्=शान्तरूप
हि=निश्चयकरके
परमम्=परम है
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थ तत्त्ववस्तु है
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत मैं हूँ
समरसम्=समरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जागृत,स्वप्न, सुषुप्ति ये तीन स्थान हैं सो ये तीनों स्थान भी चेतन आत्मामें वास्तवसे नहीं हैं तब तुरीय कैसे होसकता है ? किन्तु कदापि भी नहीं हो सकता है क्योंकि वह ब्रह्म शान्तरूप है परमार्थस्वरूप है । इसीवास्ते उसमें भूत, भविष्यत् वर्तमान ये तीनों काल भी नहीं हैं और ज्ञानस्वरूप अमृतरूप एकरस आकाशवत् असंग है सो मैं हूँ ॥ २० ॥

दीर्घो लघुः पुनरितीह न मे विभागो
विस्तारसंकटमितीह न मे विभागः ।
कोणं हि वर्तुलमितीह न मे विभागो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः ।

दीर्घः, लघुः, पुनः, इति, इह, न, मे, विभागः, विस्तारसंकटम्, इति, इह, न, मे, विभागः, कोणम्, हि, वर्तुलम्, इति, इह, न, मे, विभागः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

पुनः=फिर यह
दीर्घः=दीर्घ है और
लघुः=यह लघु है
इति=इस प्रकारका
विभागः=विभाग भी
इह=इस लोकमें
मे न=मेरेमें नहीं होता
विस्तारसंकटम्=विस्तार और संकोच
इति=इसप्रकारका
विभागः=विभाग भी
इह=इस लोकमें
मे न=मेरेमें नहीं होता है
हि=निश्चयकरके
वर्तुलम्=गोलाकार और
कोणम्=त्रिकोणादि
इति=इस प्रकारका भी
विभागः=विभाग
इह=इस लोकमें
मे न=मेरेमें नहीं होता
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=गगनवत् मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मेरेमें दीर्घ, लघु, अणु, ह्रस्वादिक भी विभाग नहीं हैं। फिर मेरेमें विस्तार और संकोचादिक विभाग भी नहीं हैं, और त्रिकोण चतुष्कोणादिक विभाग भी मेरेमें नहीं है और गोलाकार विभाग भी मेरेमें नहीं है, क्योंकि मैं इनसे रहित ज्ञान =अमृतरूप हूँ ॥ २१ ॥

मातापितादि तनयादि न मे कदाचि-
जातं मृतं न च मनो न च मे कदाचित् ।
निर्व्याकुलं स्थिरमिदं परमार्थतत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २२ ॥

पदच्छेदः ।

मातापितादि, तनयादि, न, मे, कदाचित्, जातम्, मृतम्, न, च, मनः, न, च, मे, कदाचित्, निर्व्याकुलम्, स्थिरम्, इदम्, परमार्थतत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

मे=मेरे
मातापितादि=माता और पिता आदिक
तनयादि=स्त्री आदिक भी
कदाचित्=कदाचित्
जातम् न=उत्पन्न नहीं हुए
मृतम्=और मरे भी
न च=नहीं हैं
मे मनः=मेरा मन
कदाचित्=कदाचित् भी

निर्व्याकुलम्=व्याकुलतासे रहित
स्थिरम्=और स्थिर भी
न च=नहीं है
इदम्=यही आत्मा
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थसे सत्यवस्तु है
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृत है
समरसम्=समरस और
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-मेरे माता पिता और स्त्रीपुत्रादिक सब कदाचित् भी उत्पन्न नहीं हुए हैं और न कदाचित् वह मेरे ही हैं फिर मेरेमें व्याकुलता और स्थिरता भी नहीं है किन्तु मैं परमार्थरूप अमृतरूप आकाशकी उपमावाला हूँ ॥ २२ ॥

शुद्धं विशुद्धमविचारमनन्तरूपं
निर्लेपलेपमविचारमनन्तरूपम् ।
निष्खण्डखण्डमविचारमनन्तरूपं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २३ ॥

पदच्छेदः ।

शुद्धम्, विशुद्धम्, अविचारम्, अनन्तरूपम्, निर्लेपलेपम्, अविचारम्, अनन्तरूपम्, निष्खण्डखण्डम्, अविचारम्, अनन्तरूपम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

शुद्धम्=शुद्ध है
विशुद्धम्=विशेषकरके शुद्ध है
अविचारम्=विचारसे रहित है
अनन्तरूपम्=अनन्तरूप है
निर्लेपलेपम्=निर्लेप होकरके भी सम्बन्धवाला है
अविचारम्=विचारसे रहित है
अनन्तरूपम्=अनन्तरूप है
निष्खण्डखण्डम्=नाशसे भी वह रहित है
अविचारम्=विचारसे रहित है
अनन्तरूपम्=अनन्त रूप भी है
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–मैं शुद्ध हूँ फिर विशेष करके मैं शुद्ध हूं विचारसे मैं रहित हूँ अर्थात् मेरे स्वरूपमें विचारकी गम्य नहीं है । फिर निर्लेप जो कि आकाश उसके साथ भी मेरा लेप अर्थात् सम्बन्ध नहीं है और फिर मैं नाशसे भी रहित हूं, फिर मैं ज्ञानरूपी अमृत हूँ और एकरस आकाशवत् व्यापक हूँ ॥ २३ ॥

ब्रह्मादयः सुरगणाः कथमत्र सन्ति
स्वर्गादयो वसतयः कथमत्र सन्ति ।
यद्येकरूपममलं परमार्थतत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ।

ब्रह्मादयः, सुरगणाः, कथम्, अत्र, सन्ति, स्वर्गादयः, वसतयः, कथम्, अत्र, सन्ति, यदि, एकरूपम्, अमलम्, परमार्थतत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

यदि=यदि वह ब्रह्म
एकरूपम्=एकरूप
अमलम्=शुद्ध है
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थस्वरूप भी है तब फिर
अत्र=इस ब्रह्ममें
ब्रह्मादयः=ब्रह्मासे आदि लेकरके
सुरगणाः=देवताके समूह
कथम्=किस प्रकार
सन्ति=होसकते हैं और
स्वर्गादयः=स्वर्गादिक
वसतयः=वस्तियाँ भी
अत्र=इसमें
कथम्=किस प्रकार
सन्ति=होसकती हैं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-यदि वह एक ही है और शुद्ध है, मायामलसे रहित है, परमार्थस्वरूप है सो फिर इस ब्रह्ममें ब्रह्मासे आदि लेकर सब देवतागण और स्वर्गादिक सब लोक यह परमार्थसे कैसे तिससे सत्य होसकते हैं किन्तु यह सब कदापि नहीं हो सकते हैं फिर वह ज्ञानरूप अमृतरूप एकरस आकाशवत् है सो मैं ही हूँ ॥ २४ ॥

निर्नेतिनेतिविमलो हि कथं वदामि
निःशेषशेषविमलो हि कथं वदामि ।
निर्लिंगलिंगविमलो हि कथं वदामि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ।

निर्नेतिनेतिविमलः, हि, कथम्, वदामि, निःशेषशेषविमलः, हि, कथम्, वदामि, निर्लिङ्गलिंगविमलः, हि, कथम्, वदामि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निर्नेतिनेतिविमलः = वह नेतिनेतिसे रहित नहीं है शुद्ध है
हि = निश्चय करके
कथम् = किस प्रकार
वदामि = मैं कथन करूं
निःशेषशेषविमलः = शेषसे रहित शेष है शुद्ध है
हि = निश्चय करके
कथम् = ऐसे भी किस प्रकार
वदामि = मैं कथन करूं
निर्लिङ्गलिंगविमलः = चिह्नसे रहित चिह्नवाला और शुद्ध
हि = निश्चयकरके
कथम् = किस प्रकार
वदामि = कथन करूं क्योंकि
ज्ञानामृतम् = ज्ञानरूप अमृतरूप
समरसम् = एकरस
गगनोपमोऽहम् = गगनकी उपमावाला हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-कि जो " नेतिनेति ,, यह श्रुति कहती है कि ब्रह्ममें तीन कालमें भी जगत् नहीं है ऐसा भी कथन वही बनता है क्योंकि यदि प्रथम कहीं भी जगत् सत्य हो तब तो कहा जाय कि उसमें नहीं है जिसवास्ते जगत् तीनों कालोंमें कहीं भी सत्य नहीं है इस वास्ते वह शुद्ध है और सबका शेष होनेसे वह विमल है, फिर वह चिह्नसे भी रहित है अर्थात् उसका कोई भी चिह्न नहीं है किन्तु वह ज्ञानस्वरूप, अमृतरूप है सो मैं हूँ ॥ २५ ॥

निष्कर्मकर्मपरमं सततं करोमि
  निःसंगसंगरहितं परमं विनोदम् ।
निर्देहदेहरहितं सततं विनोदं
  ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २६ ॥

पदच्छेदः ।

निष्कर्मकर्मपरमम्, सततम्, करोमि, निःसंगसंगरहितम्, परमम्, विनोदम्, निर्देहदेहरहितम्, सततम्, विनोदम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निष्कर्मकर्मपरमम् =कर्मसे मैं रहित हूँ परम कर्मको
सततम्=निरन्तर ही
करोमि=मैं कर्ता हूँ
निःसंगसंगरहितम् =मैं निःसंगसे रहितको
परमम्=उत्कृष्ट
मनोदम्=उपभोग करता हूँ
निर्देहदेहरहितम् =देहसे रहित हूं देहसे रहितको और
सततम्=निरन्तर
विनोदम्=हर्षको मैं प्राप्त होता हूं
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम् =गगनकी उपमावाला हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-मैं कर्मरहित हूँ पर नानाप्रकारके कर्म करता हूँ। निस्संग संगरहित हूँ पर सदा विनोद करता हूँ। मैं देहरहित हूँ पर सदा आनन्दसे रहता हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ अमर हूँ सदा एकस्वरूप निर्लेप और व्यापक हूँ ॥ २६ ॥

मायाप्रपञ्चरचना न च मे विकारः
कौटिल्यदम्भरचना न च मे विकारः ।
सत्यानृतेति रचना न च मे विकारो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २७ ॥

पदच्छेदः ।

मायाप्रपञ्चरचना, न, च, मे, विकारः, कौटिल्यदम्भरचना, न, च, मे, विकारः, सत्यानृतेति, रचना, न, च, मे, विकारः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

मायाप्रपञ्चरचना=मायारूपी पपञ्चकी जो रचना सो भी	सत्यानृतेति रचना=सत्य झूठकी रचना भी
मे विकारः=मेरा विकार	मे विकारः=मेरा विकार
न च=नहीं है	न च=नहीं है
कौटिल्यदम्भरचना=कुटिलता और दम्भकी रचना भी	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
मे विकारः=मेरा कार्य	समरसम्=एकरस
न च=नहीं है	गगनोपमोऽहम्=गगनवत् मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-मायाके नाना प्रपञ्चोंकी रचना मेरा विकार नहीं है, कुटिलता कपट ढोंग आदि मेरे विकार नहीं हैं, सच और झूठका प्रपंच मेरा विकार नहीं है। मैं ज्ञानस्वरूप, अमर, सदा समान रहनेवाला और व्यापक हूँ ॥ २७ ॥

सन्ध्यादिकालरहितं न च मे वियोगो
ह्यन्तःप्रबोधरहितं बधिरो न मूकः ।
एवं विकल्परहितं न च भावशुद्धं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २८ ॥

पदच्छेदः।

सन्ध्यादिकालरहितम्, न, च, मे, वियोगः, हि, अन्तः-प्रबोधराहितम्, बधिरः, न, मूकः, एवम्, विकल्पराहितम्, न, च, भावशुद्धम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः

सन्ध्यादिकालरहितम् = सन्ध्यादिकालोंमेंसे रहितहूँतबभीउनसे	न च=नहीं हूँ
मे वियोगः=मेरा वियोग	एवम्=इस प्रकार
न च=नहीं है	विकल्परहितम् =विकल्पसे रहित हूँ
नि=निश्चयकरके	भावशुद्धम्=अन्तःकरणसे शुद्ध
अन्तः=भीतरसे	न च=नहीं हूँ
प्रबोधरहितम् =विशेष बोधसे रहित	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
बधिरः=बहरा और	समरसम्=एकरस
मूकः=मूक भी मैं	गगनोपमोऽहम् =गगनकी उपमावाला मैं हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो चेतन कि संध्या, मध्याह्न और सायं इन तीनों कालोंसे रहित है अर्थात् कालकृत भेद भी जिसमें नहीं है तीनों कालोंमें एकरस है उसके साथ मेरा वियोग नहीं है अर्थात् वह मैं ही हूँ, फिर वह अन्तरके ज्ञानसे रहित है परन्तु वह बधिर और मूक नहीं है किंतु वह ज्ञानस्वरूप है इस प्रकारादि विकल्पोंसे भी वह रहित है तो भी चित्तसे शुद्ध नहीं है क्योंकि उसका चित्त नहीं है वह शुद्धस्वरूप है

और ज्ञानरूपी अमृत है, एकरस आकाशवत् व्यापक है सोई मैं हूं ॥ २८ ॥

निर्नाथनाथरहितं हि निराकुलं वै
निश्चित्तचित्तविगतं हि निराकुलं वै।
संविद्धि सर्वविगतं हि निराकुलं वै
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २९ ॥

पदच्छेदः।

निर्नाथनाथरहितम्, हि, निराकुलम्, वै, निश्चित्तचित्तविगतम्, हि, निराकुलम्, वै, संविद्धि, सर्वविगतम्, हि, निराकुलम् वै, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः।

निर्नाथनाथरहितम् =स्वामीसे रहित हूं किसीका और स्वामी भी मैं नहीं हूं
हि=निश्चय करके
निराकुलम्=व्याकुलतासे भी रहित हूं
वै=निश्चय करके
निश्चित्तचित्तविगतम् =चिन्तासे रहित हूं और चित्तसे भी रहित
वै=निश्चय करके
निराकुलम्=आकुलतासे रहित
संविद्धि=तू सम्यक् जान
सर्वविगतम्=सर्वसे रहित हूं
हि=निश्चय करके
निराकुलम्=कुलसे भी रहित हूं
वै=निश्चय करके
ज्ञानामृतम्=ज्ञानास्वरूप अमृत रूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम् =आकाशकी उपमावाला हूं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मेरा कोई भी नाथ अर्थात् स्वामी नहीं है और मैं भी किसीका स्वामी नहीं हूं क्योंकि मेरेसे भिन्न दूसरा कोई भी नहीं है फिर मैं कुलसे अर्थात् मूलकारणसे भी रहित हूं फिर चिन्तासे रहित हूं

क्योंकि मेरा चित्त ही नहीं है फिर सर्वगत हूँ परन्तु सर्वसे रहित हूँ किन्तु ज्ञानरूपी अमृत एकरस आकाशवत् व्यापक हूँ ॥ २९ ॥

कान्तारमन्दिरमिदं हि कथं वदामि
संसिद्धसंशयमिदं हि कथं वदामि ।
एवं निरन्तरसमं हि निराकुलं वै
ज्ञानामृतं समरसं गगनोऽपमोऽहम् ॥ ३० ॥

पदच्छेदः ।

कान्तारमंदिरम्, इदम्, हि, कथम्, वदामि, संसिद्धसंशयम्, इदम्, हि, कथम्, वदामि, एवम्, निरन्तरसमम्, हि, निराकुलम्, वै, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

इदम्=यह	कथम्=किस प्रकार
कान्तारमन्दिरम्=निर्जन वनरूप है	वदामि=मैं कथन करूँ
हि=निश्चय करके	एवम्=इसी प्रकार वह
कथम्=किस प्रकार	निरन्तरसमम्=निरन्तर सम है
वदामि=मैं कथन करूं	हि वै=निश्चय करके
इदम्=वह	निराकुलम्=व्याकुलतासे रहित
संसिद्धसंशयम्=संशय करके सिद्ध है	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप
हि=निश्चय करके	समरसम्=एकरस
	गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह जगत् एक शून्य मन्दिररूप है वा सत्य असत्य आदि संशयोंकरके युक्त है निरन्तर सम है अर्थात् प्रवाहरूप करके एकरस नित्य है वा निराकुल है अर्थात् मूलकारणसे रहित है । मैं

इस जगत्को इस प्रकारका कैसे कथन करूं? क्योंकि मेरा तो इसके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है किन्तु मैं ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस गगनवत् हूं ॥ ३० ॥

निर्जीवजीवरहितं सततं विभाति
निर्बीजबीजरहितं सततं विभाति ।
निर्वाणबन्धरहितं सततं विभाति
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३१ ॥

पदच्छेदः ।

निर्जीवजीवरहितम्, सततम्, विभाति, निर्बीजबीजरहितम्, सततम्, विभाति, निर्वाणबन्धरहितम्, सततम्, विभाति, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

निर्जीव जीव रहितम् = निर्जीवसे और जीवसे रहित
सततम् = निरन्तरही
विभाति = भान होते हैं
निर्बीजबीजरहितम् = निर्बीजसे और बीजसे रहित
सततम् = निरन्तरही
विभाति = भान होता है
निर्वाणबन्धरहितम् = सुखसे और बन्धनसे रहित
सततम् = निरन्तरही
विभाति = भान होता है
ज्ञानामृतम् = ज्ञान अमृतरूप
समरसम् = एकरस
गगनोपमोऽहम् = मैं गगनवत् हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-एक नीर्जीव पदार्थ है, जिसमें जीव चेतन नहीं रहता है अर्थात् जड़ माया दूसरा जीवरहित है जिसमें जीवत्व धर्म नहीं है, किन्तु केवल व्यापक चेतन पदार्थ है, यह दो ही पदार्थ निरन्तरही मेरेको भान होते हैं, सो दोनोंमें चेतनही सत्य है, माया जड़ मिथ्या है, वह चेतन निर्जीव है अर्थात् बीजकारणसे रहित है, और आप भी किसीका

उपादान कारण नहीं है, ऐसाही हमको निरन्तर भान होता है, फिर वह निर्वाण है अर्थात् मुक्तस्वरूप है, और बन्धनसे रहित है, एकरस ज्ञानरूप अमृतरूप हैं, सो मैं हूं ॥ ३१ ॥

संभूतिवार्जितमिदं सततं विभाति
संसारवर्जितमिदं सततं विभाति ।
संहारवार्जितमिदं सततं विभाति
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥३२॥

पदच्छेदः ।

संभूतिवार्जितम्, इदम्, सततम्, विभाति, संसारवर्जितम्, इदम्, सततम्, विभाति, संहारवार्जितम्, इदम्, सततम्, विभाति, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

इदम्=यह चेतन
संभूतिवर्जितम्=ऐश्वर्यसे रहितही
सततम्=निरन्तर
विभाति=मेरेको भान होता है और
संसारवर्जितम्=संसारसे रहित भी
इदम्=यह चेतन
सततम्=निरन्तर मेरेको
विभाति=भान होता है
संहारवर्जितम्=नाशसे रहित
इदम्=यह ब्रह्म
सततम्=निरन्तरही
विभाति=मेरेको भान होता है
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप मैं हूं
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=आकाशकी उपमावाला मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह जो ब्रह्मचेतन है सो मेरेको निरन्तर ऐश्वर्यसे रहित भान होता है क्योकि संसारमें जितना ऐश्वर्य है सो सब मायाका कार्य है और वही ब्रह्मचेतन माया और मायाके कार्यसे रहित है

फिर यह ब्रह्मचेतन जन्म मरणरूप संसारसे रहित मेरेको भान होता है क्योंकि व्यापक चेतनमें जन्मादिक नहीं बनते हैं फिर यह व्यापक चेतन संहारसे भी रहित है, अर्थात् उसका कभी भी नाश नहीं होता है किन्तु वह ज्ञानरूपी अमृतरूप है, एकरस है आकाशकी तरह व्यापक है सो ब्रह्म मैं ही हूं ॥३२॥

उल्लेखमात्रमपि ते न च नामरूपं
निर्भिन्नभिन्नमपि ते न हि वस्तु किंचित् ।
निर्लज्जमानस करोषि कथं विषादं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३३ ॥

पदच्छेदः ।

उल्लेखमात्रम्, अपि, ते, न, च, नामरूपम्, निर्भिन्न भिन्नम्, अपि, ते, न, हि, वस्तु, किंचित्, निर्लज्जमानस, करोषि, कथम्, विषादम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अपि=निश्चयकरके	न हि वस्तु=वस्तु नहीं है
ते=तुम्हारा	हे निर्लज्ज मानस ! =लज्जासे रहित होकर हे मन !
उल्लेखमात्रम्=उल्लेख मात्र भी	
नामरूपम्=नाम और रूप	कथम्=किस प्रकार
न च=नहीं है	विषादम्=विषादको
निर्भिन्नाभिन्नम्=भेदसे रहितमें भेद	करोषि=तू कर्ता है क्योंकि तू
अपि=निश्चयकरके	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत हो
ते=तुम्हारेमें	समरसम्=एकरस
किंचित्=किंचित्भी	गगनोपमोऽहम्=आकाशवत् मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपने चित्तसे कहते हैं—उल्लेखमात्र भी अर्थात् किंचिन्मात्र भी तेरा नाम और रूप नहीं है फिर भेदसे रहित तेरे स्वरूपमें भेद

करनेवाला कोई भी वस्तु नहीं है. तब फिर हे निर्लज्जमानस अर्थात् लज्जासे रहित चित्त ! तु क्यों विशाद करता है वह चेतन ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस आकाशवत् व्यापक है सो मैं हूं ॥ ३३ ॥

किं नाम रोदिषि सखे न जरा न मृत्युः
किं नाम रोदिषि सखे न चजन्म दुःखम् ।
किं नाम रोदिषि सखे न च ते विकारो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३४ ॥

पदच्छेदः ।

किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, जरा, न, मृत्युः, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, जन्मदुःखम्, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, विकारः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

सखे=हे सखे !
नाम=(इति प्रसिद्धम्)
किम्=किस वास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
न जरा=न तो जरा अवस्था है
न मृत्युः=न तो मृत्यु ही है
सखे=हे सखे
किं नाम=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
जन्मदुःखम्=जन्मका दुःख भी
न च=नहीं

सखे=हे सखे !
किं नाम=किसवास्ते
रोदिषि=तुम रुदन करते हो
ते=तुम्हारा
विकारः=विकार भी
न च=नहीं है क्योंकि
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
समरसम्=समरस
गगनोपमः गगनकी उपमावाला आत्मा है
अहम्=सो मैं हूं

भावार्थः

दत्तात्रेयजी अपने ही चित्तसे कहते हैं—हे सखे! किसलिये तू जरा मृत्युके भयसे रुदन करता है अर्थात् जरामृत्युके भयसे जो तुम्हारा

रुदन करना है सो झूठा है क्योंकि तुम्हारा स्वरूप जरामृत्युके भयसे रहित है यदि कहो कि, जन्मके दुःखसे मैं रुदन करता हूँ तो उचित नहीं क्योंकि जन्मरहित होनेसे जन्मका दुःख भी तुमको नहीं है, फिर तुम्हारा कोई विकार अर्थात् कार्य भी नहीं है तब कार्यके लिये भी तुम्हारा रुदन करना व्यर्थ है क्योंकि ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस आकाशवत् व्यापक मैं हूँ ऐसा तुम निश्चय करो ॥ ३४ ॥

किं नाम रोदिषि सखे न च ते स्वरूपं
किं नाम रोदिषि सखे न च ते विरूपम् ।
किं नाम रोदिषि सखे न च ते वयांसि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३५ ॥

पदच्छेदः ।

किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, स्वरूपम्, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, विरूपम्, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, वयांसि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

सखे=हे सखे !
किं नाम=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता हैं
ते=तुम्हारा यह शरीर
स्वरूपम्=स्वरूप
न च=नहीं है
सखे=हे सखे !
किं नाम=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
ते=तुम्हारा
विरूपम्=रूप नष्ट होनेवाला भी
न च=नहीं है

सखे=हे सखे !
किन्नाम=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
ते=तुम्हारे
वयांसि=आयु आदिक भी
न च=नहीं हैं क्योंकि वह
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=आकाशकी उपमा-वाला है
अहम्=सो मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अपने ही आपसे कहते हैं—हे सखे ! किस वास्ते तू शरीर या इन्द्रियोंके लिये रुदन करता है ? यह तो तुम्हारा रूप नहीं है क्योंकि यह तो सब मिथ्या तुम इनके साक्षी नित्य हो इस वास्ते रुदन करना तुम्हारा नहीं बनता है फिर तुम किसके लिये रुदन करते हो ? नष्ट होनेवाला रूप नहीं है फिर जिन आयु आदिकोंके वास्ते तुम रुदन करते हो यह भी तुम्हारे नहीं हैं क्योंकि तुम ज्ञानस्वरूप अमृतरूप गगनकी उपमावाले हो सो मैं हूं ऐसा निश्चय करो ॥ ३५ ॥

किं नाम रोदिषि सखे न च ते वयांसि
किं नाम रोदिषि सखे न च ते मनांसि ।
किं नाम रोदिषि सखे न तवेन्द्रियाणि
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३६ ॥

पदच्छेदः ।

किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, वयांसि, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च ते, मनांसि, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, तव, इन्द्रियाणि, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

किं नाम=किसवास्ते
सखे=हे सखे !
रोदिषि=तुम रुदन करते हो
वयांसि=आयु आदिक भी
ते न च=तुम्हारे नहीं हैं
सखे=हे सखे !
किं नाम=किसके लिये
रोदिषि=तू रुदन करता है
मनांसि=मन आदिक भी
न च ते=तुम्हारे नहीं है
सखे=हे सखे !
किं नाम=किस लिये
रोदिषि=तू रुदन करता है
इन्द्रियाणि=यह इंद्रिय भी सब
तव न=तुम्हारे नहीं हैं क्योंकि तुम
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत हो
समरसम्=एकरस
गगनोपमः=आकाशकी उपमावाला
अहम्=मैं हूं ऐसे तुम जानो

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे सखे ! तू जिन आयु आदिकोंके लिये रुदन करता है कि यह हमारे नष्ट हो जायंगे सो यह तो तुम्हारे पहलेसे ही नहीं हैं क्योंकि तुम इससे रहित हो फिर मन आदिकोंके वास्ते भी तुम्हारा रुदन करना व्यर्थ है क्योंकि तुम इनसे भी अलग हो और यह इन्द्रियादिक भी तुम्हारे नहीं हैं अतः इनके लिये भी तुम्हारा रुदन करना व्यर्थ है। तुम तो ऐसे निश्चय करो कि, ज्ञानस्वरूप अमृतरूप एकरस मै हूं ॥३६॥

किं नाम रोदिषि सखे न च तेऽस्ति कामः
किं नाम रोदिषि सखे न च ते प्रलोभः ।
किं नाम रोदिषि सखे न च ते विमोहो
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३७ ॥

पदच्छेदः ।

किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, अस्ति, कामः, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, प्रलोभः, किम्, नाम, रोदिषि, सखे, न, च, ते, विमोहः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

सखे=हे सखे !
किं नाम=किस वास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
ते=तुम्हारा
कामः=इच्छा भी
सखे न च=हे सखे ! नहीं है
किं नाम=किसवास्ते
रोदिषि=रुदन करता है
ते=तुम्हारा
प्रलोभः=लोभ भी
न च=नहीं है
सखे=हे सखे !
किं नाम=किसके वास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
ते=तुम्हारा
विमोहः=विमोह भी
न च=नहीं है क्योंकि
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृतरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=आकाशवत् मैं हूं ऐसे तू जान

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे सखे ! यह काम जो इच्छा है यह भी तुम्हारेमें नहीं है क्योंकि यह अन्तःकरणका धर्म है और यह लोभ भी तुम्हारेमें नहीं है और विशेष करके यह मोह भी तुम्हारेमें नहीं है यह भी सब अंतःकरणके ही धर्म हैं, फिर तुम किसके वास्ते रुदन करते हो तुम्हारा रुदन करना व्यर्थ है क्योंकि तुम असंग एकरस ज्ञानस्वरूप व्यापक हो ऐसे जानो ॥ ३७ ॥

ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न च ते धनानि
ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न च ते हि पत्नी ।
ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न च ते ममेति
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३८ ॥

पदच्छेदः ।

ऐश्वर्यम्, इच्छसि, कथम्, न, च, ते, धनानि, ऐश्वर्यम्, इच्छसि, कथम्,न,च, ते, हि, पत्नी, ऐश्वर्यम्, इच्छसि, कथम्, न, च,ते,मम, इति, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

ऐश्वर्यम्=ऐश्वर्यकी
कथम्=किस प्रकार
इच्छसि=तू इच्छा करता है
ते=तुम्हारे
धनानि=धनादिक सब भी
न च=नहीं है
ऐश्वर्यम्=ऐश्वर्यकी
कथम्=किस प्रकार
इच्छसि=तू इच्छा करता है
ते=तुम्हारी
पत्नी=स्त्री भी
न च हि=नहीं हैं
ऐश्वर्यम्=ऐश्वर्यकी
कथम्=किस प्रकार
इच्छसि=तू इच्छा करता है
ते=तुम्हारा
मम=मेरा भी
इति=इस प्रकारका व्यवहार भी
न च=नहीं है
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=आकाशवत् मैं हूँ ऐसे जानो

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह धनादिक तो सब तुम्हारे नहीं हैं फिर तुम ऐश्वर्यकी इच्छा कैसे करते हो फिर स्त्री भी वास्तवसे तुम्हारी नहीं है, वह अपने स्वार्थकी है और भी कोई पदार्थ तुम्हारा नहीं है उसमें ममताका करना भी नहीं बनता है इसी वास्ते ऐश्वर्यकी इच्छा करनी भी निरर्थक है क्योंकि तुम आपही ऐश्वर्यस्वरूप ज्ञानरूपी अमृतरूप आकाशवत् निर्लेप हो ऐसे तुम अपनेको जानो ॥ ३८ ॥

लिङ्गप्रपञ्चजनुषी न च ते न मे च निर्लज्जमानसमिदं च विभाति भिन्नम्। निर्भेदभेदरहितं न च ते न मे च ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥३९॥

पदच्छेदः।

लिंगप्रपञ्चजनुषी, न, च, ते, न, मे, च, निर्लज्जमानसम्, इदम्, च, विभाति, भिन्नम्, निर्भेदभेदरहितम्, न, च, ते, न, मे, च, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः।

लिंगप्रपञ्चजनुषी=चिह्नरूप प्रपञ्चकी उत्पत्ति
ते न च=तुम्हारेसे भी हुई नहीं
मे न च=हमारेसे भी हुई नहीं
निर्लज्जमानसम्=लज्जासे रहित मनके
इदम्=यह रचना
भिन्नम्=भिन्न होकर
विभाति=प्रतीत होती है
च=और
निर्भेदभेदरहितम्=सामान्य विशेष भेदसे रहित होना भी
ते न च=तुम्हारा नहीं है और
मे न च=हमाराभी नहीं है क्योंकि यदि भेद कहीं सत्य हो तब तो हो सो तो नहीं है एकमें भेदाऽभेद व्यवहार ही नहीं बनता है क्योंकि वह
ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूपी अमृत
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला सो मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–नाना प्रकारके चिह्न जैसे पशु पक्षी मनुष्य आदि जातिके पहिचान करानेवाले लक्षण न तुम्हारे हैं न मेरे हैं यह सब लज्जा-हीन मनको प्रतीत पडते हैं तुम्हारे और हमारे कोई साधारण अथवा विशेष भेद नहीं हैं मैं तो ज्ञान और अमृतस्वरूप सदा समान रहनेवाला आकाश-तुल्य हूँ एकरस हूँ ॥ ३९ ॥

नो वाणुमात्रमपि ते हि विरागरूपं
नो वाणुमात्रमपि ते हि सरागरूपम् ।
नो वाणुमात्रमपि ते हि सकामरूपं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ४० ॥

पदच्छेदः ।

नो, वा, अणुमात्रम्, अपि, ते, हि, विरागरूपम्, नो, वा, अणुमात्रम्, अपि, ते, हि, सरागरूपम्, नो, वा, अणुमात्रम्, अपि, ते, हि, सकामरूपम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

वा=अथवा	नो=नहीं है
हि अपि=निश्चय करके	वा=अथवा
ते=तुम्हारा	अपि हि=निश्चय करके
अणुमात्रम्=अणुमात्रभी	ते=तुम्हारा
विरागरूपम्=विगतरागरूप	अणुमात्रम्=अणुमात्रभी
नो=नहीं है	सकामरूपम्=सकामरूप
वा=अथवा	नो=नहीं है किन्तु तुम
अपि हि=निश्चय करके	ज्ञानामृतम्=ज्ञानरूप अमृतरूप
ते=तुम्हारा	समरसम्=एकरस
अणुमात्रम्=अणुमात्रभी	गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला मैं हूं ऐसे जानो
सरागरूपम्=रागके सहित रूप	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हे चित्त ! तुम्हारा स्वरूप अणुमात्र भी विगतराग अर्थात् रागसे रहित नहीं है क्योंकि सर्वकाल आत्मामें तुम्हारा राग बना है. और फिर थोड़ा भी तुम्हारा स्वरूप रागके सहित भी नहीं है क्योंकि विषयोंमें तुम्हारा राग नहीं है और थोडा भी कामनाके सहित तुम्हारा स्वरूप नहीं है क्योंकि तुम ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस गगनकी उपमावाले हो ऐसा तुम चिन्तन करो कि मैं ही ज्ञानरूप और अमृतादि रूपवाला हूं ॥ ४० ॥

ध्याता न ते हि हृदये न च ते समाधिर्ध्यानं न ते हि हृदये न बहिः प्रदेशः । ध्येयं न चेति हृदये न हि वस्तु कालो ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ४१ ॥

पदच्छेदः ।

ध्याता, न, ते, हि, हृदये, न, च, ते, समाधिः, ध्यानम्, न, ते, हि, हृदये, न, बहिः, प्रदेशः, ध्येयम्, न, च, इति, हृदये, न, हि, वस्तु, कालः, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

हि=निश्चयकरके
ते=तुम्हारे
हृदये=हृदयमें
ध्याता=ध्यानका कर्ता
न=नहीं है
ते=तुम्हारी
समाधिः=समाधि और
ध्यानम्=ध्यानभी
हि=निश्चयकरके
न च=नहीं है
ते=तुम्हारे
हृदये=हृदयमें
बहिः=बाह्य
प्रदेशः=प्रदेशभी
न च=नहीं है और
ध्येयम्=ध्येय भी
न=नहीं है और
इति=इस प्रकारका
कालः=काल भी कोई
वस्तु=वस्तु
न हि=नहीं है
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप अमृतरूप
समरसम्=समरस
गगनोपमोऽहम्=गगनकी उपमावाला हूं ऐसे जानो

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–तुम्हारे हृदयमें वास्तवसे न तो कोई ध्याता है अर्थात् ध्यानका कर्ता है और न कोई समाधि तथा ध्यान ही है और न कोई बाहर अन्तर देश ही है और न कोई कालवस्तु ही है किंतु यह सब कल्पना मात्र ही है तुम्हारा स्वरूप इनसे भिन्न ज्ञानरूपी अमृतरूप एकरस आकाशवत् व्यापक है, ऐसा तुम निश्चय करो ॥ ४१ ॥

यत्सारभूतमखिलं कथितं मया ते
न त्वं न मे न महतो न गुरुर्न शिष्यः ।
स्वच्छन्दरूपसहजं परमार्थतत्त्वं
ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ४२ ॥

पदच्छेदः ।

यत्, सारभूतम्, आखिलम्, कथितम्, मया, ते, न, त्वम्, न, मे, न, महतः, न, गुरुः, न, शिष्यः, स्वच्छन्दरूपसहजम्, परमार्थतत्त्वम्, ज्ञानामृतम्, समरसम्, गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

मया=मैंने
ते=तुम्हारे प्रति
अखिलम्=संपूर्ण
यत्=जो
सारभूतम्=सारभूत
कथितम्=कथन किया है वह सब
त्वम् न=तेरा नहीं है
मे न=मेरा भी नहीं है
महतः=महत्तत्त्व भी
न=नहीं है
न गुरुः=न तो गुरु है
न शिष्यः=न शिष्य है
स्वच्छन्दरूपसहजम्=स्वच्छन्दरूप स्वाभाविक
परमार्थतत्त्वम्=परमार्थतत्त्वस्वरूप
ज्ञानामृतम्=ज्ञानस्वरूप
समरसम्=एकरस
गगनोपमोऽहम्=आकाशवत मैं हूँ

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो कि सारभूत था सो तो संपूर्ण तुम्हारे प्रति हमने कथन कर दिया है, परन्तु वह सब वास्तवसे न तो तुम्हारा है न मेरा है और वास्तवसे तुम हम भी नहीं हैं और न कोई महत्तत्त्वादि है और न तो कोई परमार्थसे गुरु है और न कोई शिष्य ही है किन्तु एक ही स्वच्छन्दरूप परमार्थस्वरूप तुम ही हो और ज्ञानस्वरूप अमृतरूप एकरस आकाशवत् मैं हूँ ऐसा तुम चिन्तन करो ॥ ४२ ॥

कथमिह परमार्थं तत्त्वमानन्दरूपं
कथमिह परमार्थं नैवमानन्दरूपम् ।
कथमिह परमार्थं ज्ञानविज्ञानरूपं
यदि परमहमेकं वर्तते व्योमरूपम् ॥ ४३ ॥

पदच्छेदः ।

कथम्, इह, परमार्थम्, तत्त्वम्, आनन्दरूपम्, कथम्, इह, परमार्थम्, न, एवम्, आनन्दरूपम्, कथम्, इह, परमार्थम्, ज्ञानविज्ञानरूपम्, यदि, परम्, अहम्, एकम्, वर्तते, व्योमरूपम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस आत्मामें
परमार्थम्=परमार्थ और
तत्त्वम्=तत्त्व यथार्थ
कथम्=कैसे रहता है
आनन्दरूपम्=आनन्दरूप
कथम्=कैसे रहता
इह=इस आत्मामें
आनन्दरूपम्=आनन्दरूपता और
परमार्थम्=परमार्थता
न एवम्=इस प्रकार नहीं है

इह=इस आत्मामें
परमार्थम्=परमार्थ
ज्ञानविज्ञानरूपम्=ज्ञानविज्ञानरूपता
कथम्=किस प्रकार है किन्तु नहीं है
यदि=जब कि
परम्=उत्कृष्ट
एकम्=एक ही
व्योमरूपम्=व्यापक
अहम्=मैं
वर्तते=वर्तता हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यदि हम एक ही आकाशवत् व्यापक और श्रेष्ठ वर्तमान हैं तो फिर हमारे आत्मस्वरूपमें परमार्थतत्त्व कैसे वर्त्तता है और आनन्दरूपता कैसे रहती है और परमार्थतत्त्व और आनन्दरूपता कैसे नहीं रहती है और ज्ञानविज्ञानरूपता कैसे बनती है, किन्तु किसी प्रकारसे भी नहीं बनती है ॥ ४३ ॥

दहनपवनहीनं विद्धि विज्ञानमेक-
मवनिजलविहीनं विद्धि विज्ञानरूपम् ।
समगमनविहीनं विद्धि विज्ञानमेकं
गगनमिव विशालं विद्धि विज्ञानमेकम्॥४४॥

पदच्छेदः।

इह, न, दहन—पवनहीनम्, विद्धि, विज्ञानम्, एकम्, अवनिजलविहीनम्, विद्धि, विज्ञानरूपम्, समगमनाविहीनम्, विद्धि, विज्ञानम्, एकम्, गगनम्, इव, विशालम्, विद्धि, विज्ञानम्, एकम् ॥

पदार्थः।

विज्ञानम्=विज्ञानस्वरूप आत्माको
एकम्=एकही
विद्धि=तू जान फिर तिसको
दहनपवनहीनम्=अग्नि और वायुसे भी रहित
विद्धि=तू जान फिर
अवनिजलविहीनम्=पृथिवी और जलसे रहित
एकम्=एक ही
विज्ञानम्=विज्ञानस्वरूप आत्माको
विद्धि=तू जान
समगमनविहीनम्=बराबर चलनेसे भी रहित और
विज्ञानम्=विज्ञानस्वरूप
एकम्=एक आत्माकोही
विद्धि=तू जान और
गगनम्=आकाशकी
इव=तरह
विशालम्=विस्तारवाला
विज्ञानम्=विज्ञानस्वरूप
एकम्=एक आत्माको
विद्धि=तू जान

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-वह आत्मा ज्ञानस्वरूप आकाशवत् निर्मल पृथिवी, अग्नि, वायु, जलादिकोंसे रहित है और एक है वह मेरा अपना आप है, ऐसे तुम जानो ॥ ४४ ॥

न शून्यरूपं न विशून्यरूपं
न शुद्धरूपं न विशुद्धरूपम् ।
रूपं विरूपं न भवामि किञ्चित्
स्वरूपरूपं परमार्थतत्त्वम् ॥ ४५ ॥

पदच्छेदः ।

न, शून्यरूपम्, न, विशून्यरूपम्, न, शुद्धरूपम् न, विशुद्धरूपम्, रूपम्, विरूपम्, न, भवामि, किञ्चित्, स्वरूपरूपम्, परमार्थतत्त्वम् ॥

पदार्थः ।

शून्यरूपम्=शून्यरूप मैं	न=मैं नहीं हूँ
न=नहीं हूँ	रूपम्=रूप और
विशून्यरूपम्=विशेषकरके शून्यरूप भी	विरूपम्=विगतरूप भी
न=मैं नहीं हूँ	किञ्चित्=किञ्चित्
शुद्धरूपम्=शुद्धरूप भी	न भवामि=मैं नहीं हूं
न=मैं नहीं हूँ	स्वरूपरूपम्=स्वरूपका भी स्वरूप मैं हूँ
विशुद्धरूपम्=विशेषकरके शुद्धरूपभी	परमार्थतत्त्वम्=परमार्थसे यथार्थरूप मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हम शून्यरूप नहीं हैं और विगतशून्यरूप भी नहीं हैं क्योंकि वह भी हमारेमें ही कल्पित है और किसी साधनकरके भी मैं शुद्ध नहीं होता हूं । और विगतशुद्धरूप भी मैं नहीं हूं अर्थात्

शुद्धतासे रहित भी हम नहीं हैं और नीलपीतादिक रूपोंवाला और विगतरूप भी मैं नहीं हूं। तात्पर्य यह है कि नीलपीतादिक रूपोंवाला पदार्थ जड होता है सो मैं नहीं हूं क्योंकि मैं चेतन हूं और विगतरूप शून्य होता है, सो मैं नहीं हूं क्योंकि सच्चिदानन्दरूप मैं हूं, और परमार्थ-स्वरूप भी मैं हूं ॥ ४५ ॥

मुञ्च मुञ्च हि संसारं त्यागं मुञ्च हि सर्वथा ।
त्यागात्यागविषं शुद्धममृतं सहजं ध्रुवम् ॥४६॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायामात्म-
संवित्त्युपदेशो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

मुञ्च, मुञ्च, हि, संसारम्, त्यागम्, मुञ्च, हि, सर्वथा, त्यागात्यागविषम्, शुद्धम्, अमृतम्, सहजम्, ध्रुवम् ॥

पदार्थः ।

संसारम्=संसारको
हि=निश्चयकरके
मुञ्च=छोड दे
त्यागम्=त्यागको भी
हि=निश्चयकरके
सर्वथा=सब प्रकासे
मुञ्च=छोड दे
त्यागात्याग-विषम्=त्याग और त्यागा-भावरूपी विषकोभी
मुञ्च=छोडदे क्योंकि
सहजम्=स्वभावसे ही
शुद्धम्=तू शुद्ध है
अमृतम्=अमृत रूप है
ध्रुवम्=नित्य है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे मुमुक्षुजन ! संसारका तू त्याग करदे फिर उस त्यागका भी त्याग करदे और त्याग तथा त्यागके अभावको भी विषरूप जानकरके त्यागदे । तात्पर्य यह है कि, त्यागका जो कि अभिमान है कि, मैं त्यागी हूं यह भी बडा दुःखदाई है, त्याग अत्याग दोनोंके अभि-मानके त्यागनेसे ही पूरा सुख मिलता है और तू स्वभावसे ही शुद्ध है

अमृतरूप है और नित्य भी है तेरेसे भिन्न दूसरा न कोई जीव है और न ईश्वर है किन्तु तू ही सर्व रूप सबका अधिष्ठान है, ऐसा निश्चय कर ॥४६॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचितपरमानन्दीभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अवधूत उवाच ।

नावाहनं नैव विसर्जनं वा
पुष्पाणि पत्राणि कथं भवन्ति ।
ध्यानानि मंत्राणि कथं भवन्ति
समासमं चैव शिवार्चनं च ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

न, आवाहनम्, न, एव, विसर्जनम्, वा, पुष्पाणि, पत्राणि, कथम्, भवन्ति, ध्यानानि, मन्त्राणि, कथम्, भवन्ति, समासमम्, च, एव, शिवार्चनम्, च ॥

पदार्थः ।

आवाहनम्=व्यापक चेतनका आवाहनही
न=नहीं है
एव=निश्चयकरके
विसर्जनम्=विसर्जनभी
न=नहीं हो सकता है
पुष्पाणि=पुष्प
वा=अथवा
पत्राणि=पत्र
कथम्=किस प्रकारसे
भवन्ति=समर्पण होते हैं
ध्यानानि=ध्यान
च=और
मन्त्राणि=मन्त्र
कथम्=किस प्रकार
भवन्ति=हो सकते हैं
च= और
एव=निश्चयकरके
समासमम्=सर्वत्र समदृष्टि रखनी ही
शिवार्चनम्=कल्याणरूप चेतनका पूजन है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जब कि वह चेतन आत्मा सर्वत्र व्यापक कल्याणस्वरूप ब्रह्माण्डभरमें एकही है, तब तिसका पूजन और आवाहन तथा विसर्जन कैसे बन सकता है क्योंकि आवाहन और विसर्जन उसका होता हैं जो कि एक देशमें हो एक देशमें नहीं अर्थात् परिच्छिन्न देहधारी हो ऐसा तो वह आत्मा नहीं है किन्तु सर्वत्र एकरस पूर्ण है इस वास्ते उसका आवाहन और विसर्जन भी नहीं होता है और पूजाभी अपनेसे भिन्नकी होती है वह अपनेसे भिन्न भी नहीं है इस वास्ते उसकी पूजाभी नहीं हो सकती है। फिर पुष्पपत्रादिक उसको दिये जाते हैं कि जिसके घ्राणादिक इन्द्रियें हों देहधारी हो सो उसके तो घ्राणादिक इन्द्रियें भी नहीं हैं इस वास्ते पुष्पपत्रादिकोंका समर्पण करना भी नहीं बनता है अज्ञानी लोग कह देते हैं कि, वह वासनाका भूखा है परन्तु उनको वासनाके अर्थका ज्ञान नहीं होता है। वासना नाम शुभ अशुभ कर्मोंके संस्कारोंका है सो संस्कार देहधारी परिच्छिन्नमें ही रहते हैं, देहसे रहित व्यापकमें वासना नहीं रहती है। फिर जब कि, उसका आवाहन और विसर्जन ही नहीं बनता है तब फिर ध्यान और मन्त्र कैसे बन सकते हैं क्योंकि साकार वस्तुका ही ध्यान हो सकता है निराकारतक तो मन बुद्धि पहुँचही नहीं सकते हैं क्योंकि मन बुद्धि आदिक बस साकार हैं दूसरे जड हैं। जडचेतनका किसी प्रकारसे भी विषय नहीं हो सकता है इस वास्ते ध्यान और मन्त्र भी नहीं बनते हैं अतएव सर्वत्र समदृष्टि करनी अर्थात् सबमें एक आत्माको जान करके किसी जीवको भी न सताना इसीका नाम शिवपूजन है॥ १॥

न केवलं बन्धविबन्धमुक्तो
न केवलं शुद्धविशुद्धमुक्तः।
न केवलं योगवियोगमुक्तः
स वै विमुक्तो गगनोपमोऽहम्॥ २॥

पदच्छेदः।

न, केवलम्, बन्धविबन्धमुक्तः, न, केवलम्, शुद्धविशुद्ध-

मुक्तः, न, केवलम्, योगवियोगमुक्तः, सः, वै, विमुक्त,ः गगनोपमः, अहम् ॥

पदार्थः ।

केवलम्=केवल	योगवियोगमुक्तः=सामान्यविशेषयोगसे रहित भी
बन्धविबन्धमुक्तः=सामान्य विशेषयोगसे वन्धनसे रहित	न=मैं नहीं हूं किंतु हूं
न=मैं नहीं हूं किन्तु हूं	वै=निश्चयकरके
केवलम्=केवल	सः=सो मैं
शुद्धविशुद्धमुक्तः=सामान्यविशेषरूप शुद्धविशुद्धसे रहित	विमुक्तः=मुक्तरूप हूं
न=मैं नहीं हूं किंतु हूं	गगनोपमः गगनकी उपमावाला
केवलम्=केवल	अहम्=मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—दो प्रकारका बंध है एक तो सामान्यरूपमें बंध है दूसरा विशेषरूपसे बंध है। प्राणिमात्रको जो कि अज्ञानकृत बंध है सो सामान्यबंध है और स्त्रीपुत्रादिकोंमें जो कि अहंताममतारूपी बंध है सो विशेष बन्ध है सो इन दोनों प्रकारके बन्धोंसे मुक्त नहीं हूँ किंतु अवश्य मुक्त हूं, शुद्धि भी सामान्य विशेषरूपसे अर्थात् आभ्यन्तर और बाह्य भेदसे दो प्रकारकी है सो मैं दोनों प्रकारकी शुद्धिसे भी रहित हूं क्योंकि मेरा आत्मा नित्य शुद्ध है और योगवियोगसे अर्थात् संयोगवियोगसे भी मैं रहित हूं क्योंकि संयोग वियोग भी साकारके होते हैं निराकारके नहीं होते हैं। सो मेरा आत्मा निराकार है किंतु गगनकी उपमावाला मैं हूं ॥ २ ॥

सञ्जायते सर्वमिदं हि तथ्यं
सञ्जायते सर्वमिदं वितथ्यम् ।
एवं विकल्पो मम नैव जातः
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः।

संजायते, सर्वम्, इदम्, हि, तथ्यम्, सञ्जायते, सर्वम्, इदम्, वितथ्यम्, एवम्, विकल्पः, मम, न, एव, जातः, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः।

इदम्=यह दृश्यमान	एवम्=इस प्रकारका
सर्वम्=सम्पूर्ण जगत्	विकल्पः=विकल्प
हि=निश्चयकरके	मम=मेरेको
तथ्यम्=सत्य ही	एव=निश्चय करके
सञ्जायते=उत्पन्न होता है	न जातः=उत्पन्न नहीं हुआ क्योंकि
इदम्=यह दृश्यमान	अहम्=मैं
सर्वम्=सम्पूर्ण जगत्	अनामयः=रोगसे रहित और
वितथ्यम्=मिथ्या ही	स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे ही मुक्तरूप हूँ
सञ्जायते=उत्पन्न होता है	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह जितना कि दृश्यमान जगत् है, सो सम्पूर्ण मिथ्या ही उत्पन्न होता है और फिर यह संपूर्ण जगत् विशेष करके ही मिथ्या उत्पन्न होता है अथवा सत्य ही उत्पन्न होता है इस प्रकारका विकल्प भी मेरेको कभी भी उत्पन्न नहीं हुआ है क्योंकि मैं स्वरूसे ही मुक्तरूप हूं. रोगसे रहित हूं अर्थात् जन्ममरणादि रोग मेरेमें नहीं हैं ॥ ३ ॥

न साञ्जनं चैव निरञ्जनं वा
न चान्तरं वापि निरंतरं वा।
अन्तर्विभिन्नं न हि मे विभाति
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

न, साञ्जनम्, च, एव, निरञ्जनम् वा, न, च, अन्तरम्, वा, अपि, निरन्तरम्, वा, अन्तर्विभिन्नम्, न, हि, मे, विभाति, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

साञ्जनम्=मायामलके सहित
एव=निश्चयकरके
न=मैं नहीं हूँ
च वा=और
निरञ्जनम्=मायामलसे रहित भी
न=मैं नहीं हूँ
वा=अथवा
वा अपि=निश्चयकरके
अन्तरम्=व्यवधानसहित
वा=अथवा
निरन्तरम्=व्यवधान रहित भी
न च=मैं नहीं हूँ
अन्तर्विभिन्नम्=व्यवधान और भेद भी
मे=मेरेको
न हि=नहीं
विभाति=भान होता है क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे ही मैं मुक्तरूप हूँ
अनामयः=रोगसे रहित
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हम मायारूपी अञ्जन जो मैल है तिसके सहित नहीं है क्योंकि तीनों कालमें माया हमारेमें वास्तवसे नहीं है और मायारूपी मलसे रहित भी नहीं है क्योंकि हमारेमें ही माया कल्पित है. तब सहित और रहित कैसे हम कह सकते हैं, किन्तु कदापि भी नहीं । फिर हमारेमें अन्तर अर्थात् व्यवधान और व्यवधानसे रहितपना भी नहीं बनता है । व्यवधान और भेद सर्वव्यापकमें हमको भान भी नहीं होता है क्योंकि हम रोगसे रहित मुक्तस्वरूप हैं ॥ ४ ॥

अबोधबोधो मम नैव जातो बोधस्वरूपं मम नैव जातम् । निर्बोधबोधं च कथं वदामि स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः।

अबोधबोधः, मम, न, एव, जातः, बोधस्वरूपम्, मम, न, एव, जातम्, निर्बोधबोधम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः।

आबोधबोधः=बोधरहितका बोध
मम=मेरेको
एव=निश्चयकरके
न जातः=नहीं हुआ है
बोधस्वरूपम्=मैं बोधस्वरूप हूँ ऐसा ज्ञान भी
मम=मेरेको
एव= निश्चयकरके
न जातम्=नहीं हुआ है
च= और
निर्बोधबोधम्=बोधसे रहित बोधवाला अपनेको
कथम्=किस प्रकार
वदामि=कहूँ क्योंकि मैं
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे ही मुक्तरूप हूँ
अनामयः=रोगसे रहित
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-बोधनाम ज्ञानका है (न बोधः अबोधः) न जो होवे ज्ञान उसीका नाम अबोध अर्थात् अज्ञान है सो! अज्ञानका जो बोध ज्ञान सो भी मेरेको नहीं है क्योंकि अज्ञान जो है सो शुद्धस्वरूप आत्मामें तीनों कालमें नहीं है जो वस्तु तीनों कालमें है ही नहीं उसका ज्ञान कैसे हो सकता है किन्तु कदापि भी नहीं मैं ज्ञानस्वरूप हूँ ऐसा ज्ञान भी मेरेको नहीं हुआ ऐसा ज्ञान तब होवे जो ज्ञान मेरे भिन्न होवे, जब ज्ञान अपनेसे भिन्न नहीं है तब हम कैसे कह सकते हैं कि मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, फिर मैं निर्बोधबोध हूँ अर्थात् ज्ञानसे रहित मैं ज्ञान हूँ ऐसे भी मैं कैसे हूँ ऐसा कथन भी नहीं बनता है क्योंकि ज्ञानसे रहित तो जड होता है वह ज्ञानरूप कैसे हो सकता है इसवास्ते मैं मोक्षरूप रोगसे रहित हूँ ॥ ५ ॥

न धर्मयुक्तो न च पापयुक्तो
न बन्धयुक्तो न च मोक्षयुक्तः।

युक्तं त्वयुक्तं न च मे विभाति
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

न, धर्मयुक्तः, न, च, पापयुक्तः, न, बन्धयुक्तः, न, च, मोक्षयुक्तः, युक्तम्, तु, अयुक्तम्, न, च, मे, विभाति, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

धर्मयुक्तः=धर्म करके युक्त भी मैं
न=नहीं हूं
पापयुक्तः=पापकरके भी युक्त मैं
न च=नहीं हूं
बन्धयुक्तः=बन्धकरके युक्त भी मैं
न=नहीं हूं
मोक्षयुक्तः=मोक्षकरके भी युक्त मैं
न=नहीं हूं
च=पुनः
युक्तम्=युक्तपना और
अयुक्तम्=अयुक्तपना
मे=मेरेको
न च=नहीं
विभाति=भान होता है
स्वरूपनिर्वाणम्=मोक्षस्वरूप
अनामयः=रोगसे रहित
अहम्=मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हम मुक्तरूप हैं और जन्ममरणादि रोगसे भी हम रहित हैं इसवास्ते हमको यह भान नहीं होता है कि, हम धर्मकरके युक्त हैं या पापकरके युक्त हैं या बन्धकरके युक्त हैं या मोक्ष करके युक्त हैं क्योंकि जीवन्मुक्तकी दृष्टिमें एक चेतनसे अतिरिक्त अन्य नहीं दीखता है ॥ ६ ॥

परापरं वा न च मे कदाचि-
न्मध्यस्थभावो हि न चारिमित्रम् ।
हिताहितं चापि कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

परापरम्, वा, न, च, मे, कदाचित्, मध्यस्थभावः, हि, न, च, अरिमित्रम्, हिताहितम्, च, अपि, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

वा=अथवा
परापरम्=पर अपर भाव भी
मे=मेरा
कदाचित्=कदाचित् भी
न च=नहीं हैं
मध्यस्थभावः=मध्यस्थभाव भी
हि=निश्चय करके
न च=हमारा नहीं
अरिमित्रम्=शत्रुमित्रभी
न च=मेरा नहीं हैं
च=और
हिताहितम्=हित अहित भी
अपि=निश्चय करके
कथम्=कैसे मैं अपने
वदामि=कथन करूं क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे जीवन्मुक्त और
अनामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--कदाचित् भी पर अपर मेरेमें नहीं है क्योंकि मैं सर्वव्यापक हूँ और मध्यस्थभाव भी मेरेमें नहीं है क्योंकि मैं द्वैतसे रहित हूं और मैं अपना हितकारी अहितकारी भी नहीं कह सकता हूं जब कि मेरेसे विना दूसरा कोई भी नहीं है तब अहितकारी और हितकारी मैं कैसे कहूं और द्वैतके अभाव होनेसे मेरा कोई शत्रु और मित्र भी नहीं है क्योंकि मैं जन्मादिक रोगसे रहित मुक्तस्वरूप हूं ॥ ७ ॥

नोपासको नैवमुपास्यरूपं
न चोपदेशो न च मे क्रिया च ।
संवित्स्वरूपं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

न, उपासकः, न, एवम्, उपास्यरूपम्, न, च, उपदेशः, न, च, मे, क्रिया, च, संवित्स्वरूपम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

उपासकः=उपासक
न=मैं नहीं हूं
एवम्=इसी प्रकार
उपास्यरूपम्=उपास्यरूप भी
न=मैं नहीं हूं
मे=मेरा
उपदेशः=उपदेशभी
न च=नहीं है
च=और
क्रिया=क्रिया भी
न च=मेरेमें नहीं है
च=और
संवित्स्वरूपम्=ज्ञानस्वरूप भी
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कथन करू क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त
अनामयः=रोगसे रहित
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मेरेमें उपासक और उपास्यभाव भी नहीं है और उपदेश और क्रिया भी मेरेमें नहीं बनती है क्योंकि एक व्यापक चेतनमें यह सब बातें नहीं हो सकती हैं व्यापकमें क्रिया भी नहीं होसकती है और मैं ज्ञानस्वरूप हूँ ऐसा कथन भी मेरेमें नहीं बनता है क्योंकि ऐसा कथन भी भेदको लेकरके ही बनता है अभेदको लेकरके नहीं बनता है क्योंकि मैं संसाररोगसे रहित मुक्तस्वरूप हूँ ॥ ८ ॥

नो व्यापकं व्याप्यमिहास्ति किञ्चि-
न्न चालयं वापि निरालयं वा ।
अशून्यशून्यं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

नो, व्यापकम्, व्याप्यम्, इह, अस्ति, किञ्चित्, न, च, आलयम्, वा, अपि, निरालयम्, वा, अशून्यशून्यम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस आत्मा ब्रह्ममें
व्यापकम्=व्यापकभाव
व्याप्यम्=व्याप्यभाव
किञ्चित्=किञ्चित् भी
न अस्ति=नहीं है
वा=अथवा
आलयम्=आश्रयपना
वा=अथवा
निरालयम्=निराश्रयपना भी
न च=नहीं है
अशून्य- शून्यम् =अशून्यपना तथा शून्यपना
कथम्=किस प्रकारसे
वदामि=मैं कहूँ क्योंकि
स्वरूपान- र्वाणम् =मुक्तस्वरूप और
अनामयः=रोगसे रहित
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—इस आत्मा ब्रह्ममें व्याप्यव्यापकभाव भी किञ्चित् नहीं है, क्योंकि एक ही पूर्णमें व्याप्यव्यापकभाव भी किसी प्रकारसे नहीं बनता है और आश्रय निराश्रयभाव भी एकमें नहीं बनता है और शून्यका अभाव तथा शून्यता भी उसमें नहीं बनती है क्योंकि वह शून्यका भी साक्षी है सो मैं हूँ नित्युक्त और रोगसे रहित भी हूँ ॥ ९ ॥

न ग्राहको ग्राह्यकमेव किञ्चि-
न्न कारणं वा मम नैव कार्यम् ।
अचिन्त्यचिन्त्यं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

न, ग्राहकः, ग्राह्यकम्, एव, किञ्चित्, न, कारणम्, वा, मम, न, एव, कार्यम्, अचिन्त्यचिन्त्यम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

ग्राहकः=ग्रहण करनेवाला
एव=निश्चयकरके
मे=हमारा
किञ्चित्=किञ्चित् भी
न=नहीं है
वा=अथवा
मम=मेरा
एव=निश्चयकरके
कारणम्=कारण और
कार्यम्=कार्य भी

न=नहीं है
ग्राह्यकम्=ग्रहण होनेवाला
अचिन्त्य-चिन्त्यम् =जो कि मनकरके भी नहीं चिंतन किया जाता
कथम्=उनको किस प्रकार [है
वदामि=मैं कथन करूं क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम् =मुक्तस्वरूप और
अनामयः=संसाररोगसे रहित
अहम्=मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हमारे ग्राह्य और ग्राहकभी किञ्चित् भी नहीं है और मेरेमें कारण कार्यभाव भी किञ्चित् नहीं है क्योंकि यह सब भेदसे ही बनते हैं एक आत्मामें नहीं बनते हैं। वह आत्मा कैसा है जिसका स्वरूप मन वाणी करके भी चिन्तन नहीं किया जाता है उसका हम किसकरके कथन करें ? वह मुक्तस्वरूप संसाररोगसे रहित है सोई मैं हूँ ॥ १० ॥

न भेदकं वापि न चैव भेद्यं
न वेदकं वा मम नैव वेद्यम् ।
गतागतं तात कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

न, भेदकम्, वा, अपि, न, च, एव, भेद्यम्, न, वेदकम्, वा, मम, न, एव वेद्यम्, गतागतम्, तात, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अपि=निश्चयकरके
भेदकम्=मैं भेदका करनेवाला भी
न=नहीं हूँ
वा=अथवा
एव=निश्चयकरके
भेद्यम्=भेदके योग्य भी
न च=मैं नहीं हूँ
मम=मेरेमें
वेदकम्=जाननापना
वा=अथवा
वेद्यम्=जानने योग्य भी
न=नहीं है
तात=हे तात !
गतागतम्=जो कि व्यतीत होगया है जोकि आनेवाला है उसको
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कहूँ
स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तरूप
अनामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—न तो कोई भेदक ही है अर्थात् भेद करनेवाला भी कोई नहीं है और न कोई पदार्थ भेद होनेके योग्य ही है और न कोई जाननेवाला ज्ञान ही है और न कोई जाननेके योग्य ही है हे तात ! वास्तवसे न तो कोई जाता ही है और न कोई आता ही है तब फिर हम कैसे जानेआनेको कहें क्योंकि हमारेमें तो कुछ बनता ही नहीं है हम तो मुक्तस्वरूप संसाररोगसे रहित हैं ॥ ११ ॥

न चास्ति देहो न च मे विदेहो
बुद्धिर्मनो मे न हि चेन्द्रियाणि ।
रागो विरागश्च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

न, च, अस्ति, देहः, न, च, मे, विदेहः, बुद्धिः, मनः, मे, न, हि, च, इन्द्रियाणि, रागः, विरागः, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

मे=हमारा
देहः=शरीरभी
न च अस्ति=नहीं है
मे=हम
विदेहः=देहसे रहित भी
न च=नहीं है
च=और
बुद्धिः=बुद्धि तथा
मनः=मनभी
च=और
इन्द्रियाणि=इन्द्रियभी
मे न च=मेरे नहीं हैं
रागः=पदार्थोंमें राग
च= और
विरागः=विराग
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कथन करूँ
स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तरूप
अनामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हम न तो शरीरके सहित हैं और न शरीरसे रहित हैं क्योंकि आत्मा देहसे रहित तो है परन्तु संपूर्ण शरीर आत्मामें ही कल्पित है, इन कल्पित शरीरों को लेकर रहित भी हम नहीं हैं और मन बुद्धि इन्द्रियादिक भी हमारे नहीं हैं क्योंकि यह भी सब कल्पित हैं तब फिर मैं रागविरागको कैसे कथन करूं । जब कि कोई उत्पत्ति-वाला जड पदार्थ हमारा नहीं है तब हमारा किसीमें राग और किसीमें वैराग कहना भी नहीं बनता है किन्तु मैं मुक्तस्वरूप संसाररूपी रोगसे रहित हूँ ॥ १२ ॥

उल्लेखमात्रं न हि भिन्नमुच्चैरुल्लेखमात्रं न तिरोहितं वै ।
समासमंमित्र कथंवदामिस्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् १३

पदच्छेदः ।

उल्लेखमात्रम्, न, हि, भिन्नम्, उच्चैः, उल्लेखमात्रम्, न, तिरोहितम्, वै, समासमम्, मित्र, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

उल्लेखमात्रम् = किञ्चिन्मात्र भी जीव ब्रह्मका	न वै = वह नहीं है
भिन्नम् = भेद	मित्र = हे मित्र !
न हि = नहीं है	समासमम् = सम असम
उच्चैः = बडे भारी	कथम् = कैसे
उल्लेखमात्रम् = उल्लेखमात्रकरके भी	वदामि = मैं तिसकी कहूँ क्योंकि
तिरोहितम् = छिपाहुआ	स्वरूपनिर्वाणम् = स्वरूपसे मुक्त
	अनामयोऽहम् = रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह आत्मा केवल उल्लेखमात्र ही नहीं है किन्तु उल्लेखमात्रसे भी वह भिन्न है अर्थात् उसका लिखनामात्रही नहीं होता है किन्तु वह लिखनेमें भी नहीं आता है परन्तु ऊँचा लेख जो कि वेदका है उसीमें वह तिरोहित छिपाहुआ है इसीवास्ते हे मित्र ! उसको सम असम भी हम नहीं कह सकते हैं, क्योंकि वह आश्चर्यरूप है सोई मैं हूँ ॥ १३ ॥

जितेन्द्रियोऽहं त्वजितेन्द्रियो वा
न संयमो मे नियमो न जातः ।
जयाजयौ मित्र कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

जितेन्द्रियः, अहम्, तु, अजितेन्द्रियः, वा, न, संयमः, मे, नियमः, न, जातः, जयाऽजयौ, मित्र, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

तु=पुनः फिर
जितेन्द्रियः=जितेन्द्रिय
अहम्=मैं
वा=अथवा
अजितेन्द्रियः=अजितेन्द्रिय
न=नहीं हूं
मे=मुझको
संयमः=संयम
नियमः=नियम
न जातः=नहीं उत्पन्न हुआ है
मित्र=हे मित्र !
जयाजयौ=जय अजयको
कथम्=किस प्रकार
वदामि=कथन करूं क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम् मुक्तरूप
निरामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूं

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं-मैं जितेन्द्रिय भी हूं और अजितेन्द्रिय भी मैं हूं । तात्पर्य यह है कि, इंद्रियोंवाला इंद्रियोंको जीतकरके जितेंद्रिय कहा जाता है और इंद्रियोंको न जीतकरके अजितेंद्रिय भी कहा जाता है जिसके इंद्रिय ही नहीं है वह अर्थसेही जितेंद्रिय अजितेंद्रिय भी कहाजाता है क्योंकि इंद्रियोंसे विना जितेंद्रिय अजितेंद्रिय व्यवहार ही नहीं होता है और संयम नियम व्यवहार भी नहीं होता है इसवास्ते स्वामीजी कहते हैं कि, हमारा संयम नियम भी नहीं हुआ है और जय अजयको भी मैं नहीं कह सकता हूं क्योंकि यह भी इंद्रियोंके ही अधीन है किन्तु मैं मुक्तस्वरूप संसाररोगसे रहित हूं ॥ १४ ॥

अमूर्तमूर्तिर्न च मे कदाचि-
दाद्यन्तमध्यं न च मे कदाचित् ।
बलाबलं मित्र कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ।

अमूर्तमूर्तिः, न, च, मे, कदाचित्, आद्यन्तमध्यम्, न,च, मे, कदाचित्, बलाबलम्, मित्र, कथम्, वदामि, स्वरूपानि-र्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

मे=मैं
अमूर्तमूर्तिः=मूर्तिसे रहित मूर्ति-वाला
कदाचित्=कदाचित् भी
न च=नहीं हूँ
आद्यन्त-मध्यम्=आदि और अन्त तथा मध्य भी
कदाचित्=कदाचित्
मे=मेरे
न च=नहीं है
मित्र=हे मित्र
बलाबलम्=बल और निर्बलताको
अहम्=मैं
कथम्=किस प्रकार
वदामि=कथन करूं क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=मैं स्वरूपसे ही मुक्त स्वरूप
अनामयोऽहम्=संसाररोगसे रहित हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं मूर्तिसे रहित और मूर्तिवाला भी नहीं हू क्योंकि ऐसा व्यवहार भी द्वैतको ही लेकरके होता है और न मेरा कोई आदि मध्य और अन्त ही है क्योंकि यह सब व्यवहार भी द्वैतको ही लेकरके होता हैं अद्वैतमें नहीं होता है । हे मित्र ! न तो मैं बली हूँ, और न मैं दुर्बल हूँ, दूसरेकी अपेक्षासे बली दुर्बल व्यवहार भी होता है एकमें नहीं होता है सो मैं मुक्तस्वरूप संसाररूपी रोगसे रहित हूं ॥ १५ ॥

मृतामृतं वापि विषाविषं च
संजायते तात न मे कदाचित् ।
अशुद्धशुद्धं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

मृतामृतम्, वा, अपि, विषाविषम्, च, संजायते, तात, न, मे, कदाचित्, अशुद्धशुद्धम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः।

तात=हे तात !
मे=मेरेको
मृतामृतम्=मरना न मरना
वा=अथवा
अपि=निश्चय करके
विषाविषं च=विष और अविष
संजायते=उत्पन्न
कदाचित्=कदाचित् भी
न=नहीं होते हैं
अशुद्धं शुद्धं च=अशुद्ध और शुद्ध
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कथन करूं क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तस्वरूप
अहम्=मैं
अनामयः=रोगसे रहित हूं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हे तात ! मेरेमें मरना, जीना, विष, अमृत और शुद्ध अशुद्ध यह सब कदाचित् भी नहीं हैं क्योंकि मैं मुक्तरूप संसार रोगसे रहित हूँ ॥ १६ ॥

स्वप्नः प्रबोधो न च योगमुद्रा
नक्तं दिवा वापि न मे कदाचित्।
अतुर्यतुर्यं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः।

स्वप्नः, प्रबोधः, न, च, योगमुद्रा, नक्तम्, दिवा, वा, अपि, न, मे, कदाचित्, अतुर्यतुर्यम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः।

मे=मेरेको
वा अपि=निश्चयकरके
कदाचित्=कदाचित् भी
स्वप्नः=स्वप्न और
प्रबोधः=जाग्रत्
न च=नहीं होते हैं

योगमुद्रा=योगकी मुद्रा और
नक्तम्=रात्रि और
दिवा=दिनभी नहीं होते हैं
अतुर्यतुर्यञ्च=अतुरीया और तुरीयाको
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कहूं
स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तस्वरूप
अहम्=मैं
अनामयः=रोगसे रहित हूं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—न तो मेरेमें जाग्रत् है, न स्वप्न है, न योगमुद्रा है, न दिन है, न रात्रि है, न तुरीया है, न अतुरीया है, क्योंकि मैं मुक्तरूप हूं॥ १७॥

संविद्धि मां सर्वविसर्वमुक्तं
माया विमाया न च मे कदाचित्।
संध्यादिकं कर्म कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम्॥ १८॥

पदच्छेदः।

संविद्धि, माम्, सर्वविसर्वमुक्तम्, माया, विमाया, न, च, मे, कदाचित्, सन्ध्यादिकम्, कर्म, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम्॥

पदार्थः।

माम्=मुझको
सर्वविसर्वमुक्तम्=सर्व और सर्वसे रहित
संविद्धि=सम्यक् तू जान
मे=मुझको
माया विमाया=माया विमाया
कदाचित्=कदाचित् भी
न च=नहीं व्याप सकते हैं
सन्ध्यादिकम्=सन्ध्याआदिक
कर्म=कर्म
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कथन करू
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त
अनामयोऽहम्=रोगसे रहित हूं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-मुझको सम्पूर्ण प्रपंचके सहित और सम्पूर्ण प्रपंचसे रहित भले प्रकारसे तू जान और मायासे और मायाके कार्यसे भी रहित जान और सन्ध्याआदिक कर्मोंके करनेसे भी तू मेरेको रहित ही जान क्योंकि, मैं मुक्तस्वरूप संसाररोगसे रहित हूँ ॥ १८ ॥

संविद्धि मां सर्वसमाधियुक्तं
संविद्धि मां लक्ष्यविलक्ष्यमुक्तम् ।
योगं वियोगं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः।

संविद्धि, माम्, सर्वसमाधियुक्तम्, संविद्धि, माम्, लक्ष्यविलक्ष्यमुक्तम्, योगम्, वियोगम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः।

माम्=मेरेको	योगं च=योग और
सर्वसमाधियुक्तम्=संपूर्ण समाधिकरके युक्त	वियोगम्=वियोगको
संविद्धि=सम्यक् तू जान	कथम्=किस प्रकार
माम्=मेरेको	वदामि=मैं कहूँ
लक्ष्यविलक्ष्यमुक्तम्=लक्ष्य विलक्ष्य रहित	स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त और
संविद्धि=सम्यक् जान तू	अनामयः=संसाररोगसे रहित
	अहम्=मैं हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-संपूर्ण समाधियोंकरके मैं युक्त हूं, क्योंकि सबका लय मेरेमें ही होता है और सम्पूर्ण इन्द्रियादिकोंके लक्ष्यभाव और विगत-

लक्ष्यभावसे भी मैं रहित हूँ और योगकरके संयोग और वियोग इन दोनोंसे भी मैं रहित हूँ क्योंकि एकमें संयोग वियोग दोनों बनते नहीं हैं क्योंकि मैं मुक्तस्वरूप जन्ममरणरूपी रोगसे रहित हूँ ॥ १९ ॥

मूर्खोऽपि नाहं न च पण्डितोऽहं
मौनं विमौनं न च मे कदाचित् ।
तर्कं वितर्कञ्च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः ।

मूर्खः, अपि, न, अहम्, न, च, पण्डितः, अहम्, मौनम्, विमौनम्, न, च, मे, कदाचित्, तर्कम्, वितर्कम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अपि=निश्चयकरके	मे=मुझमें
अहम्=मैं	कदाचित्=कदाचित् भी
मूर्खः=मूर्ख	न च=नहीं है
न= नहीं हूँ	तर्कं च=तर्क और
अहम्=मैं	वितर्कम्=वितर्कको
पण्डितः=पंडित भी	कथम्=किस प्रकार
न च=नहीं हूँ	वदामि=मैं कथन करूं
मौनम्=मौनपना	स्वरूपनिर्वाणम्=मुक्तस्वरूप मैं
विमौनम्=विगतमौन	अनामयोऽहम्=रोगसे रहित हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं मूर्ख नहीं, मैं पंडित भी नहीं, मैं मितभाषी तथा मौनी भी नहीं हूँ । तर्क वितर्क कुछ भी मैं नहीं करता, मैं आत्माराम और रोगरहित ब्रह्म हूँ ॥ २० ॥

पिता च माता च कुलं न जाति-
र्जन्मादिमृत्युर्न च मे कदाचित्।
स्नेहं विमोहं च कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः।

पिता, च, माता, च, कुलम्, न, जातिः, जन्मादिमृत्युः, न, च, मे, कदाचित्, स्नेहम्, विमोहम्, च, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः।

पिता च=पिता और	कदाचित्=कदाचित् भी
माता च=माता और	न च=नहीं है
कुलम्=कुल और	स्नेहं च=स्नेह और
जातिः=जाति भी	विमोहम्=विमोहको
न=मेरे नहीं है	कथम्=किस प्रकार
जन्मादि- मृत्युः=जन्मादिक और मृत्यु भी	वदामि=मैं कथन करूं क्योंकि
मे=मेरे	स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त
	अनामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हमारा न कोई पिता है, न माता हैं, न कुल है, न जाति है, क्योंकि जिसके जन्मादिक होते हैं उसीके ही माता पिता और कुल तथा जाति भी होते हैं हमारे तो जन्मादिक और मृत्यु आदिक ही नहीं हैं इसी वास्ते न हमारा किसीके साथ स्नेह ही है और न विशेष करके मोह ही है क्योंकि हम मुक्तस्वरूप जन्मादिरोगसे रहित हैं ॥ २१ ॥

अस्तं गतो नैव सदोदितोऽहं
तेजो वितेजो न च मे कदाचित् ।
सन्ध्यादिकं कर्म कथं वदामि
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २२ ॥

पदच्छेदः ।

अस्तम्, गतः, न, एव, सदा, उदितः, अहम्, तेजः, वितेजः, न, च, मे, कदाचित्, सन्ध्यादिकम्, कर्म, कथम्, वदामि, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः ।

अहम्=मैं
अस्तं गतः=लयभावको
न=प्राप्त नहीं हूँ
एव=निश्चयकरके
सदा=सर्वकाल
उदितः=उदित हूँ
मे=हमारा
तेजः=तेज भी
वितेजः=तेजरहितभी
कदाचित्=कदाचित्
न च=नहीं है तब फिर
सन्ध्यादिकम्=सन्ध्यादिक
कर्म=कर्मको
कथम्=किस प्रकार
वदामि=मैं कथन करूं जो मेरे हैं क्योंकि
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त
अनामयोऽहम्=रोगसे रहित मैं हूँ

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—मैं कभी भी लयभावको प्राप्त नहीं होता हूँ किन्तु सर्वकाल मेरा उदय ही बना रहता है और सामान्य तेज और विशेषतेज भी कदाचित् मेरेको प्रकाश नहीं कर सकते हैं तब फिर सन्ध्यादिक जो कि मन इन्द्रियादिकोंके कर्म हैं यह मेरे क्या सुधार कर सकते हैं । किन्तु कुछ भी नहीं क्योंकि मैं बन्धनसे रहित नित्य मुक्तरूप हूँ ॥ २२ ॥

असंशयं विद्धि निराकुलं मा-
मसंशयं विद्धि निरन्तरं माम्।
असंशयं विद्धि निरञ्जनं मां
स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥२३॥

पदच्छेदः।

असंशयम्, विद्धि, निराकुलम्, माम्, असंशयम्, विद्धि, निरन्तरम्, माम्, असंशयम्, विद्धि, निरञ्जनम्, माम्, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः।

माम्=मेरेको	विद्धि=जान तू
असंशयम्=संशयसे रहित	असंशयम्=संशयसे रहित
निराकुलम्=मूलकारणसे रहित	माम्=मेरेको
विद्धि=तू जान	निरञ्जनम्=मायामलसे रहित
माम्=मेरेको	विद्धि=जान तू
असंशयम्=संशयसे रहित	स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसे मुक्त
निरन्तरम्=एकरस	अनामयोऽहम्=रोगसे रहित हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वास्तवसे मेरा कोई कुल नहीं है अर्थात् उत्पत्तिका मूल कारण मेरा कोई भी नहीं है और मैं एकरस ही सदैव रहता हूं, घटने बढनेसे भी मैं रहित मायामलसे रहित हूँ किन्तु मुक्तस्वरूप ज्योंका त्यों हूँ ॥ २३ ॥

ध्यानानि सर्वाणि परित्यजन्ति शुभाशुभं कर्म परित्यजन्ति।
त्यागामृतं तात पिबन्ति धीराः स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥२४॥

पदच्छेदः।

ध्यानानि, सर्वाणि, परित्यजन्ति, शुभाशुभम्, कर्म, परित्यजन्ति, त्यागामृतम्, तात, पिबन्ति, धीराः, स्वरूपनिर्वाणम्, अनामयः, अहम् ॥

पदार्थः।

धीराः=धीरपुरुष
सर्वाणि=संपूर्ण
ध्यानानि=ध्यानोंका
परित्यजन्ति=त्याग कर देते हैं
शुभाशुभम्=शुभ अशुभ
कर्म=कर्मकाभी
परित्यजन्ति=त्याग कर देते हैं
त्यागामृतं=त्यागरूपी अमृतको ही
तात=तात
पिबन्ति=पान करते हैं
स्वरूपनिर्वाणम्=स्वरूपसेही मुक्त
अनामयोऽहम्=संसाररोगसे मैं रहित हूँ

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो कि धीरपुरुष आत्मज्ञानी हैं अर्थात् जीवन्मुक्त हैं आत्मानन्दमें ही मग्न हैं वह सम्पूर्ण ध्यान और कर्मोंका त्याग ही करदेते हैं और त्यागरूपी अमृतको ही पान करते हैं और अपनेको मुक्तरूप मानते हैं ॥ २४ ॥

विन्दति विन्दति नहि नहि यत्र
छन्दो लक्षणं नहि नहि तत्र।
समरसमग्नो भावितपूतः
प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः ॥ २५ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयाविरचि० अवधूतगीतायां स्वामि-कार्तिकसंवादे स्वात्मसंवित्त्युपदेशे स्वरूपनि० नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

विन्दति, विन्दति न, हि, न, हि, यत्र, छन्दः, लक्षणम्, न, हि, न, हि, तत्र, समरसमग्नः, भावितपूतः,प्रलपति, तत्त्वम्, परम्, अवधूतः ॥

पदार्थः ।

परम्=श्रेष्ठ
अवधूतः=अवधूत
समरसमग्नः=एकरस ब्रह्ममें मग्न हुआ हुआ
तत्र=तिस ब्रह्ममें
नहि नहि=नहीं लभता है २
यत्र=जिस ब्रह्ममें
छन्द=छन्द
लक्षणं=लक्षण
विन्दाति=लभता है कुछ
विन्दाति=लभता हैं
नहि नहि=नहीं लभता है नहीं लभता है
भावितपूतः=पवित्र हुआ २
तत्त्वम्=आत्मतत्त्वको ही
प्रलपाति=कथन करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जीवन्मुक्त श्रेष्ठ अवधूत एकरस आत्मा आनन्दमें ही जो कि मग्न है सो तिस आत्मामें कुछ भी नहीं देखता न लभता है । जिस चेतनमें छन्दरूप मन्त्रादिक भी वास्तवसे नहीं हैं क्योंकि वह आनन्दघन हैं इसवास्ते वह आत्मतत्त्वका ही कथन करता हैं क्योंकि आत्मासे भिन्न उसकी दृष्टिमें दूसरा कोई भी नहीं है ॥ २५ ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचितपरमानन्दीभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ५.

अवधूत उवाच ।

ओमिति गदितं गगनसमं त-
त्र परापरसारविचार इति ।

अविलासविलासनिराकरणं
कथमक्षरबिन्दुसमुच्चरणम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः ।

ओम्, इति, गदितम्, गगनसमम्, तत्, न, परापरसार-विचारः, इति, अविलासविलासनिराकरणम्, कथम्, अक्षर-बिन्दुसमुच्चरणम् ॥

पदार्थः ।

ओम् इति=ओम् इस प्रकार
गदितम्=उच्चारण किया हुआ
गगनसमम्=आकाशके वह तुल्य है
परापरसार-विचारः=पर अपर और सारका विचार
इति=इस प्रकार
तत् न=सो नहीं है
अविलासविलासनिराकरणम्=विलासका अभाव और विलासका निराकरण रूपहै
अक्षरबिन्दुसमुच्चरणम्=अक्षरबिन्दुके सहितका उच्चारण
कथम्=किस प्रकार होगा

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—ओम् इस प्रकार जो कि उच्चारण किया जाता है सो ओंकार ब्रह्मरूप है, क्योंकि ब्रह्मका वाचक है, वाच्यवाचकका किसी प्रकारसे भी भेद नहीं हो सकता है, इसीवास्ते गगनतुल्य व्यापक है। उसी ओंकारमें जगत्रूपी विलासके अभावका ओर विलासका निराकरण भी है अर्थात् ओंकाररूप ब्रह्ममें जगत् तीनों कालमें नहीं बनता है तब बिन्दुकरके युक्त अक्षरका भी उच्चारण किस करके बनेगा किन्तु कदापि भी नहीं बनेगा केवल अद्वैतही सिद्ध होता है ॥ १ ॥

इति तत्त्वमसिप्रभृतिश्रुतिभिः
प्रतिपादितमात्मनि तत्त्वमसि ।

त्वमुपाधिविवर्जितसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

इति, तत्त्वमसिप्रभृतिश्रुतिभिः, प्रतिपादितम्, आत्मनि, तत्त्वम्, असि, त्वम्, उपाधिविवर्जितसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इति	=इस प्रकार	त्वम्	=तू ही
तत्त्वमसिप्रभृतिश्रुतिभिः	=" तत्त्वमसि" प्रभृति श्रुतियों-करके	उपाधिविवर्जितसर्वसमम्	=उपाधिसे रहित सर्वमें सम है
प्रतिपादितम्	=प्रतिपादन किया जो है	किमु	=किसवास्ते
आत्मनि	=आत्मामें	रोदिषि	=तू रुदन करता है
तत्त्वमसि	=सो तू है	मानस	=हे मन !
		सर्वसमम्	=सर्वमें तू सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—तत्त्वमसि इत्यादि महावाक्योंने प्रतिपादन किया है कि जीव ही ब्रह्म है और वास्तवसे उपाधिसे रहित सर्वमें एक ही आत्मा है, जिन उपाधियोंने भेद कर रक्खा है सो सब अज्ञानकार्य है अज्ञानके नष्ट होजानेपर उनका भी नाश होजाता है इसवास्ते भेदको लेकरके रुदन करना नहीं बनता है ॥ २ ॥

अधऊर्ध्वविवर्जितसर्वसमं
बहिरन्तरवर्जितसर्वसमम् ।
यदि चैकविवर्जितसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

अधऊर्ध्वविवर्जितसर्वसमम्, बहिरन्तरवर्जितसर्वसमम्, यदि, च, एकविवर्जितसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

अधऊर्ध्वविवर्जितसर्वसमम् = नीचे ऊपरसे रहित सबमें सम है	एकविवर्जितसर्वसमम् = एकसे सहित सबमें सम है
बहिरन्तरवर्जितसर्वसमम् = बाहर और भीतरसे रहित सबमें सम है	किमु = किसवास्ते
यदि च = यदि और	रोदिषि = रुदन करता है ?
	मानस = हे मन !
	सर्वसमम् = सर्वमें सम

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—नीचे और ऊपरके विभागसे रहित वह चेतन सर्वमें सम है अर्थात् बराबर ही है, न्यून अधिक किसीमें भी वह नहीं है और बाहर और भीतरके व्यवहारसे भी वह रहित है और एकत्वभावसे भी रहित है किन्तु एकरस सर्वमें बराबर ही है तब फिर किसवास्ते रुदन करता है ॥ ३ ॥

न हि कल्पितकल्पविचार इति
न हि कारणकार्यविचार इति ।
पदसंधिविवर्जितसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, कल्पितकल्पविचारः, इति, न, हि, कारणकार्यविचारः, इति, पदसन्धिविवर्जितसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

कल्पितकल्प-विचारः इति	=यह कल्पित है यह कल्प है इस प्रकार विचार भी	पदसन्धिविवर्जितसर्वसमम्	पद और संधिसे रहित वह सबमें सम ही है
न हि	=नहीं है	किमु	=किस वास्ते
कारणकार्य-विचारःइति	=यह कारण है यह कार्य है इस प्रकारका विचार भी	रोदिषि	=रुदन करता है
		मानस	=हे मन !
न हि	=उसमें नहीं है	सर्वसमम्	=वह तो सबमें समही है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-उस चेतनब्रह्ममें यह वस्तु कल्पित है यह कल्प है इस प्रकारका विचार नहीं हो सकता है । यह कार्य है, यह कारण है इस प्रकारका विचार करना भी तिसमें नहीं बनता है और पद संधि व्यवहारसे भी रहित है क्योंकि वह द्वैतसे रहित है किन्तु सर्वत्र एकरस ही है तब फिर तुम किस वास्ते रुदन. करते हो क्योंकि तुम्हारेसे भिन्न तो कोई भी दूसरा नहीं है ॥ ४ ॥

नहि बोधविबोधसमाधिरिति
नहि देशविदेशसमाधिरिति ।
नहि कालविकालसमाधिरिति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, बोधविबोधसमाधिः, इति, न, हि, देशविदेशसमाधिः, इति, कालविकालसमाधिः, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

बोधविबोधसमाधिः=सामान्य विशेषज्ञानवाली समाधिभी	कालविकालसमाधिः=सामान्य विशेषरूप करके काल और विकालकी समाधि भी
इति=इस प्रकारकी	इति=इस प्रकार
न हि=उसमें नहीं है और फिर उसमें	न हि=उसमें नहीं है
देशविदेशसमाधिः=सामान्य विशेषरूप करके देशविदेशकी समाधि भी	किम्=किस वास्ते
इति=इस प्रकार	मानस=हे मन ! तू
न हि=उसमें नहीं है	रोदिषि=रुदन करता है
	सर्वसमम्=वह सर्वत्र समरूप है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जब कि वह ब्रह्मचेतन द्वैतसे रहित एक ही है तब फिर यह ज्ञान है, यह अज्ञान है, यह देश है यह विदेश है, यह काल है, यह काल नहीं है, इस प्रकारका विचार भी उसमें नहीं बनता है । तब फिर जो जीव इस प्रकारके विचारके वास्ते रुदन करते हैं उनका रुदन करना व्यर्थ है ॥ ५ ॥

न हि कुम्भनभो न हि कुम्भ इति
न हि जीववपुर्न हि जीव इति ।
न हि कारणकार्यविभाग इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, कुम्भनभः, न, हि, कुम्भः, इति, न, हि, जीववपुः, न, हि, जीवः, इति, न, हि, कारणकार्यविभागः, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

कुम्भनभः=घटाकाश	न हि=नहीं है
न हि=नहीं है	कारणकार्य-विभागःइति=यह कार्य है यह कारण है इस प्रकार का विभाग भी
कुम्भः=घट भी	न हि=नहीं है
न हि=नहीं है	किमु=किसवास्ते
इति=इसी प्रकार	मानस=हे मन !
जीववपुः=जीवका शरीर भी	रोदिषि=रुदन करता है
न हि= नहीं	सर्वसमम्=वह सर्वत्र समरूप है
जीवः=जीवभी	
इति=इस प्रकार	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस व्यापक आनन्दघन चेतनमें जब कि घट ही तीनों कालमें नहीं है तब घटाकाशका तो अर्थसे ही अभाव सिद्ध होता है इसी तरह वास्तवसे जीव ही उसमें नहीं है तब जीवका शरीर कैसे हो सकता है ? जब कि कार्यकारण व्यवहार ही उसमें नहीं है तब कार्यकारणके नाशके वास्ते रुदन करना कहां बनता है ? क्योंकि वह एकरस सर्वत्र सम है ॥ ६ ॥

इह सर्वनिरन्तरमोक्षपदं
लघुदीर्घविचारविहीन इति।
न हि वर्तुलकोणविभाग इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः।

इह, सर्वनिरन्तरमोक्षपदम्, लघुदीघविचाराविहीनः, इति, न, हि, वर्तुलकोणविभागः, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस प्रकरणमें (आत्मा)
सर्वनिरन्तर- मोक्षपदम् } =सर्व एकरस मोक्षपद है और
लघुदीर्घवि- चारविहीनः } =लघु दीर्घ विचा- रसे रहित
इति=इस प्रकारका व्यवहार और
वर्तुलकोण- विभागः } =गोलका और कोणका विभागवाला
इति=इसप्रकारका व्यवहार भी उसमें
न हि=नहीं है तब फिर
किमु=किसके लिये
मानस=हे मन !
रोदिषि=तुम रुदन करतेहो
सर्वसमम्=वह सर्वत्र सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-निराकार निरवयव मोक्षरूप आत्मामें लघु दीर्घका विचार और गोलाकार तथा त्रिकोणादि विभागका विचार भी नहीं बनता है क्योंकि वह इनसे रहित है ॥ ७ ॥

इह शून्यविशून्यविहीन इति
इह शुद्धविशुद्धविहीन इति ।
इह सर्वविसर्वविहीन इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

इह, शून्यविशून्यविहीनः, इति, इह, शुद्धविशुद्धविहीनः, इति,इह,सर्वविसर्वविहीनः, इति, किमु, रोदिषि,मानस,सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस आत्मामें
शून्यविशून्य- विहीनः } शून्य और विशेष शून्यसे हीन
इति=इस प्रकारका व्यवहार और
इह=इस आत्मामें
शुद्धविशुद्ध- विहीनः } =शुद्ध और विशेष शुद्धसे हीन
इति=इस प्रकारका व्यवहार और
इह=इसी आत्मामें

सर्वविसर्व- } =सर्व और विशेष-
विहीनः } करके सर्वसे हीन
इति=इस प्रकारका व्यवहार भी
नहीं होता है
किमु=किसवास्ते फिर तुम
मानस=हे मन !
रोदिषि=रुदन करते हो
सर्वसमम्=वह सर्व सम है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–यदि कोई ऐसी आशंका करे कि, यदि आत्मा निराकार निरवयव है तो शून्य ही सिद्ध होगा क्योंकि शून्य भी निराकार निरवयव ही होता है। इसका यह उत्तर है कि, उसमें शून्य अशून्य विचार नहीं बनता है क्योंकि वह शून्यका भी साक्षी है और एकरस व्यापक होनेसे बाहर और भीतर तथा संधिका भी विचार उसमें नहीं होसकता है और सर्वसे भिन्न अभिन्नका विचार भी उसमें नहीं होसकता है, तब तुम्हारा रुदन करना व्यर्थ है ॥ ८ ॥

न हि भिन्नविभिन्नविचार इति
बहिरन्तरसन्धिविचार इति।
अरिमित्रविवर्जितसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः।

न, हि, भिन्नविभिन्नविचारः, इति, बहिः, अन्तरसन्धिविचारः, इति, अरिमित्रविवर्जितसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

भिन्नविभिन्न- } =भिन्न है या भिन्न
विचारः } नहीं है सो
विचार भी
इति=इस प्रकारका
न हि=नहीं होसकता है
बहिः=वह बाहर है या
अन्तरसन्धि- } =या भीतरकी
विचारः } सन्धिमें विचार
भी
इति=इस प्रकारका

न हि=नहीं होसकता है क्योंकि वह
अरिमित्रविव- } =शत्रुमित्र भी
र्जितसर्वसमम् } उससे रहित
सर्वमें सम है

किमु=फिर किस वास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
मानस=हे मन !
सर्वसमम्=तू सर्वमें सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--उस निर्गुण आत्मामें ऐसा विचार भी नहीं होसकता है कि, वह जगत्से भिन्न है या अभिन्न है बाहर है या इसके भीतर है या इसकी सन्धिमें है क्योंकि वह सर्वत्र एकरस सम है तब ऐसा विचार कैसे हो सकता है कदापि नहीं, फिर वह शत्रु मित्रके भावसे भी रहित है क्योंकि उसमें शत्रु मित्र भाव भी नहीं बनसकता है तब फिर तुम्हारा रुदन भी व्यर्थ है ॥९॥

न हि शिष्यविशिष्यसरूप इति
न चराचरभेदविचार इति ।
इह सर्वनिरन्तरमोक्षपदं
किमु रोदिषि मानससर्वसमम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, शिष्यविशिष्यसरूपः, इति, न, चराचरभेदविचारः, इति, इह, सर्वनिरन्तरमोक्षपदम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

शिष्यविशि-
ष्यसरूपः } =शिष्य और शिष्या भावसरूप भी
न हि=वह नहीं है
इति=इसी प्रकार
चराचर-
भेदविचारः } =चर अचरके भेदका विचारभी
न=नहीं है

इह=इस प्रकरणमें [वह आत्मा]
सर्वनिरन्तर-
मोक्षपदम् } =सर्वका निरन्तर मोक्षरूपी पद है
किमु=किसवास्ते
रोदिषि=तू रुदन करता है
मानस=हे मन !
सर्वसमम्=वह सबमें सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—उसमें शिष्यभाव और शिष्यसे रहित भाव अर्थात् विगतशिष्यभाव दोनों नहीं हैं और चर अचरके भेदके विचारसे भी वह रहित है अर्थात् चर अचर जगत्का उससे भेद है या अभेद ऐसा विचार भी उसमें नहीं बनता है क्योंकि यह जगत् सब वास्तवसे सत्य नहीं है किन्तु कल्पित है और सर्वका आश्रयभूत वह मोक्षरूप है, तब फिर जीव तू क्यों रुदन करता है ॥ १० ॥

ननु रूपविरूपविहीन इति
ननु भिन्नविभिन्नविहीन इति ।
ननु सर्गविसर्गविहीन इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

ननु, रूपविरूपविहीनः, इति, ननु, भिन्नविभिन्नविहीनः, इति, ननु, सर्गविसर्गविहीनः, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

ननु=निश्चय करके
रूपविरूपविहीनः=वह रूपसे और विगतरूपसे भी रहित है
इति=इस प्रकार
ननु=निश्चयकरके
भिन्नविभिन्नविहीनः=भेदसे और विगत भेदसेभीवहरहित है
इति=इस प्रकार
ननु=निश्चय करके
सर्गविसर्गविहीनः=उत्पत्ति और प्रलयसे भी वह रहित है
इति=इस प्रकार जानकर
किमु=किसवास्ते तू
मानस=हे मन !
रोदिषि=रुदन करता है
सर्वसमम्=वह सबमें सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह चेतन आत्मारूपसे और रूपके अभावसे भी सहित है और भेदसे तथा भेदके अभावसे भी वह रहित है जगत्की उत्पत्ति और प्रलयसे भी वह रहित है क्योंकि वास्तवसे उसमें न तो जगत्की उत्पत्ति होती है और न प्रलय ही होता है, तब फिर तू किसवास्ते रुदन करता है क्योंकि वास्तवसे तू ही ब्रह्मरूप है ॥ ११ ॥

न गुणागुणपाशनिबन्ध इति
मृतजीवनकर्म करोति कथम् ।
इति शुद्धनिरञ्जनसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

न, गुणागुणपाशनिबन्धः, इति, मृतजीवनकर्म, करोति, कथम्, इति, शुद्धनिरञ्जनसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

गुणागुणपाशनिबन्धः = गुण और निर्गुणकी पाशका संबंध उसको	कथम् = किस प्रकार हो सकता है
न = नहीं है	शुद्धनिरञ्जनसर्वसमम् = वह शुद्ध निरञ्जन सर्वमेंसमहै तबफिर
इति = इस प्रकार	किमु = किसवास्ते
मृतजीवनकर्म = मृतकके और जीवनके कर्मकी	मानस = हे मन !
करोति इति = करता है वह	रोदिषि = तू रुदन करता है
	सर्वसमम् = वह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो आत्मा ब्रह्म शुद्ध है, मायामलसे रहित है निरञ्जन है उसमें सगुणपना और निर्गुणपना और मृतजीवनके कर्मोंका

करना यह सब कैसे बन सकता है किन्तु कदापि नहीं बनता है । फिर तिस आत्माकी प्राप्तिके वास्ते कैसे तुम रुदन करते हो वह तो सर्वमें सम है तुम्हारा अपने आप है ॥ १२ ॥

इह भावविभावविहीन इति
इह कामविकामविहीन इति ।
इह बोधतमं खलु मोक्षसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

इह, भावविभावविहीनः, इति, इह, कामविकामविहीनः, इति, इह, बोधतमम्, खलु, मोक्षसमम्, किमु, मानस, रोदिषि, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इह=यहां वह आत्मा	इह=यहां वह आत्मा
भावविभाव विहीनः=भावअभावसे हीन है	बोधतमम्=ज्ञानस्वरूप है
इति=इसी प्रकार	खलु=निश्चय करके
इह=यहां वह आत्मा	मोक्षसमम्=मोक्षस्वरूप वह है
कामविकामविहीनः=काम और कामके अभावसे रहित है	किमु=किसवास्ते [उसके लिये
इति=इसी प्रकार	मानस=हे मन !
	रोदिषि=तू रुदन करता है
	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–हे मन ! इस जगत्में साधारण असाधारण भाव तथा इच्छाओंसे आत्मा है अर्थात् नानाप्रकारके संकल्प और विकल्पोंसे चित्त भ्रान्त रहता है, यह बडा अज्ञान है, आत्मा शुद्ध ज्ञान स्वरूप है यदि इस प्रकार विवेक बुद्धिका आश्रय करै तो मोक्षके तुल्य सुख मिले

हे मन ! तुमको हानि, लाभ, सुख, दुःख सब कामोंमें समान रहना चाहिये, व्यर्थ दुःख कर क्यों रोते ॥ १३ ॥

इह तत्त्वनिरन्तरतत्त्वमिति
न हि संधिविसन्धिविहीन इति।
यदि सर्वविवर्जितसर्वसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः।

इह, तत्त्वनिरन्तरतत्त्वम्, इति, न, हि, सन्धिविसन्धिविहीनः, इति, यदि, सर्वविवर्जितसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

इह=इस ब्रह्म आत्मामें	इति=इस प्रकारभी व्यवहार नहीं होता है
तत्त्वनिरन्तरतत्त्वम्=यह तत्त्व है या निरन्तरही तत्त्व है	यदि जब कि वह
इति=इस प्रकारका व्यवहार	सर्वविवर्जितसर्वसमम्=सर्वसे रहित और सर्वमें सम हैं फिर
न हि=नहीं होता है और	किमु=किसवास्ते
संधिविसंधिविहीनः=संधि और विसंधि के अभावसे हीन है	मानस=हे मन !
	रोदिषि=तू रुदन करता है
	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–इस आत्मामें तत्त्वोंका कभी २ सम्बन्ध होता है या सब तत्त्व उसमें रहते हैं ? इसमें किसीका मेल भी है या यह किसीका मेलवाला नहीं है जो शास्त्रोंसे यह सिद्ध होजाय कि यह सभी उपाधियोंसे रहित है, सब पदार्थोंमें एकही रूपसे रहनेवाला है तो हे मन ! सुखदुःखरहित सदा एकरस आत्माके लिये क्यों रोता है ॥ १४ ॥

अनिकेतकुटी परिवारसमं
इह सङ्गविसङ्गविहीनपरम् ।
इह बोधविबोधविहीनपरं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः ।

अनिकेतकुटी, परिवारसमम्, इह, सङ्गविसङ्गविहीनपरम्, इह, बोधविबोधविहीनपरम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

अनिकेतकुटी = अनियत वास कुटी होनी	इह = ब्रह्म
परिवारसमम् = परिवारके तुल्य सबको जानना	बोधविबोधविहीनपरम् = ज्ञान अज्ञानसे रहित श्रेष्ठ है
इह = यह ब्रह्म	किमु = किस वास्ते
सङ्गविसङ्गविहीनपरम् = संगविसंगसे रहित परमपवित्र	रोदिषि = तू रुदन करता है
	मानस = हे मन !
	सर्वसमम् = वह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–निराश्रय होकर रहै, एकान्त झोपडीमें रहै । अथवा परिवारसे भरापूरा रहै सब समान है । थोडे साथमें रहे, अधिक समूहमें रहे अथवा एकान्तवास करे, थोडा बोध हो, अधिक ज्ञान हो अथवा ज्ञानशून्य हो आत्मा सदा एकाकार है, हे मन ! उसके लिये तू क्यों रोता है ॥१५॥

अविकारविकारमसत्यमिति
अविलक्षविलक्षमसत्यमिति ।
यदि केवलमात्मनि सत्यमिति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

अविकारविकारम्, असत्यम्, इति, अविलक्षविलक्षम्, असत्यम्, इति, यदि, केवलम्, आत्मनि, सत्यम्, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

अविकार- विकारम् } =विकारसे रहितका विकार यह जगत् हैं
इति=इसी वास्ते
असत्यम्=असद्रूप है
अविलक्ष- विलक्षम् } =अलक्षका यह लक्ष है
इति=इसी वास्ते
असत्यम्=असत्य है
यदि=जब कि
केवलम्=केवल
आत्मनि=आत्माही
सत्यम्=सद्रूप है
इति=इसी वास्ते
किमु=किसवास्ते रुदन करता है ।
मानस=हे मन !
रोदिषि=तू रुदन करता है
सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–आत्माको कभी विकार नहीं होता आत्मासे यह नित्य और संसार हुआ जो मानते हैं यह ठीक नहीं क्योंकि आत्मा नित्य और संसार अनित्य है । जिसका कोई आकार नहीं उस आत्माका यह साकार जगत् हो नहीं सकता इससे यह अनित्य है । जब कि एक आत्माही सत्य है तो हे मन तू क्यों रोता है ॥ १६ ॥

इह सर्वसमं खलु जीव इति
इह सर्वनिरन्तरजीव इति ।
इह केवलनिश्चलजीव इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ।

इह, सर्वसमम्, खलु जीवः, इति, इह, सर्वनिरन्तरजीवः,

इति, इह केवलनिश्चलजीवः, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

इह=इस संसारमें	इह=इस संसारमें
खलु=निश्चय करके	केवलनिश्चलजीवः=केवल निश्चल जीव ही है फिर
सर्वसमम्=सर्वसे उत्तम	इति=इस प्रकार
जीव=जीव है	किमु=किस वास्ते
इति=इस प्रकार	मानस=हे मन !
इह=इस संसारमें	रोदिषि=तुम रुदन करते हो
सर्वनिरन्तरजीवः=सर्वके निरन्तर जीव ही है	सर्वसमम्=यह सब सम है
इति=इस प्रकार	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यदि ऐसा समझते हो कि, संसारमें प्रत्यक्ष नाना प्रकारके जीव देखनेमें आते हैं वे ही सब कुछ हैं उनसे और आत्मासे कुछ दोष नहीं है, तब भी कुछ दोष नहीं जीव उस परमात्माका ही अंश है, अविद्या आदि वासनाओंसे मुक्तजीव और परमात्मामें कुछ भेद नहीं होता, ऐसा होनेपर भी हे मन ! तुम वृथा क्यों रोते हो ॥ १७ ॥

अविवेकविवेकमबोध इति
अविकल्पविकल्पमबोध इति
यदि चैकनिरन्तरबोध इति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १८ ॥

पदच्छेदः।

अविवेकविवेकम्, अबोधः, इति, अविकल्पविकल्पम्, अबोधः, इति, यदि, च, एकनिरन्तरबोधः, इति, किमु, रोदिषि, मानसं, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

अविवेक- } =विवेकका अभाव और विवेकम् } विवेक	यदि च=यदि च
अबोधः=अबोध ही है	एकनिरन्त- } =एक निरन्तर बोध रबोधः } मात्र ही है
इति=इसी प्रकार	इति=इस प्रकार जान फिर
अविकल्प- } =विकल्पका अभाव विकल्पम् } और विकल्प	किमु=किसके वास्ते
	मानस=हे मन !
अबोधः=अबोध ही है	रोदिषि=तुम रुदन करते हो
इति=इसी प्रकार जानो	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—ईश्वरका कभी विकार नहीं, जगत्को तो विकारी देखते हैं इससे यह जगत् असत्य है ईश्वर आंख आदि इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष नहीं होता इससे यह मिथ्या है और यदि सत्य है तो वह एक आत्मामें ही है इससे हे मन ! तुम क्यों रोते हो ॥ १८ ॥

न हि मोक्षपदं न हि बन्धपदं
न हि पुण्यपदं न हि पापपदम् ।
न हि पूर्णपदं न हि रिक्तपदं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, मोक्षपदम्, न, हि, बन्धपदम्, न, हि, पुण्यपदम्, न, हि, पापपदम्, न, हि, पूर्णपदम्, न, हि, रिक्तपदम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

मोक्षपदम्=मोक्षपद	पूर्णपदम्=पूर्णपद भी
न हि=नहीं है और	न हि=नहीं है
बन्धपदम्=बन्धपद भी	रिक्तपदम्=अपूर्णपद भी
न हि=नहीं है	न हि= नहीं है
पुण्यपदम्=पुण्यपद भी	किमु=किसके वास्ते
न हि=नहीं है	मानस=हे मन !
पापपदम्=पापपद भी	रोदिषि=तू रुदन करता है
न हि=नहीं है और	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं-जिसमें पहले बन्ध होता है वही पीछे मुक्त भी होता है आत्मामें पहले बन्ध ही नहीं है तब फिर पीछे मुक्त कहांसे होवेगा जिसवास्ते बन्ध मोक्ष दोनों नहीं हैं इसी वास्ते पुण्य और पापभी आत्मामें नहीं है और यदि प्रथम न्यून होवे तब पीछे पूर्ण होवे सो आत्मामें यह दोनों भी नहीं हैं फिर तू किसवास्ते रुदन करता है ? वह तो सर्वत्र सर्वदा सम ही है ॥ १९ ॥

यदि वर्णविवर्णविहीनसमं
यदि कारणकार्यविहीनसमम् ।
यदि भेदविभेदविहीनसमं
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः ।

यदि, वर्णविवर्णविहीनसमम्, यदि, कारणकार्यविहीन-सममम्, यदि, भेदविभेदविहीनसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

यदि=यदि आत्मा	यदि=यदि वह आत्मा
वर्णविवर्णविहीनसमम्=वर्णभागसे और वर्णविभागके अभावसे रहित है और सम भी है	भेदविभेदविहीनसमम्=भेदसे और भेदभावसे रहित है और सम है
यदि=यदि वह	किमु=किस वास्ते
कारणकार्यविहीनसमम्=कारण और कार्यसे रहित और सम है	रोदिषि=तुम रुदन करते हो
	मानस=हे मन !
	सर्वसमम्=वह सबमें सम है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह आत्मा वर्णविभागसे रहित है अर्थात् तिस आत्मामें तीनों कालमें वर्णविभाग नहीं है क्योंकि एक आत्मा सब योनियोंमें जाता है और पशु आदिक योनियोंमें तो पूर्व योनिवाला वर्णविभाग नहीं होता है इसीसे सिद्ध होता है कि, वर्णविभाग आत्माका धर्म नहीं है और विवर्ण अर्थात् विशेष करके जो कि वर्णजाति है वह भी नहीं है अथवा वर्ण नाम रूपका भी है अर्थात् रूपसे भी वह रहित है और आत्मा न किसीका कारण है न कार्य है इस वास्ते कारणकार्यसे भी रहित है और भेद तथा भेदाभावसे भी रहित है क्योंकि वह एक ही है तब फिर हे मन ! तिस आत्माके वास्ते तू क्यों रुदन करता है वह तो सर्वमें सम एकरस है ॥२०॥

सर्वनिरन्तरसर्वचिते
इह केवलनिश्चलसर्वचिते।
द्विपदादिविवर्जितसर्वचिते
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः।

सर्वनिरन्तरसर्वचिते, इह, केवलनिश्चलसर्वचिते, द्विपदादिविवर्जितसर्वचिते, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम्, ॥

पदार्थः ।

सर्वनिरन्तर-सर्वचित्ते =सर्वमें एकरस होकरके वह सबके चित्तोंमें रहता है

इह=इस संसारमें

केवलनिश्चलसर्वाचिते केवल निश्चल होकर सबमें रहता है

द्विपदादिविवर्जितसर्वचिते वह दो पांवआदिकोंसे भी रहित होकर सबमें रहता हैं

किमु=किसवास्ते

रोदिषि=तू रुदन करता है

मानस=हे मन !

सर्वसमम्=वह तो सबमें सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-हे जीव ! तू क्यों अपने मनमें रुदन करता है, वह तेरा आत्मा तो सर्वत्र सम है, सबमें एकरस है, संपूर्णमें व्यापक है, निश्चल है, अर्थात् अचल है, दो पांव या चार पांव आदिकोंसे भी वह रहित है सबके चित्तोंका वही साक्षी है ॥ २१ ॥

अतिसर्वनिरन्तरसर्वगतं अतिनिर्मलनिश्चलसर्वगतम् ।
दिनरात्रिविवर्जितसर्वगतं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥

पदच्छेदः ।

अतिसर्वनिरन्तरसर्वगतम्, अतिनिर्मलनिश्चलसर्वगतम्, दिनरात्रिविवर्जितसर्वगतम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

अतिसर्वनिरंतरसर्वगतं =वह चेतनअतिशय करके एकरस सर्वगत है

अतिनिर्मलनिश्चलसर्वगतम् =अति निर्मल है निश्चल है सर्वगत है

दिनरात्रिविवर्जितसर्वगतम् =दिन और रात्रिसे रहित हुआभी सर्वमें गत है व्यापक है

किमु=फिर किसवास्ते

मानस=हे मन !

रोदिषि=रुदन करता है

सर्वसमम्=यह सब सम हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–वह चेतन, सर्वश्रेष्ठ, नित्य, व्यापक, शुद्ध, क्रियारहित है, दिन, और रात्रिके व्यवहारोंसे भिन्न, आकाशके समान सर्वगत है। हे मन! तू ऐसे आत्माको न जानकर क्यों रोता है ॥ २२ ॥

न हि बन्धविबन्धसमागमनं न हि योगवियोगसमागमनम् । न हि तर्कवितर्कसमागमनं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥२३ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, बन्धविबन्धसमागमनम्, न, हि, योगवियोगसमागमनम्, न, हि, तर्कवितर्कसमागमनम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

बंधविबंधसमागमनम् = सामान्य और विशेष रूपसे भी बंधका सम्यक् आगमन आत्मामें
न हि = नहीं है
योगवियोगसमागमनम् = सयोग और वियोगकीभी प्राप्ति उसमें
न = नहीं होती है
तर्कवितर्कसमागमनम् = तर्कवितर्ककी भी उसमें प्राप्ति
न हि = नहीं है
किमु = किसवास्ते
रोदिषि = रुदन करता है
मानस = हे मन !
सर्वसमम् = वह सबमें सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–तू क्यों रुदन करता है वह आत्मा तो तुम्हारा सबमेंसे सम है और सामान्यविशेषबंधनोंसे भी वह रहित और जन्ममरणरूपी तो सामान्य बंध है और स्त्रीपुत्रादिक सब यह विशेष बंध हैं अर्थात बंधनके कारण हैं इन दोनोंसे आत्मा रहित है जिसवास्ते तिसके किसी प्रकारका भी बंध नहीं है इसीवास्ते वह सयोगसे भी रहित है और तर्कवितर्ककी भी उसमें गम्य नहीं अर्थात् वह तर्क करके भी नहीं जाना जाता है किन्तु केवल वेद शास्त्रसे ही वह जाना जाता है ॥ २३ ॥

इह कालविकालनिराकरणमणुमात्रकृशानुनिराकरणम् । न हि केवलसत्यनिराकरणं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ।

इह, कालविकालनिराकरणम्, अणुमात्रकृशानुनिराकरणम्, न, हि, केवलसत्यानिराकरणम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इह=ब्रह्मात्मामें
कालविकालनिराकरणम्=सामान्य कालका और विशेषकालका निराकरण है
अणुमात्रकृशानुनिराकरणम्=अणुमात्र भी अग्निका निराकरण है
केवलसत्यानिराकरणम्=केवल सत्यका निराकरण है
न हि=नहीं है
किमु=किसवास्ते
मानस=हे मन !
रोदिषि=रुदन करता है
सर्वसमम्=यह सब सम हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मतत्त्वमें काल और विकालका अर्थात् प्रवाहरूपी जो कि सामान्य काल है और घडी दिनरूपी जो विशेष काल है इनका निराकरण है अर्थात् आत्माको काल नहीं व्यापसकता है और सूक्ष्म जो तेज है, वह भी तिसको प्रकाश नहीं करसकता है क्योंकि वह जड फिर उसमें संपूर्ण जगत्का तो निराकरण है परंतु केवल सत्यका निराकरण नहीं है क्योंकि वह सत्यरूप आप हैं ॥ २४ ॥

इह देहविदेहविहीन इति ननु स्वप्नसुषुप्तिविहीनपरम् । अभिधानविधानविहीनपरं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ।

इह, देहविदेहविहीनः, इति, ननु, स्वप्नसुषुप्तिविहीन परम्, अभिधानविधानविहीनपरम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस ब्रह्ममें	अभिधानविधानविहीनपरम्=कथन और कथनके अभावसे भी रहित
देहविदेहविहीनः=देहसे और विदेहसे रहित होना	किमु=किसवास्ते
इति=इस प्रकारका व्यवहारभी नहीं	मानस=हे मन !
ननु=निश्चय करके	रोदिषि=रुदन करता है
स्वप्नसुषुप्तिविहीनपरम्=स्वप्न और सुषुप्तिसे भी परमरहितहै	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–जो कि यह पहले अज्ञानावस्थामें देहके सहित होता है वही पीछे ज्ञानावस्थामें देहसे रहित भी होता है सो निराकार व्यापक चेतनमें अज्ञान ही तीनों कालमें नहीं है तब सह विदेह होना कैसे बनता है किन्तु कदापि नहीं देहके अभावसे स्वप्न और सुषुप्तिके अर्थसे ही उसमें अभाव है तब फिर विधिनिषेधका भी अभाव है तब रुदन क्यों करतेहो ॥ २५ ॥

गगनोपमशुद्धविशालसममविसर्वविवर्जितसर्वस-
मम् । गतसारविसारविकारसमं किमु रोदिषि
मानस सर्वसमम् ॥ २६ ॥

पदच्छेदः ।

गगनोपमशुद्धविशालसमम्, अविसर्वविवर्जितसर्वसमम्, गतसारविसारविकारसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम्, ॥

पदार्थः ।

गगनोपमशुद्धविशालसमम् =वह आत्मा गगनकी उपमावाला है, शुद्ध है विशाल है, विस्तारवाला है, सर्वत्र सम है	गतसारविसारविकारसमम् =सार विसार और विकारसे रहित है और समभी है
अविसर्वविवर्जितसर्वसमम् =विशेषकरके सर्वसे रहित नहीं है किन्तु सर्वमें सम है	किमु=किस वास्ते
	मानस=हे मन !
	रोदिषि=तू रुदन करता है
	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–वह चेतन आत्मा गगनकी उपमावाला है और विशाल भी अर्थात् अतिविस्तारवाला और व्यापक भी है और एकरस सम है सम्पूर्ण मिथ्या प्रपञ्चसे भी रहित है फिर वह सार और सारके अभावसे और विकारसे भी रहित हैं तब फिर उसकी प्राप्तिके लिये जीवका रुदन करना भी व्यर्थ है ॥ २६ ॥

इह धर्मविधर्मविरागतरमिह वस्तुविवस्तुविरागतरम् । इह कामविकामविरागंतरं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २७ ॥

पदच्छेदः ।

इह, धर्मविधर्मविरागतरम्, इह, वस्तुविवस्तुविरागतरम्, इह, कामविकामविरागतरम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इस=इस संसारमें	इह=इस संसारमें
धर्मविधर्मविरागतरम् =सामान्य धर्म विशेष धर्मसें विरागका होना उत्तम है	वस्तुविवस्तुविरागतरम् सामान्यवस्तु और विशेषवस्तुसेभी वैराग्यका होना ही श्रेष्ठ है

इह=इस संसारमें	किमु=किसवास्ते
कामविकाम-विरागतरम् } =सामान्य इच्छा और विशेष इच्छासे भी वैराग्यका होना ही श्रेष्ठ है	मानस=हे मन !
	रोदिषि=रुदन करता है
	सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-इस संसारमें दो प्रकारके धर्म हैं, एक तो सामान्य धर्म है, जो कि चारो वर्णोंमें तुल्य हैं, दूसरे विशेष धर्म हैं, जो कि चारों वर्णोंमें पृथक् २ हैं इन दोनों प्रकारके धर्मोंसे वैराग्य ही श्रेष्ठ है, और संसारमें जितने सामान्य विशेष वस्तु हैं अर्थात् सामान्य और विशेष भोग हैं उनसे ज्ञानवान्को अतिवैराग्य ही होता है और सामान्य विशेषरूपसे जो पदार्थोंकी इच्छा है वह सब भी दुःखको ही उत्पन्न करनेवाली है उससे भी वैराम्य ही उत्तम है तब फिर हे अज्ञानजीव ! तू किसवास्ते रुदन करता है वैराग्यको क्यों नहीं प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

सुखदुःखविवर्जितसर्वसममिह शोकविशोकविहीनपरम् । गुरुशिष्यविवर्जितसत्त्वपरं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २८ ॥

पदच्छेदः ।

सुखदुःखविवर्जितसर्वसमम्, इह, शोकविशोकविहीनपरम्, गुरुशिष्यविवर्जिततत्त्वपरम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

सुखदुःखविवर्जितसर्वसमम् } =सुख और दुःखसे रहित वह आत्मा सबमें तुल्य है	गुरुशिष्यविवर्जिततत्त्वपरम् } =गुरु और शिष्य व्यवहारसे वर्जित परमतत्त्व है
इह=इस आत्मामें	किमु=किस वास्ते
शोकविशोकविहीनपरम् } =सामान्य विशेषरूपसे शोक भी नहीं रहता है	रोदिषि=रुदन करता है
	मानस=हे मन !
	सर्वसमम्=वह सबमें सम है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-आत्मा सुख और दुःख दोनोंसे रहित है शोक और मोहसे विहीन है गुरु और शिष्यभावसे हीन है, केवल तत्त्वज्ञान स्वरूप है ॥२८॥

न किलांकुरसारविसार इति
न चलाचलसाम्यविसाम्यमिति।
अविचारविचारविहीनमिति
किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ २९ ॥

पदच्छेदः।

न, किल, अंकुरसारविसारः, इति, न, चलाचलसाम्यविसाम्यम्, इति, अविचारविचारविहीनम्, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः।

किल=निश्चयकरके
अंकुरसारविसारः=अंकुरका सार और विगतसार
इति=इस प्रकारका व्यवहार उसमें
न=नहीं होता है
चलाचलसाम्यविसाम्यम्=चल अचल और समता तथा विषमता
इति= इस प्रकारका भी
न=व्यवहार उसमें नहीं होता है
अविचारविचारविहीनम्=विचारका अभाव और विचारसे भी रहित होना
इति=इस प्रकारका भी
न=व्यवहार उसमें नहीं है
किमु=फिर तू किसवास्ते
रोदिषि=रुदन करता है
मानस=हे मन !
सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-दो प्रकारके कर्म होते हैं एक सारसे सहित दूसरे सारसे रहित, जो कि जन्मके हेतु कर्म हैं अज्ञानी जीवोंके वह सारके सहित होते हैं दूसरे ज्ञानवानके जो कि कर्म हैं वह सारसे रहित होनेसे जन्मका

हेतु नहीं है सो यह दोनों प्रकारके आत्मामें नहीं है, फिर जिस वास्ते आत्मा व्यापक है इसीवास्ते चल अचलसे भी वह रहित है और उसका मन भी जिस वास्ते नहीं है इसी वास्ते विचार और विचारके अभावसे भी वह रहित है फिर तू क्यों रुदन करता है ॥ २९ ॥

इह सारसमुच्चयसारमिति कथितं निजभावविभेद इति । विषये करणत्वमसत्यमिति किमु रोदिषि मानस सर्वसमम् ॥ ३० ॥

पदच्छेदः ।

इह, सारसमुच्चयसारम्, इति, कथितम्, निजभावविभेदः, इति, विषये, करणत्वम्, असत्यम्, इति, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस आत्मामें
सारसमुच्चय-सारम्=सम्पूर्ण सारोंका भी सार है
इति=इस प्रकार
कथितम्=कथन किया है
निजभाव-विभेदः=अपने प्रेमसे ही विशेष कहा गया है
इति=इस प्रकार
विषये=पार्थिव विषयमें
करणत्वम्=जो कुछेक करना कथन किया है
असत्यम्=वह असत्य ही कथन किया जाता है
इति=इस प्रकार
किमु=किस वास्ते
मानस=हे मन !
रोदिषि=रुदन करते हो
सर्वसमम्=यह सब सम है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मामें सारोंका भी सार है यह अपने भावका ही उत्तर अंश है यदि विद्वान् सत्य विचार करने लगता है तो उपनिषद् आदि आत्मशास्त्रों करके उसका ऐसा संस्कार हो जाता है कि उसको सिद्धान्त ही मालूम पडने लगता है विषयवासना झूठी प्रतीत होती है जब यह दशा है तो तुम क्यों रोते हो ॥ ३० ॥

**बहुधा श्रुतयः प्रवदन्ति यतो वियदादिरिदं मृगतो-
यसमम् । यदि चैकनिरन्तरसर्वसमं किमु रोदिषि
मानस सर्वसमम् ॥ ३१ ॥**

पदच्छेदः ।

बहुधा, श्रुतयः, प्रवदन्ति, यतः, वियदादिः, इदम्, मृगतोयसमम्, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वसमम्, किमु, रोदिषि, मानस, सर्वसमम् ॥

पदार्थः ।

बहुधा=अनेक	यदि च=यदि च
श्रुतयः=श्रुतियां	एकनिरन्तर- सर्वसमम् } =एक चेतन ही एकरस सर्वमें सम है
प्रवदन्ति=कथन करती हैं	किमु=किसवास्ते
यतः=जिस हेतुसे	मानस=हे मन !
इदम्=यह	रोदिषि=रुदन करता है
वियदादिः=आकाशादि प्रपञ्च सब	सर्वसमम्=यह सब सम है
मृगतोय- समम् } मृगतृष्णाके जलके तुल्य है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--अनेक श्रुतियाँ इस वार्ताको कथन करती हैं जितना कि आकाशादिक यह प्रपंच हैं सो यह सब मृगतृष्णाके तुल्य मिथ्या है अर्थात् अत्यन्त असत्य है और एकचेतन ही सर्वत्र सम है नित्य है तब फिर तुम किसवास्ते रुदन करतेहो ? रुदन करना तुम्हारा व्यर्थ है ॥३१॥

**विन्दति विन्दति नहि नहि यत्र
च्छन्दो लक्षणं नहि नहि तत्र ।**

समरसमग्नो भावितपूतः
प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः ॥ ३२ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायां स्वामिकार्तिकसंवादे आत्मसंवित्त्युपदेशे समदृष्टिकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

विन्दति, विन्दति, नहि, नहि, यत्र, छन्दः,लक्षणम्, नहि नहि, तत्र, समरसमग्नः, भावितपूतः, प्रलपति, तत्त्वम्, परम्, अवधूतः ॥

पदार्थः ।

परम्=श्रेष्ठ उत्तम
अवधूतः=अवधूत
यत्र=जिस ब्रह्ममें
विंदति=कुछ लभता है
विंदति=लभता है
नहि नहि=नहीं लभता है २
छन्दः=छन्द
लक्षणम्=लक्षण
नहि नहि=नहीं लभता है२क्योंकि वह
तत्र=तिस ब्रह्ममें
समरसमग्नः=एकरस ही मग्न रहता है
भावितपूतः=अन्तःकरणसे वह पवित्र
तत्त्वम्=आत्मतत्त्वका ही
प्रलपति=कथन करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं- जो कि शुद्ध अन्तःकरणवाला अवधूत है वह उस व्यापक चेतनमें क्या किसी वस्तुको प्राप्त करता है ? सो यह वार्ता नहीं है और छन्दरूपी कविताको भी नहीं प्राप्त करता है किन्तु केवल आत्मतत्त्वकोही कथन करता है ॥ ३२ ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचितपरमानन्दीभाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अवधूत उवाच ।

बहुधा श्रुतयः प्रवदन्ति वयं
वियदादिरिदं मृगतोयसमम् ।
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिव-
मुपमेयमथो ह्युपमा च कथम् ॥ १ ॥

बहुधा, श्रुतयः, प्रवदन्ति, वयम्, वियदादिः, इदम्, मृगतोयसमम्, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, उपमेयम्, अथो, हि, उपमा, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

बहुधा=अनेक
श्रुतयः=श्रुतियें
प्रवदन्ति=कथन करती हैं
वयम्=हम
इदम्=यह जितना
वियदादिः=आकाशादि प्रपंच है सो
मृगतोयसमम्=मृगतृष्णाकेसमानहै
यदि च=यदि

एकनिरन्तर- सर्वशिवम् } =वह चतन एक ही निरन्तर सर्व-कल्याणरूप है
अथो=अनन्तर
उपमेयम्=यह उपमेय है
हि च=निश्चय करके और
उपमा=उपमा है
कथम्=किस प्रकार यह होसकता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वेदकी अनेक ऋचायें स्वयं कहती हैं कि, यह आकाश, वायु, आदि मृगतृष्णाके समान है जब कि एक, अविनाशी सर्वगत, कल्याणस्वरूपही है तो किसकी उपमा दीजाय और किसको दीजाय ॥ १ ॥

अविभक्तिविभक्तिविहीनपरं ननु कार्यविकायवि-हीनपरम् । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं यजनं च कथं तपनं च कथम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः ।

अविभक्तिविभक्तिविहीनपरम्, ननु, कार्यविकार्यविहीन-परम्, यदि, च, एकानिरन्तरसर्वशिवम्, यजनम्, च, कथम्, तपनम् च, कथम् ॥

पदार्थः ।

अविभक्तिविभक्तिविहीनपरम् =विशेषकरके विभाग और विभागाभावसे रहित है
ननु=निश्चयकरके
कार्यविकार्यविहीनपरम् कार्य और कार्यके अभावसे भी यह रहित है
यदि च=जब कि वह
एकानिरन्तरसर्वशिवम् =एकरस सर्वमें कल्याणरूप है
यजनम्=पूजन
कथम्=किस प्रकार होसकता है
तपनं च=और तप करना
कथम्=कैसे होसकता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस चेतन आत्मामें विभाग और अविभाग और कार्य तथा कार्याभाव यह सब नहीं है, क्योंकि वह एकरस सर्वमें व्यापक और कल्याणस्वरूप है तब फिर उसमें पूजन करना और तपस्या करना यह सब कैसे बनसकता है ? किन्तु कदापि नहीं बन सकता है ॥२॥

मन एव निरन्तरसर्वगतं ह्यविशालविशालविही-नपरम् । मन एव निरन्तरसर्वशिवं मनसापि कथं वचसा च कथम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

मनः, एव, निरन्तरसर्वगतम्, हि, अविशालविशालविही-

नपरम्, मनः, एव, निरन्तरसर्वशिवम्, मनसा, अपि, कथम्, वचसा, च, कथम् ॥

पदार्थः।

एव=निश्चयकरके
मनः=मन ही
निरन्तर-सर्वगतम् =निरन्तर सर्वगत है
हि=निश्चयकरके
अविशालविशालविहीनपरम् =विस्तारके अभाव और विस्तारसे रहित है

मन एव=मन ही
निरन्तरसर्वशिवम् =निरन्तर सर्वरूप कल्याणरूप है
मनसा=मन करके
अपि=निश्चय करके
कथम्=कैसे जाना जाय
वचसा च=और वाणी करके
कथम्=कैसे कहा जाय

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--मनका ही रचाहुआ यह संसार है इसी वास्ते मन ही सर्वगत है और विस्तार और विस्तारके अभाववाला भी मनही है और मन ही एकरस कल्याणरूप भी है, क्योंकि मनके शान्त होजानेसे यह जगत् भी सब शान्त ही हो जाता है वह ब्रह्म चेतन मन करके कैसे जाना जाय और वाणी करके कैसे कहा जाय, क्योंकि वह मन वाणीका विषय नहीं है ॥ ३ ॥

दिनरात्रिविभेदनिराकरणमुदितानुदितस्य निराकरणम्। यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं रविचन्द्रमसौ ज्वलनश्च कथम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः।

दिनरात्रिविभेदनिराकरणम्, उदितानुदितस्य, निराकरणम्, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, रविचन्द्रमसौ, ज्वलनः, च, कथम्

पदार्थः ।

दिनरात्रिविभेदनिराकरणम् =दिन और रात्रिके भेदका निराकरण	यदि च=यदि च
उदितानुदितस्यनिराकरणम् =उदित और अनुदित का निराकरण करना	एकनिरन्तरसर्वशिवम् एक निरन्तर सर्वत्र कल्याणरूप है
	रविचन्द्रमसौ च=सूर्य चन्द्रमाऔर
	ज्वलनः=अग्नि
	कथम्=यह कैसे सिद्ध हो सकते हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--उस चेतनमें दिन और रात्रिका भेद भी नहीं है, जब कि दिन और रात्रिही उसमें नहीं है तब दिन और रात्रिका भेद कैसे हो सकता है और दिन रात्रि सूर्यादिकके उदय होनेसे और अनुदय होनेसे होते हैं, सो उदयअनुदयभी उसमें नहीं हैं, क्योंकि यदि एक चेतन सर्वत्रकल्याण-स्वरूप विद्यमान है तब सूर्य चन्द्रमा और अग्निभी उसमें सिद्ध नहीं होते हैं ॥४॥

गतकामविकामविभेद इति गतचेष्टविचेष्टविभेद इति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं बहिरन्तरभिन्न-मतिश्च कथम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः ।

गतकामविकामविभेदः, इति, गतचेष्टविचेष्टविभेदः, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, बहिः, अन्तरभिन्नमतिः, च, कथम्,

पदार्थः ।

गतकामविकामविभेदः अच्छा और इच्छाके अभावका भी भेद	यदि च=यदि च वह
इति=इस प्रकारका व्यवहार भी उसमें नहीं है	एकनिरन्तरसर्वशिवम् =एक निरन्तर सर्वगत है कल्याणरूपहै
गतचेष्टाविचेष्टाविभेदः =चेष्टाऔर चेष्टाके अभावकाभी भेद	बहिरंतरभिन्नमतिः =तब फिर वह बाहर भीतर भिन्न है ऐसी
इति=ऐसा भी नहीं है	च =बुद्धि और
	कथम्=कैसे बन सकती है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं- जब कि सकामता और निष्कामताका भेद उसमें नहीं है और चेष्टा तथा चेष्टाके अभावकाभी भेद उसमें नहीं है क्योंकि वह एकरस कल्याणरूप व्यापक है तब फिर बाहर और भीतर भी नहीं उसमें बनता है क्योंकि वह आनन्दघन है ॥ ५ ॥

यदि सारविसारविहीन इति
यदि शून्यविशून्यविहीन इति ।
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं
प्रथमं च कथं चरमं च कथम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

यदि, साराविसारविहीनः, इति, यदि, शून्याविशून्यविहीनः, इति, यदि, च, एकानिरन्तरसर्वशिवम्, प्रथमम्, च, कथम्, चरमम्, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

यदि=यदि वह ब्रह्म
साराविसारविहीनः=सार और विसार वस्तुसे रहित है
इति=इस प्रकार वेद कहता है
यदि=वह चेतन
शून्याविशून्यविहीनः=शून्यसे और शून्यके अभावसे भी रहित है
इति=इस प्रकार शास्त्र कहता है
एकनिरन्तरसर्वशिवम्=किन्तु वह एक ही निरन्तर सर्वरूप है कल्याणरूप है
प्रथमम्=तब फिर आदि
कथम्=उसमें कैसे
च=और
चरमम्=अन्त उसमें
कथम्=कैसे हो सकते हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-जब कि वह चेतन ब्रह्म यह सार है यह असार है इस व्यवहारसे रहित है और शून्य तथा शून्यके अभावके व्यवहरसेभी रहित

इस प्रकार वेद और शास्त्र पुकारकरके कहता है, किन्तु वह एक है, एक-रस है कल्याणरूप है जबकि वह ऐसा है तब फिर उसमें यह प्रथम है अर्थात् आदि है यह चरम है अर्थात् अन्त है यह व्यवहार कैसे होसकता है किन्तु कदापि भी नहीं ॥ ६ ॥

यदि भेदविभेदनिराकरणं
यदि वेदकवेद्यनिराकरणम् ।
यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं
तृतीयं च कथं तुरीयं च कथम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

यदि, भेदविभेदनिराकरणम्, यदि, वेदकवेद्यनिराकरणम्, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, तृतीयम्, च, कथम्,तुरीयम्, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

यदि=जब कि वह चेतन
भेदविभेदनिराकरणम् =सामान्य विशेष भेदसे रहित
यदि=जब कि वह
वेदकवेद्यनिराकरणम् =ज्ञाता ज्ञेयके व्यवहारसे भी रहित
यदि च=यदि च
एकनिरन्तरसर्वशिवम् =वह एक है एकरस सर्वत्र पूर्ण और कल्याण रूप है तब
तृतीयं च=तीसरा
कथम्=कैसे और
तुरीयं च=चतुर्थ
कथम्=कैसे

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--यदि उस चेतन आत्मामें किसी प्रकारका भी भेद नहीं बनता है और ज्ञाता ज्ञेयका व्यवहार भी उसमें नहीं बनता है, क्योंकि वह द्वैतसे रहित एकही सर्वत्र एकरस पूर्ण है तब फिर उसमें तृतीय अवस्था और चतुर्थ अवस्था कैसे बनती है किन्तु कदापि नहीं बनती है ॥ ७ ॥

गदितागदितं न हि सत्यमिति विदिताविदितं न हि सत्यमिति। यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं विषयेन्द्रियबुद्धिमनांसि कथम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः।

गदितागदितम्, न, हि, सत्यम्, इति, विदिताविदितम्, नहि, सत्यम्, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, विषयेन्द्रियबुद्धिमनांसि, कथम् ॥

पदार्थः।

गदितागदितम् =कथन किया और कथन न किया दोनों

सत्यम्=सद्रूप

न हि=नहीं है

इति=इस प्रकार कहा है

विदिताविदितम् =विदित्त और अविदित भी

सत्यम्=सत्य

न हि=नहीं है

यदि च=यदि च वह चेतन

एकनिरन्तरसर्वशिवम् =निरन्तरसवमें एक है कल्याणरूपहै तव

विषयेन्द्रियबुद्धिमनांसि यह विषयहै. इंद्रिय है, बुद्धि है मन है यह सव

कथम्=किस प्रकार होसकते हैं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--जो गदितागदित है अर्थात् कथन कियागया है और कथन किया जाता है इस प्रकारका व्यवहार भी सत्य नहीं है और जो कि ज्ञात हुआ है और ज्ञात नहीं ऐसा व्यवहार भी सत्य नहीं है क्योंकि, वह चेतन एकहै एकमें इस तरहका व्यवहार नहीं वनता है और फिर विषय इन्द्रिय तथा बुद्धि और मन उसमें कैसे बनसकते हैं किन्तु किसी तरहसे भी नहीं बन सकते हैं ॥ ८ ॥

गगनं पवनो न हि सत्यमिति धरणी दहनो नहि सत्यमिति। यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं जलदश्च कथं सलिलं च कथम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः ।

गगनम्, पवनः, न, हि, सत्यम्, इति, धरणी, दहनः,न, हि, सत्यम्, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, जलदः, च, कथम्, सलिलम्, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

गगनम्=आकाश और
पवनः=वायु यह दोनों
सत्यम्=सत्य
न हि=नहीं है
इति=इसी प्रकार
धरणी=पृथिवी
दहनः=अग्नि यह भी
सत्यम्=सत्य
न हि=नहीं है
इति=इसी तरह
यदि च=यदि वह
एकनिरन्तर-सर्वशिवम्=एकही निरन्तर सर्व व्यापक कल्याणरूप है तब फिर
च=और
जलदः=बादल
कथम्=किस प्रकार
च= और
सलिलम्=जल
कथम्=किस प्रकार सत्य होसकता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--आकाश, वायु, पृथिवी, अग्नि यह जो संसारमें कहे जाते हैं यह कुछ नहीं हैं, जब एक अविनाशी सदा कल्याणरूप ब्रह्म ही है तो मेघ कहां और जल कहां ॥ ९ ॥

यदि कल्पितलोकनिराकरणं यदि कल्पितदेवनिराकरणम् । यदि चैकनिन्तरसर्वशिवं गुणदोषविचारमतिश्च कथम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

यदि, कल्पितलोकनिराकरणम्, यदि, कल्पितदेवनिराकरणम्, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, गुणदोषविचारमतिः, च, कथम् ॥

पदार्थः।

यदि=जब कि उसमें	यदि च=जब कि वह चेतन
काल्पतलोक-निराकरणम् =कल्पित लोकका वेदवाक्योंकरके दूरी करण होता है	एकनिरन्त-रसर्वशिवम् =एक है निरन्तर सर्वमें व्यापक कल्याणरूप है
यदि=फिर जब कि	च=तब फिर और
कल्पितदेवनि-राकरणम् =कल्पित देवताका भी उसमें दूरीकरण होता है	गुणदोषवि-चारमतिः =गुण और दोषोंके विचारकी बुद्धि
	कथम्=कैसे होसकती है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो कि पृथिवी, स्वर्ग, पाताल आदि लोकोंका निषेध है अर्थात् व्यवहारदशामें यह लोक माने गये हैं परमार्थमें कुछ नहीं, जब कि इन्द्र, वरुण, कुवेर आदिक देवता कल्पनामात्रके हैं और जब कि एक, नित्य कल्याणस्वरूप ब्रह्म ही है तो इसमें ये दोष हैं इसके विचारकी बुद्धि ही नहीं होसकती है॥ १०॥

मरणामरणं हि निराकरणं करणाकरणं हि निराकरणम् । यदि चैकनिरंतरसर्वशिवं गमनागमनं हि कथं वदति ॥ ११ ॥

पदच्छेदः।

मरणामरणम्, हि, निराकरणम्, करणाकरणम्, हि, निराकरणम्, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, गमनागगनम्, हि, कथम्, वदति॥

पदार्थः।

हि=निश्चय करके	निराकरणम्=दूरी करण है
मरणामरणम्=मरण अमरणका उसमें भी	करणाकरणम्=करण अकरणकाभी
	हि=निश्चयकरके

निराकरणम्=उसमें दूरीकरण है
यदि च=जब कि
एकनिरन्तर-सर्वशिवम् } =वह एक है और सर्वत्र पूर्ण है कल्याणरूप है तव
गगनागमनम्=गमन अगमन भी
हि=निश्चयकरके
कथम्=किस प्रकार
वदति=कथन करना बनता है किन्तु नहीं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जब कि उस आत्माके जन्ममरण नहीं होते और उसका कुछ कर्त्तव्यभी नहीं और अकर्तव्य भी नहीं है जब कि वह अद्वितीय, नित्य,सर्वव्यापक शिव है तव उसके जन्म मृत्यु किस प्रकार होसकते हैं ॥११॥

प्रकृतिः पुरुषो न हि भेद इति न हि कारणकार्यविभेद इति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं पुरुषापुरुषं च कथं वदति ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

प्रकृतिः,पुरुषः, न, हि, भेदः, इति, न, हि, कारणकार्यविभेदः, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, पुरुषापुरुषम्, च, कथम्, वदति ॥

पदार्थः ।

प्रकृतिः=प्रकृति है
पुरुषः=पुरुष है
इति=इस प्रकारका
भेदः=वास्तव भेद भी
न हि=नहीं है और
कारणकार्यविभेदः } =कारण कार्यका भेदभी
इति=इस तरहका
न हि=नहीं है
यदि च=जब कि वह
एकनिरन्तर-सर्वशिवम् } =एकही एकरस सर्वरूप कल्याण स्वरूप है तव फिर
पुरुषापुरुषम् } =यह पुरुष है यह पुरुष नहीं
च=और
कथम्=किस प्रकार
वदति=कथन करता

दत्तात्रेयजी कहते हैं-प्रकृति और पुरुषमें कुछ भेद नहीं क्योंकि कारण और कार्यका कुछ भी भेद नहीं होता जब कि एक, नित्य, व्यापक, कल्याणस्वरूप ब्रह्म ही है तो पुरुष और प्रकृतिका भेद क्यों कहते हो ॥ १२ ॥

तृतीयं न हि दुःखसमागमनं न गुणाद्वितीयस्य समागमनम्। यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं स्थविरश्च युवा च शिशुश्च कथम् ॥ १३ ॥

पदच्छेदः।

तृतीयम्, न, हि, दुःखसमागमनम्, न, गुणात्, द्वितीयस्य, समागमनम्, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, स्थविरः, च, युवा, च, शिशुः, च, कथम् ॥

पदार्थः।

तृतीयम्=तीसरा
दुःखसमागमनम्=दुःखका सम्यक् आगमनभी
न हि=नहीं है
गुणात्=गुण
द्वितीयस्य=दूसरेका
समागमनम्=समागम
न=नहीं है
यदि च=यदि च
एकनिरन्तरसर्वशिवम्=सर्वरूप और कल्याणरूप एकही निरन्तर है
स्थविरः च=बुढापा कैसे
युवा च=और युवा और
शिशुश्च=शिशु अवस्था
कथम्=किस प्रकार

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-तीसरा और कोई भी दुःख नहीं है और अन्य दुःखका अच्छी तरहका आगमन भी होता नहीं है, एक गुणसे दूसरेका समागम नहीं होता है और यदि सर्व प्रपञ्चरूप कल्पनारूप और निरन्तर है और जिसकी बाल्यावस्था, तारुण्यावस्था, वृद्धावस्था भी नहीं होती है ऐसा ब्रह्मस्वरूप मैं हूँ ॥ १३ ॥

ननु आश्रमवर्णविहीनपरं ननु कारणकर्तृविहीन-
परम् । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवमविनष्टविनष्ट-
मतिश्च कथम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः ।

ननु, आश्रवर्णविहीनपरम्, ननु, कारणकर्तृविहीन-
परम्, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, अविनष्टविनष्टमतिः,
च, कथम् ॥

पदार्थः ।

ननु=निश्चयकरके	यदि च=यदि च
आश्रमवर्ण-विहीनपरम् =आश्रम और वर्णसे रहित परम श्रेष्ठ है	एकनिरन्तर-सर्वशिवम् =वह एक है सर्व-रूप कल्याणरूपभी है तव
ननु=निश्चयकरके	अविनष्टवि-नष्टमतिः च =नाशसे रहित और नाशवाली बुद्धि
कारणकर्तृ-विहीनपरम् =कारणकर्तृसे भी रहित है	कथम्=कैसे है

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्माका कोई आश्रम या वर्ण नहीं है तथा कारण और कर्त्ताका भावभी नहीं है। जब कि आत्मा एक, नित्य, सर्वव्यापक और कल्याणस्वरूप हैं तो नाश न होनेवाली या नाश होनेवाली बुद्धि उसके विषयमें किस प्रकारसे हो सकती है ॥ १४ ॥

ग्रसिताग्रसितं च वितथ्यमिति जनिताजनितं च
वितथ्यमिति। यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवमविना-
शिविनाशि कथं हि भवेत् १५ ॥

पदच्छेदः ।

ग्रसिताग्रसितम्, च, वितथ्यम्, इति, जनिताजनितम्,

च, वितथ्यम्, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, अविनाशिविनाशि, कथम्, हि, भवेत् ॥

पदार्थः ।

आसिता-आसितं च = ग्रसनेवाला और ग्रसा हुआ दोनों	इति=इस प्रकार
वितथ्यम्=मिथ्या है	यदि च=यदि च
इति=इसी प्रकार	एकनिरन्तरसर्वशिवम् =एक चेतन ... सर्व रूप कल्याणरूप है
जनिताजनितम् च =उत्पन्न करनेवाला और उत्पन्न हुआ	अविनाशिविनाशि =नाशसेरहित नाशवाला
वितथ्यम्=यहभी मिथ्या है	कथं भवेत्=कैसे होसकता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जब कि वह चेतन ब्रह्म एक ही निरन्तर सर्वरूप और कल्याणरूप है तब फिर यह ग्रसनेवाला है और यह ग्रसाजाता है यह व्यवहार नहीं बनता है और इसी तरह यह उत्पन्न करनेवाला है, यह उत्पन्न होता हैं यह विनाशी है यह नाशसे रहित है, यह संपूर्ण व्यवहार मिथ्या ही सिद्ध होते हैं ॥ १५ ॥

पुरुषापुरुषस्य विनष्टमिति वनितावनितस्य विनष्टमिति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवमविनोदविनोदमतिश्च कथम् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः ।

पुरुषापुरुषस्य, विनष्टम्, इति, वनितावनितस्य, विनष्टम्, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, अविनोदविनोदमतिः, च, कथम्, ॥

पदार्थः ।

पुरुषापुपुरुषस्य =पुरुष और अपरुषका व्यवहार	अविनोदाविनोदमतिः =शोक और हर्ष बुद्धि उसमें
विनष्टम्=उसमें नष्ट है	कथम्=कैसे होसकता है
इति=इसी प्रकार	यदि च=यदि च
वनितावनितस्य =स्त्री और नपुंसक व्यवहार भी	एकनिरन्तर सर्वशिवम् =वह चेतन एक है निरन्तर कल्याणस्वरूप है
विनष्टम्=विनष्ट है	
इति=इसी प्रकार	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मामें मनुष्य और मनुष्यका अभाव होना स्त्री होना या स्त्री न होना यह व्यवहार नहीं होसकता जब कि नित्य सर्व व्यापक, कल्याणस्वरूप ब्रह्म एक है तो क्रीडा न करना या क्रीडा करनेकी बुद्धि किस प्रकार होसकती है ॥ १६ ॥

यदि मोहविषादविहीनपरो यदि संशयशोकविहीनपरः । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवमहमेति ममेति कथं च पुनः ॥ १७ ॥

पदच्छेदः ।

यदि, मोहविषादविहीनपरः, यदि, संशयशोकविहीनपरः, यदि च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, अहम्, आ, इति, मम, इति कथम्, च, पुनः ॥

पदार्थः ।

यदि=जब कि वह चेतन	यदि=जब कि वह
मोहविषादविहीनपरः =मोहऔरविषादसे रहित और श्रेष्ठ है और	संशयशोकविहीनपरः =संशय और शोकसे रहित है
	यदि च=जब कि वह

एकनिरन्तर- सर्वशिवम् } =एकही निरन्तर सर्वरूप कल्याणस्वरूप भी है तब फिर

अहम्=मैं हूँ

आ=सब तरफसे

इति=इस प्रकार

मम इति=मेरा है इस प्रकार

कथं च पुनः=फिर कैसे व्यवहार है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जब कि ब्रह्म अज्ञान और कष्टसे रहित है, और सन्देह तथा शोकसे रहित है, सबसे परे है, और एक है, नित्य है, सर्व व्यापक है तो मैं और मेरी ऐसी बुद्धि किस प्रकार होसकती है ॥ १७॥

ननु धर्मविधर्मविनाश इति ननु बन्धविबन्धविनाश इति। यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवमिह दुःखविदुःखमतिश्च कथम् ॥ १८ ॥

पदच्छेदः।

ननु धर्मविधर्मविनाशः, इति, ननु, बन्धविबन्धविनाशः, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, इह, दुःखविदुःखमतिः, च, कथम् ॥

पदार्थः।

धर्मविधर्म- विनाशः } =धर्म और विरुद्ध धर्म दोनोंका नाश

इति=इस प्रकारका व्यवहार और

बन्धविबन्ध- विनाशः } =सामान्य विशेष बन्धका नाश

इति=ऐसा व्यवहार

यदि च=यदि च

एकनिरन्त- रसर्वशिवम् } =वह एक निरन्तर सर्व रूप कल्याणस्वरूप है

च= और तब

इह=चेतनमें

दुःखवि- दुःखमतिः } =दुःख और विदु ख- मति

कथम्=कैसे बनसकती है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-जब कि आत्मामें सामान्य तथा विशेष धर्मका नाश है, और साधारण तथा असाधारण बन्धका अभाव है अर्थात् धर्म हो या अधर्म, दोनोंही संसारमें बन्धन करनेवाले हैं, यदि वेदादिविहित कर्म करके धर्मका सञ्चय किया जायगा तो उसका फल स्वर्गमें नानाप्रकारका सुखभोग होगा और यदि पापकर्म किये जावेंगे तो नरक, रोग, शोक आदि त्रिविध तापोंके वशमें होकर क्लेश सहने पडेंगे इससे ज्ञानी पुरुषकी दृष्टिमें "शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्" के अनुसार आत्मा सदा निष्क्रिय, निर्गुण है देहसे गुणोंके अनुसार जो कर्म होते हैं उनका आत्मासे कुछ सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि आत्मा एक नित्य, सर्वव्यापक, कल्याणस्वरूप है, इसलिये आत्मामें दुःखी सुखीकी बुद्धि किसीप्रकार नहीं होसकती ॥ १८॥

न हि याज्ञिकयज्ञविभाग इति न हुताशनवस्तु-विभाग इति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं वद कर्मफलानि भवन्ति कथम् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, याज्ञिकयज्ञविभागः, इति, न, हुताशनवस्तुविभागः, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, वद, कर्मफलानि, भवन्ति, कथम् ॥

पदार्थः ।

याज्ञिकयज्ञ-विभागः =यज्ञमें होनेवाले कार्यका यज्ञके साथ विभाग
इति न=भिन्न २ नहीं है
हुताशनवस्तु-विभागः =अग्नि और चरुकाभी विभाग
इति न=भिन्नताकरके नहीं है
यदि च=यदि च
एकनिरन्तर-सर्वशिवम् =वह एक निरन्तर सर्वरूप कल्याण-रूप सत्य है तब फिर
कर्मफलानि=कर्मोंके फल
वद=कहो
कथम्=किस प्रकार
भवन्ति=होते हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यदि च यज्ञमें होनेवाले कर्मका यज्ञके साथ विभाग नहीं है और अग्निमें हवन करी हुई वस्तुका अग्निके साथ भी विभाग नहीं रहता है । इसी तरह एक निरन्तर सर्वरूप कल्याणस्वरूप चेतनका भी किसीके साथ विभाग नहीं है क्योंकि चेतनमें सर्ववस्तु कल्पित हैं तव फिर कर्म और कर्मके फलोंका भी विभाग कैसे होसकता है किन्तु कदापि नहीं होसकता है ॥१९॥

ननु शोकविशोकविमुक्त इति ननु दर्पविदर्पविमुक्त इति । यदि चैकनिरन्तरसर्वशिवं ननु रागविरागमतिश्च कथम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः ।

ननु, शोकविशोकविमुक्तः, इति, ननु, दर्पविदर्पविमुक्तः, इति, यदि, च, एकानिरन्तरसर्वाशिवम्, ननु, रागाविरागमतिः, च, कथम् ॥

पदार्थः ।

ननु=निश्चयकरके वह	यदि च=जब कि वह
शोकविशोकविमुक्तः=शोक और विशोकसे रहित है	एकानिरन्तरसर्वशिवम्=एक सर्वरूप और शिवरूप निरन्तर है
इति=इस प्रकार	ननु=निश्चय करके
ननु=निश्चयकरके	रागविरागमतिः=राग विरागवाली बुद्धि फिर
दर्पविदर्पविमुक्तः=दर्पविदर्पसे भी वह रहित है	च=और
इति=इस प्रकार	कथम्=किसप्रकार होसकती है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह चेतन आत्मा साधारण शोकसे और असाधारण शोकसे भी रहित है इसीप्रकार साधारण अहंकारसे और असाधारण अहं-

कारसे भी वह रहित है; अपनी जातिको कष्ट होनेसे जो शोक है, वह साधारण शोक है और अपने स्त्री आदिकोंको कष्ट होनेसे जो शोक है वह असाधारण शोक है और इसी प्रकार अहंकार भी दो तरहका है एक जो जातिका अहंकार कि, हमारी जाति ही उत्तम है सो यह साधारण है, दूसरा धनसम्बन्धियोंका असाधारण अहंकार है जो हम ही धनी और सम्बन्धियोंवाले हैं। इस तरहके शोक और दर्पसे यदि वह रहित है और एक ही सर्वरूप कल्याणस्वरूप है तब फिर किसीमें राग और किसीमें विराग यह बुद्धि कैसे होसकती है किन्तु कदापि नहीं ॥ २० ॥

न हि मोहविमोहविकार इति न हि लोभविलोभविकार इति। यदि चैकनिन्तरसर्वशिवं ह्यविवेकविवेकमतिश्च कथम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः।

न, हि, मोहविमोहविकारः, इति, न, हि, लोभविलोविकारः, इति, यदि, च, एकनिरन्तरसर्वशिवम्, हि, अविवेकविवेकमतिः, च, कथम् ॥

पदार्थः।

मोहविमोहविकारः = मोह विमोहका विकार	यदि च = यदि च
न हि = उसमें नहीं है	एकनिरन्तरसर्वशिवम् = एक, निरंतर सर्वरूप, कल्याणरूप है
इति = इसी प्रकार	हि = निश्चय करके
लोभविलोभविकारः = लोभ विलोभका विकार	अविवेकाविवेकमातिः = विवेकसे रहित और विवेकवाला
न हि = नहीं है	च = और
इति = इसी प्रकार	कथम् = कैसे है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—ब्रह्ममें साधारण तथा विशेष अज्ञान नहीं है और

अज्ञानका किसी प्रकारका विकार भी नहीं है इसी प्रकार साधारण तथा विशेष लोभ तथा उसको विकार भी नहीं है। जब कि एक, नित्य सर्वव्यापक कल्याणरूप ब्रह्म है तो अविचार और विचार यह बुद्धि किस प्रकार हो सकती है ॥ २१ ॥

त्वमहं न हि हन्त कदाचिदपि कुलजातिविचारमसत्यमिति। अहमेव शिवः परमार्थ इति अभिवादनमत्र करोमि कथम् ॥ २२ ॥

पदच्छेदः।

त्वम्, अहम्, न, हि, हन्त, कदाचित्, अपि, कुलजातिविचारम्, असत्यम् इति, अहम्, एव, शिवः, परमार्थः, इति, अभिवादनम्, अत्र, करोमि, कथम् ॥

पदार्थः।

त्वम्=तू और
अहम्=मैं यह अहंकार
हन्त=(इति खेदे)
कदाचित्=कदाचित्
अपि=भी सत्य
न हि=नहीं है
इति=इसी प्रकार
कुलजातिविचारम्=कुल और जातिका विचारभी
असत्यम्=असत्य ही है
अहम्=मैं ही
एव=निश्चयकरके
शिवः=कल्याणरूप
परमार्थः=परमार्थ सत्य हूँ
इति=ऐसा होनेपर
अत्र=यहां
अभिवादनम्=वंदनाको
कथम्=किस प्रकार
करोमि=मैं करूं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह मैं हूँ यह तू है इस प्रकारका जो कि भेदज्ञानका अहंकार है यह कदाचित् भी सत्य नहीं है और कुल तथा जाति आदिकोंका जो विचार है हमारा कुल वडा उत्तम है और हमारी जाति भी उत्तम है

यह भी सत्य नहीं है किन्तु मैं सद्रूप शिवरूप परमार्थस्वरूप हूँ मेरेसे भिन्न दूसरा कोई भी नहीं है, क्योंकि मैं अद्वैतरूप हूँ तब फिर वन्दना करनी भी किसको नहीं बनती है ॥ २२ ॥

गुरुशिष्यविचारविशीर्ण इति उपदेशविचारविशीर्ण इति। अहमेव शिवः परमार्थ इति अभिवादनमत्र करोमि कथम् ॥ २३ ॥

पदच्छेदः ।

गुरुशिष्यविचारविशीर्णः, इति, उपदेशविचारविशीर्णः, इति, अहम्, एव, शिवः, परमार्थः, इति, अभिवादनम्, अत्र, करोमि, कथम् ॥

पदार्थः ।

गुरुशिष्यविचारविशीर्णः=गुरु और शिष्यभावका विचार भी निरस्त है	**एव**=निश्चयकरके
	शिवः=शिवरूप
	परमार्थः=परमार्थ स्वरूप हूँ
इति=इस प्रकार	**इति**=इसी प्रकार
उपदेशविचारविशीर्णः=उपदेशका विचार भी मिथ्या है	**अत्र**=यहां
	अभिवादनम्=वन्दनाको
इति=इसी प्रकार	**करोमि**=करूं
अहम्=मैं ही	**कथम्**=कैसे

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-उस अद्वैत चेतनमें यह गुरु है यह शिष्य है इस प्रकारका जो कि विचार है सो भी नहीं बनता है। जब कि उसमें गुरु-शिष्य भाव ही नहीं तब उपदेश करना भी नहीं बनता है। फिर जब कि मैं एक ही कल्याण स्वरूप परमार्थसे सत्यरूप हूँ तब अभिवादन व्यवहार भी नहीं बनता है ॥ २३ ॥

न हि कल्पितदेहविभाग इति न हि कल्पितलोकविभाग इति । अहमेव शिवः परमार्थ इति अभिवादनमत्र करोमि कथम् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, कल्पितदेहविभागः, इति, न, हि, कल्पितलोकविभागः, इति, अहम्, एव, शिवः, परमार्थः, इति, अभिवादनम्, अत्र, करोमि, कथम् ॥

पदार्थः ।

कल्पितदेहविभागः =कल्पित देहकरके भी भेद	एव=निश्चयकरके
न हि=नहीं सिद्ध होता है	परमार्थः=परमार्थ
इति=इसी प्रकार	शिवः=शिवरूप हूँ
कल्पितलोकविभागः =कल्पित लोकोंकरके भी विभाग	इति=ऐसे होनेपर तब फिर
न हि=नहीं सिद्ध होता है	अभिवादनम्=वन्दनाको
इति=इसी प्रकार	अत्र=यहां
अहम्=मैं ही	कथम्=किस प्रकार
	करोमि=मैं करू

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह देह भी उसी आत्मामें कल्पित है और लोक भी सब उसी आत्मामें कल्पित है, कल्पित वस्तुओंकरके उसका भेद किसी प्रकारसे भी सिद्ध नहीं होता है इसीवास्ते मैं ही परमार्थसे शिवरूप कल्याणरूप एक ही हूँ तब फिर अभिवादनव्यवहार कैसे बनता है किन्तु कदापि भी नहीं बनता है ॥ २४ ॥

सरजो विरजो न कदाचिदपि ननु निर्मलनिश्चलशुद्ध इति । अहमेव शिवः परमार्थ इति अभिवादनमत्र करोमि कथम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः ।

सरजः, विरजः, न, कदाचित्, अपि, ननु, निर्मलनिश्चलशुद्धः, इति, अहम्, एव, शिवः, परमार्थः, इति, अभिवादनम्, अत्र, करोमि, कथम् ॥

पदार्थः ।

सरजः=रागके सहित	अहम्=मैं ही
विरजः=विरागके सहित	एव=निश्चयकरके
कदाचित्=कदाचित् भी	शिवः=शिवरूप
अपि=निश्चयकरके	परमार्थः=परमार्थस्वरूप हूं
न=नहीं है	इति=इस प्रकार
ननु=निश्चयकरके	अत्र=यहां
निर्मलनिश्चलशुद्ध=निर्मल और निश्चल तथा शुद्ध है	अभिवादनम्=अभिवादनको
	करोमि=मैं करूं
इति=इस प्रकारका वह है	कथम्=कैसे

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—हम शिवरूप हैं इसवास्ते हम कदाचित् भी रागके सहित और विरागके सहित नहीं हैं किन्तु हम निर्मल निश्चय शुद्धरूप हैं हमारेसे भिन्न दूसरा कोई भी नहीं है इसवास्ते अभिवादन भी नहीं बनता है ॥२५॥

न हि देहविदेहविकल्प इति अनृतं चरितं न हि सत्यमिति । अहमेव शिवः परमार्थ इति अभिवादनमत्र करोमि कथम् ॥ २६ ॥

पदच्छेदः ।

न, हि, देहविदेहविकल्पः, इति, अनृतम्, चारितम्, न, हि, सत्यम्, इति, अहम्, एव, शिवः, परमार्थः, इति, अभिवादनम्, अत्र, करोमि, कथम् ॥

पदार्थः ।

देहविदेह-विकल्पः = वह देहवाल देहसे रहित	अहम्=मैं ही
इति=इस प्रकारका	एव=निश्चय करके
विकल्पः=विकल्प भी	शिवः=शिवरूप
न हि=उससे नहीं बनता है	परमार्थः=परमार्थस्वरूप हूँ
अमृतम्=मिथ्या और	इति=इस प्रकार
चारितम्=सत्य चारित्र भी	अत्र=यहां
इति=इसमें	अभिवादनम्=वन्दनाको
सत्यम्=सत्यरूप	करोमि=मैं करूं
न हि=नहीं है तब फिर	कथम्=कैसे

भावार्थः ।

स्वामी दत्तात्रेयजी कहते हैं—उस चेतनमें इस तरहका विकल्प भी नहीं बनता है कि, देहसे रहित है या देहवाला है और मिथ्या चरित्रभी उसमें कोई सत्य नहीं है सो मैं हूँ परमार्थ सत्य और कल्याणस्वरूप हूँ तब अभिवादन करना कैसे बनता है किन्तु कदापि नहीं बनता है ॥ २६ ॥

विन्दति विन्दति नहि नहि यत्र च्छन्दोलक्षणं नहि नहि तत्र । समरसमग्नो भावितपूतः प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः ॥ २७ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायां स्वामिकार्तिकसंवादे स्वात्मवित्त्युपदेशमोक्षनिर्णयो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

विन्दति, विन्दति, नहि, नहि, यत्र, छन्दः, लक्षणम्, नहि, नहि, तत्र, समरसमग्नः, भावितपूतः, प्रलपति, तत्त्वम्, परमवधूतः ॥

पदार्थः ।

यत्र=जिस ब्रह्मचेतनमें	नहि नहि=नहीं है २
विन्दति=कुछ लभता है	तत्र=तिस ब्रह्ममें
विन्दति=कुछ लभता है	समरसमग्नः=एकरसमग्न हुआ २
न हि न हि=नहीं २	भावितपूतः=शुद्धचित्तवाला
तत्र=तिस ब्रह्ममें	परमवधूतः=परम अवधूत
छन्दः=छन्दरूप	तत्त्वम्=आत्मतत्त्वको ही
लक्षणम्=कविता भी	प्रलपति=कथन करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–शुद्धचित्तवाला परम अवधूत उस ब्रह्ममें एकरस मग्न हुआ २ क्या किसी पदार्थको या छन्दकी कविताको लभता है ? नहीं लभता है क्योंकि उस चेतनमें तीनों कालोंमें दूसरा कोई भी पदार्थ नहीं है इस वास्ते आत्मानन्दसे भिन्न किसी वस्तुको भी वह नहीं लभता है किन्तु आत्मानन्दमें ही वह मग्न रहता है ॥ २७ ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचितपरमानन्दीभाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ७.

श्रीदत्त उवाच ।

रथ्याकर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः । शून्यागारे तिष्ठति नग्नो शुद्धनिरञ्जनसमरसमग्नः ॥ १ ॥

पदच्छेदः।

रथ्याकर्पटविरचितकन्थः, पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः, शून्यागारे, तिष्ठति, नग्नः, शुद्धनिरञ्जनसमरसमग्नः ॥

पदार्थः।

रथ्याकर्पटविरचितकन्थः =गलियोंमें गिरपडे टुकडोंकी गुदडी बनाकर	नग्नः=नग्न होकरके
पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः पुण्य और पापके मार्गसे रहित हुआ	तिष्ठति=स्थिर होता है
शून्यागारे=शून्यमंदिरमें	शुद्धनिरंजनसमरसमग्नः =शुद्ध मायामलसे रहित ब्रह्मानंदमें मग्न

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--समरस कौन है ? जिस रसका अर्थात् आनन्दका कभी भी नाश न हो ऐसा ब्रह्मानन्द ही है उसी ब्रह्मानन्दमें मग्न जो कि अवधूत है वह गलियोंमें गिरेपडे पुराने टुकड़ोंको लेकर उनकी गुदडी बनाकर और पुण्यपापके मार्गसे अलग होकर शून्य मंदिरमें जाकर नग्न अवधूत स्थित होता है क्योंकि वह शुद्धचित्तवाला और मायामलसे रहित होता है ॥ १ ॥

लक्ष्यालक्ष्यविवर्जितलक्ष्यो युक्तायुक्तविवर्जितदक्षः ।
केवलतत्त्वनिरञ्जनपूतो वादविवादः कथमवधूतः ॥२॥

पदच्छेदः।

लक्ष्यालक्ष्यविवर्जितलक्ष्यः, युक्तायुक्तविवर्जितदक्षः, केवलतत्त्वनिरञ्जनपूतः, वादविवादः, कथम्, अवधूतः ॥

पदार्थः।

लक्ष्यालक्ष्यविवर्जितदक्षः =लक्ष्य अलक्ष्यसे रहित लक्ष्यस्वरूप	केवलतत्त्वनिरञ्जनपूतः केवल आत्मतत्त्वकरके पवित्र हुआ
युक्तायुक्तविवर्जितदक्षः =युक्त अयुक्तसे विवर्जितऔर चतुर	अवधूतः=अवधूत है
	वादविवादः=वादविवाद फिर
	कथम्=कैसे

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—एक तो लक्ष्य होता है दूसरा अलक्ष्य होता है जिस वस्तुमें जिज्ञासु लोग अपनी चित्तकी वृत्तिको लगाते हैं वही लक्ष्य होता है और जिसमें वृत्तिको नहीं लगाते हैं वह अलक्ष्य कहाजाता है सो जो कि केवल आत्मतत्त्वमें लीन होगया है मायामलसे रहित पवित्र अवधूत हैं सो लक्ष्य अलक्ष्य दोनोंसे रहित हैं और जो कि योगमें जुडा है वह अयुक्त कहाजाता है जो नहीं जुडा है वह अयुक्त कहाजाता है वह युक्तायुक्तसे भी रहित है और चतुर है उसका किसीके साथ वादविवाद करना कैसे बनता है किन्तु नहीं बनता है ॥ २ ॥

आशापाशविबन्धनमुक्ताः शौचाचारविवर्जितयुक्ताः ।
एवं सर्वविवर्जितसन्तस्तत्त्वं शुद्धनिरञ्जनवन्तः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

आशापाशविबन्धनमुक्ताः, शौचाचारविवर्जितयुक्ताः, एवम्, सर्वविवर्जितसन्तः, तत्त्वम्, शुद्धनिरञ्जनवन्तः ॥

पदार्थः ।

आशापाशविबन्धनमुक्ताः =आशारूप पाशके बन्धनसे रहित हैं	एवम्=इस प्रकार
शौचाचारविवर्जितयुक्ताः =बाहरके शौच आचारसे रहित वह आत्मामें जुडे हैं	सर्वविवर्जितसन्तस्तत्त्वम्ः =सर्व आचारोंसे रहितसे तत्त्व हैं
	शुद्धनिरञ्जनवन्तः=शुद्ध मायामलसे रहित है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह अवधूत जीवन्मुक्त आशारूपी पाशसे रहित है सम्पूर्ण बन्धनोंसे रहित है इसीसे वह बाहरके शौचरूपी आचारसे भी रहित है क्योंकि वह आत्मामें जुडाहुआ है और शरीरके भी सम्पूर्ण तत्त्वोंमें तिसका अध्यास नहीं है शुद्ध है मायामलसे वह रहित है ॥ ३ ॥

कथमिह देहविदेहविचारः कथमिह रागविरागविचारः । निर्मलनिश्चलगगनाकारं स्वयमिह तत्त्वं सहजाकारम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः ।

कथम्, इह, देहविदेहविचारः, कथम्, इह, रागविरागविचारः, निर्मलनिश्चलगगनाकारम्, स्वयम्, इह, तत्त्वम्, सहजाकारम् ॥

पदार्थः ।

इह=जीवन्मुक्त अवधूतावस्थामें
देहविदेहविचारः=यह देह है यह विगत देह है इस प्रकारका विचार
कथम्=कैसे हो सकता है किन्तु नहीं
इह=इसी अवस्थामें
कथम्=कैसे
रागविरागविचारः=रागविरागका विचार कैसेहोसकता है क्योंकि
निर्मलनिश्चलगगनाकारम्=वह निर्मल है निश्चल है आकाशकी तरह व्यापक है
स्वयम्=आपही वह
सहजाकारम्=स्वाभाविक
इह तत्त्वम्=ब्रह्मतत्त्व है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो अवधूत जीवन्मुक्त अवस्थाको प्राप्त हो गया है उसकी दृष्टिमें यह देह नहीं है इस प्रकारका विचार कैसे हो सकता है और किसीमें राग किसीमें विराग ऐसा भी उसकी दृष्टिमें नहीं होता है क्योंकि वह निर्मल है निश्चल है गगनके आकारकी तरह व्यापक है स्वभावसे ही सहजाकार है ॥ ४ ॥

कथमिह तत्त्वं विन्दति यत्र रूपमरूपं कथमिह तत्र । गगनाकारः परमो यत्र विषयीकरणं कथमिह तत्र ॥ ५ ॥

पदच्छेदः।

कथम्, इह, तत्त्वम्, विन्दति, यत्र, रूपम्, अरूपम्, कथम्, इह, तत्र, गगनाकारः, परमः, यत्र, विषयीकरणम्, कथम्, इह, तत्र ॥

पदार्थः।

इह=जीवन्मुक्त अवस्थामें	यत्र=जिस अवस्थामें
तत्त्वम्=तत्त्वको	गगनाकारः=केवल गगनके आकारवाला
कथम्=किस प्रकार	
विन्दति=जानता है	परमः=परमतत्त्व है
यत्र=जिस अवस्थामें	तत्र=तिस अवस्थामें
रूपम्=रूप और	इह=इस चेतनमें
अरूपम्=रूप नहीं है	विषयीकरणम्=विषय करना
इह तत्र=तिस अवस्थामें	कथम्=कैसे होसकता है
कथम्=कैसे किसको जान सकता है	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-जिस ब्रह्ममें जिस अवधूत अवस्थामें रूप अरूप कोई भी तत्त्व भान नहीं होता है किन्तु गगनवत् व्यापक परमतत्त्वरूप हो जाता है उस अवस्थामें विषयीकरणव्यवहार भी नहीं होता है ॥ ५ ॥

गगनाकारनिरन्तरहंसस्तत्त्वविशुद्धनिरञ्जनहंसः।
एवं कथमिह भिन्नविभिन्नं बन्धविबन्धविकार-
विभिन्नम् ॥ ६ ॥

गगनाकारनिरन्तरहंसः, तत्त्वविशुद्धनिरञ्जनहंसः, एवम्, कथम्, इह, भिन्नविभिन्नम्, बन्धविबन्धविकारविभिन्नम् ॥

पदार्थः ।

गगनाकारानि-रन्तरहंसः =गगनसे तुल्य निरन्तर वह हंसरूप है
तत्त्वविशुद्ध-निरंजनहंसः =आत्मतत्त्व शुद्ध है मायामलसे रहित है हंसरूप है
एवम्=इस प्रकार होनेपर
इह=इस आत्मामें
भिन्नाविभिन्नम्=भिन्न भेद
कथम्=किस प्रकार होसकता है
बंधविबंधविका-रविभिन्नम् =यह बन्ध है यह नहीं है ऐसा भेद भी नहीं बनता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—वह ब्रह्म आकाशके तुल्य सर्वव्यापक आत्मरूप है निर्लेप है हंसस्वरूप है इस प्रकार आत्माकी स्थिति होनेपर इससे सदृश अथवा भिन्न किस प्रकार होसकता है, और यह बन्धन है यह बन्धनरहित है, यह विकाररहित है यह भी नहीं होसकता ॥ ६ ॥

केवलतत्त्वनिरन्तरसर्वं योगवियोगौ कथमिह गर्वम् ।
एवं परमनिरन्तरसर्वमेवं कथमिह सारविसारम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

केवलतत्त्वनिरन्तरसर्वम्, योगवियोगौ, कथम्,इह, गर्वम्, एवम्, परमनिरन्तरसर्वम्, एवम्, कथम्, इह, सारविसारम् ॥

पदार्थः ।

केवलतत्त्व-निरंतरसर्वम् =केवल आत्मतत्त्वही एकरस सर्वरूप हैं
योगवियोगौ=संयोग और वियोगका
इह=इस आत्मामें
गर्वम्=अहंकार
कथम्=कैसे बनसकता है
एवम्=इसी प्रकार
परमनिरन्त-रसर्वम् =परम निरन्तर सर्वरूप है
एव=निश्चयकरके तब फिर
इह=इस आत्मामें
सारविसारम्=यह सार है यह असार है
कथम्=यह कैसे होसकता है ? किन्तु नहीं होसकता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–एक आत्मतत्त्व ही नित्य सर्वव्यापक है उसमें संयोग और वियोग कुछ भी नहीं, संसारमें किसीके उत्पत्तिके समय जो संयोग और मरणके समय जो वियोग साम्य जाती है यह कल्पनामात्र है इससे कुछ भी अभिमान उचित नहीं ॥ ७ ॥

केवलतत्त्वनिरञ्जनसर्वं गगनाकारनिरंतरशुद्धम् ।
एवं कथमिह संगविसङ्गं सत्यं कथमिह रंग-विरङ्गम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

केवलतत्त्वनिरञ्जनसर्वम्, गगनाकारनिरन्तरशुद्धम्, एवम्, कथम्, इह, सङ्गविसङ्गम्, सत्यम्, इह, रङ्गविरङ्गम् ॥

पदार्थः ।

केवलतत्त्वनिरञ्जनसर्वम्	=केवल आत्मतत्त्व ही माया-मलसे रहित सर्वरूप है	संगविसंगम्	=सत्संग और विरुद्ध कुसंग
गगनाकारानिरन्तरशुद्धम्	=आकाशवत् एकरस वह शुद्ध है	कथम्	=कैसे बनसकता है किंतु नहीं
एवम्	=ऐसे होनेपर	इह	=इस आत्मामें
इह	=इस आत्मामें	सत्यम्	=सत्य
		रंगविरंगम्	=रंग और विलक्षण रंग
		कथम्	=कैसे बनसकता है किन्तु नहीं बनता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–कि, केवल आत्मतत्त्व ही मायामलसे रहित सर्वरूप है आकाशवत् एकरस और शुद्ध है ऐसे होनेपर इस आत्मामें सत्संग और इससे विरुद्ध जो कुसंग है सो कैसे बनसकते हैं किन्तु नहीं, इस आत्मामें सत्य, रंग और लक्षणरंग कैसे बन सकता है किन्तु नहीं बनता है, ऐसा मैं हूं ॥ ८ ॥

योगवियोगै रहितो योगी भोगविभोगै रहितो भोगी। एवं चरति हि मन्दंमन्दं मनसा कल्पित-सहजानन्दम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः।

योगवियोगैः, रहितः, योगी, भोगविभोगैः, रहितः, भोगी, एवम्, चरति, हि, मन्दंमन्दम्, मनसा, कल्पितसहजानन्दम्॥

पदार्थः।

योगी=आत्मतत्त्वमें मग्न योगी
योगवियोगैः=संयोग और वियोगसे
रहितः=रहित है और
भोगी=भोगी
भोगविभोगः=विहित भोगसे और अविहित भोगसे
रहितः=रहित हुआ २
एवम्=इस प्रकारका योगी
मनसा=मनकरके
कल्पितसहजानन्दम्=कल्पितसहजानन्दको
हि=निश्चयकरके
मन्दम्=धीरे
मन्दम्=धीरे
चरति=विचरता है अर्थात्, आत्मानन्दको प्राप्त होता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मतत्त्वमें मग्न हुआ योगी संयोगसे और वियोगसे भी रहित है और योगी भोगसे भी रहित और सहित है इस प्रकारका योगी मनकरके कल्पना किया हुआ सहजानन्दको निश्चय कर धीरे धीरे विचरता है अर्थात् आत्मानन्दको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

बोधविबोधैः सततं युक्तो द्वैताद्वैतैः कथमिह मुक्तः। सहजो विरजाः कथमिह योगी शुद्धनिरञ्जनसम-रसभोगी ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

बोधविबोधैः, सततम्, युक्तः, द्वैताद्वैतैः, कथम्, इह, मुक्तः, सहजः, विरजाः, कथम्,इह, योगी,शुद्धनिरञ्जनसमरसभोगी॥

पदार्थः ।

बोधाविबोधैः=ज्ञानअज्ञानकरकेयुक्त
सततम्=निरन्तर
युक्तः=युक्त हुआ २ और
द्वैताद्वैतः=द्वैत और अद्वैतकरके युक्त हुआ २
इह=इस संसारमें
कथम्=किस प्रकार
मुक्तः=मुक्त होते हैं
इह=इस संसारमें
योगी=योगी
सहजः=स्वभावसे ही
विरजाः=रागसे रहित
कथम्=किस प्रकार होवेगा क्योंकि योगी
शुद्धनिरञ्जन-समरसभोगी=शुद्ध है मायामलसे रहित आत्मानन्दको ही भोक्ता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—ज्ञान और अज्ञान दोनोंसे युक्त तथा द्वैत और अद्वैत दोनोंको माननेवाला अनिश्चित तत्त्ववाला योगी मुक्त नहीं होसकता कदाचित् कहाजाय कि स्वभावसेही रजोगुणके नाश होनेसे शुद्धज्ञान उत्पन्न होजायगा जिससे माया और उससे उत्पन्न हुई वासनाओंसे रहित होकर योगी ब्रह्मानन्दका अनुभव करसकता है यह नहीं होसकता आत्मज्ञानसे कर्मबन्धके नष्ट होजानेसे और अद्वैतज्ञानके उत्पन्न होनेसे ही मुक्ति होती है ॥ १० ॥

भग्नाभग्नविवर्जितभग्नो लग्नालग्नविवर्जितलग्नः । एवं कथमिह सारविसारः समरसतत्त्वं गगनाकारः ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

भग्नाभग्नविवर्जितभग्नः, लग्नालग्नविवर्जितलग्नः, एवम्, कथम्, इह, साराविसारः, समरसतत्त्वम्, गगनाकारः ॥

पदार्थः ।

भग्नाभग्नविवर्जितभग्नः =आत्मतत्त्वमें भग्न अभग्न नहीं है

लग्नालग्नविवर्जितलग्नः =लग्न और अलग्नसे रहित अर्थात् किसीसे लग्न भी नहीं है

एवम्=ऐसा होनेपर

इह=इस आत्मामें

सारविसारः=सारविसारभी

कथम्=किसी प्रकारसे भी नहीं है

समरसतत्त्वम् =क्योंकि वह आत्मतत्त्व एकरस

गगनाकारः =गगनाकार है आकाशवत् व्यापक हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मतत्त्व आकाशके समान अनन्त अपार और यथार्थरूपसे जाननेके अयोग्य है आत्माको खण्ड हुआ अखण्ड हुवा अथवा किसी अंशमें खण्ड हुआ और किसी अंशमें अखण्ड हुआ नहीं कह सकते किसीमें लगा हुआ किसीमें नहीं लगा हुआ अथवा किसी अंशमें लगा हुआ किसी अंशमें नहीं लगा हुआ भी नहीं कह सकते, इसी प्रकार आत्मतत्त्वमें कितना सारभाग और कितना असारभाग है यह नहीं कहा जासकता प्रयोजन यह है कि जैसा आकाशका ठीक जान लेना कठिन है ऐसा आत्माका जान लेनाभी बहुत कठिन है ॥ ११ ॥

सततं सर्वविवर्जितयुक्तः सर्वं तत्त्वविवर्जितमुक्तः ॥
एवं कथमिह जीवितमरणं ध्यानाध्यानैः कथमिह करणम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः ।

सततम्, सर्वविवर्जितयुक्तः, सर्वम्, तत्त्वविवर्जितमुक्तः, एवम्, कथम्, इह, जीवितमरणम्, ध्यानाध्यानैः, कथम्,इह, करणम् ॥

पदार्थः ।

सततम्–निरन्तर योगी
सर्वविव-र्जितयुक्तः =सर्वसे रहित आत्मतत्त्वमेंही जुडा रहताहै
सर्वम्=संपूर्ण
तत्त्वविवर्जित-मुक्तः तत्त्वसे रहित हुआ ही मुक्त है
एवम्=ऐसा होनेपर
इह=इस आत्मतत्त्वमें
जीवितमरणम्=जीना और मरण
कथम्=कैसे बन सकता है फिर
इह=इसी आत्मतत्त्वमें
ध्यानाध्यानैः=ध्यान और ध्याना-भावका
करणम्=करना
इह=इसमें
कथम्=किस प्रकार हो सकता है किन्तु किसी तरहसे नहीं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं–आत्मज्ञानी संसारके पदार्थोंसे प्रयोजन न रखकर आत्मामें ही रमता है, प्रकृति महत्तत्त्वादि विकारोंसे रहित होनेसे जीवन्मुक्त हो जाता है ऐसी दशामें आत्माकी उत्पत्ति और मरण कैसे हो सकते हैं, और उसके ध्यान करने और न करनेसे क्या प्रयोजन है ॥ १२ ॥

इन्द्रजालमिदं सर्वं यथा मरुमरीचिका ।
अखंडितघनाकारो वर्तते केवलं शिवः ॥ १३ ॥

पदच्छेदः ।

इन्द्रजालम्, इदम्, सर्वम्, यथा, मरुमरीचिका, अखण्डितघनाकारः, वर्तते, केवलम्, शिवः ॥

पदार्थः ।

इदम्=यह जगत्
सर्वम्=संपूर्ण
इन्द्रजालम्=इन्द्रजालके तुल्य है (और
यथा=जैसे
मरुमरीचिका =मृगतृष्णाका जल मिथ्या होता है तैसे यह भी सब मिथ्या है
अखण्डित-घनाकारः =नाशसे रहित घनाकार
केवलम्=केवल
शिवः=कल्याणस्वरूप आत्मा ही
वर्तते=वर्तता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-यह सब जगत् इन्द्रजालके समान झूठा है और मारवाडदेशमें पानी न होनेसे प्यासे मृगोंको चन्द्रमाके उदय होनेपर चमकते हुए बालूके कण जैसे पानीके समान दूरसे मालूम पडते हैं पास जानेमें वहां पानीका लेश भी नहीं रहता ऐसा यह संसार है। इसमें फँसेहुए मनुष्यको स्त्रीपुत्रादिके ऊपर जो ममत्व होजाता है वह भ्रान्तिमूलक है उससे कभी शान्ति नहीं होसकती इस जगत्में आकर जानने अथवा उपासना करने योग्य यदि कुछ है तो परिपूर्ण सच्चिदानन्द एक शिव ही है॥ १३॥

धर्मादौ मोक्षपर्यन्तं निरीहाः सर्वथा वयम्।
कथं रागविरागैश्च कल्पयन्ति विपश्चितः॥ १४॥

पदच्छेदः।

धर्मादौ, मोक्षपर्यन्तम्, निरीहाः, सर्वथा, वयम्, कथम्, रागविरागैः, च, कल्पयन्ति, विपश्चितः॥

पदार्थः।

वयम्=हम	कथम्=किस प्रकार
धर्मादौ=धर्मसे आदि लेकर	च=और मेरेमें
मोक्षपर्यंतम्=मोक्षपर्यंतसर्वविषयोंमें	रागविरागैः=राग और विराग करके युक्त
सर्वथा=सर्वप्रकारकी	कल्पयन्ति=कल्पना कर सकते हैं किन्तु कदापि नहीं
निरीहाः=चेष्टाओंसे रहित हैं तब	
विपश्चितः=पंडित लोग (फिर	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-धर्मसे लेकर मोक्षतक हम सब प्रकारसे इच्छारहित हैं। बुद्धिमान मनुष्य प्रीति अथवा द्वेष किसी पर नहीं करते॥ १४॥

विन्दति विन्दति नहि नहि यत्र छन्दो लक्षणं नहि नहि तत्र । समरसमग्नो भावितपूतः प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः ॥ १५ ॥

इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायां स्वामिकार्तिकसंवादे स्वात्मसंवित्त्युपदेशे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

विन्दाति, विन्दाति, नहि, नहि, यत्र, छन्दः, लक्षणम्, नहि, नहि, तत्र, समरसमग्नः, भावितपूतः, प्रलपति, तत्त्वम्, परमवधूतः ॥

पदार्थः ।

यत्र=जिस चेतनमें
छन्दः=छन्दरूपी
लक्षणम्=वेद भी वास्तवसे
नहि नहि=सत्य नहीं २
तत्र=उसी चेतनमें प्राप्त होकर
विन्दाति विन्दाति=कुछ जानता है जानता है
नहि नहि=कुछ भी नहीं जानता है
समरसमग्नः=आत्मानन्दमें मग्न
भावितपूतः=शुद्धचित्तवाला
परमवधूतः=श्रेष्ठ अवधूत
तत्त्वम्=आत्मतत्त्वको ही
प्रलपति=कथन करता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जिन चेतन पदार्थको वेद भी यथार्थरूपसे नहीं जान सकते उसी चेतनको ब्रह्मानन्दमें मग्न हुए शुद्ध आशयवाले अवधूतराज दत्तात्रेय कहते हैं ॥ १५ ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविरचितपरमानन्दीभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८,

श्रीदत्त उवाच।

त्वद्यात्रया व्यापकता हता ते ध्यानेन चेतःपरता हता ते। स्तुत्या मया वाक्परता हता ते क्षमस्व नित्यं त्रिविधापराधान् ॥ १ ॥

पदच्छेदः।

त्वद्यात्रया, व्यापकता, हता, ते, ध्यानेन, चेतःपरता, हता, ते, स्तुत्या, मया, वाक्परता, हता, ते, क्षमस्व, नित्यम्, त्रिविधापराधान् ॥

पदार्थः।

त्वद्यात्रया=तुम्हारी यात्रासे	मया=हमारी
व्यापकता=व्यापकता	वाक्-परता=वाणी परकी स्तुति-विषयपरता
हता=हत हुई	हता=नष्ट हुई इसवास्ते
ते=तुम्हारे	ते=तुम्हारेसे
ध्यानेन=ध्यानकरके	त्रिविधाप-राधान्=तीनप्रकारके अपराधोंको
चेतःपरता=चित्तकी विषयपरता	नित्यम्=नित्यही
हता=हत हुई	क्षमस्व=क्षमा करो
ते=तुम्हारी	
स्तुत्या=स्तुतिकरके	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी अपनेही आत्मासे कहते हैं-हे चेतन ! तुम्हारी यात्रा करनेसे अर्थात् तुम्हारी तरफ जिस कालमें हमारे चित्तने चलना प्रारम्भ किया उसी कालमें चित्तकी विषयोंकी तरफसे व्यापकता नष्ट होगई। तुम्हारी यात्रासे पहले चित्त विषयोंमें व्यापा जाता था अब नहीं व्याप-

ताहै और तुम्हारे ध्यान करके चित्तकी विषयपरायणता नष्ट होगई अर्थात् तुम्हारे ध्यानसे पहले चित्त झट विषयको देखता ही उसकी तरफ दौडजाता था अब नहीं दौडता है । फिर तुम्हारी स्तुति वाणीमें जो कि परकी निन्दा स्तुति आदिक दोष था वहभी नष्ट होगया इसीवास्ते मैं अब नित्य ही तीनप्रकारके अपराधोंसे क्षमाको माँगता हूँ क्यों कि यह तीनों अपराध मेरे नष्ट होगये हैं ॥ १ ॥

कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः ।
अनीहो मितभुक्छान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥२॥

पदच्छेदः ।

कामैः, अहतधीः, दान्तः, मृदुः, शुचिः, अकिञ्चनः, अनीहः, मितभुक्, शान्तः, स्थिरः, मच्छरणः, मुनिः ॥

पदार्थः ।

कामैः=कामनाकरके
अहतधीः=बुद्धि जिसकी हत नहीं है अर्थात् जो कि निष्काम है और
दान्तः=बाह्य इन्द्रियोंकाभी जिसने दमन किया है
मृदुः=कोमल स्वभाव
शुचिः=शुद्ध चित्तवाला
अकिञ्चनः=संग्रहसे रहित है
अनीहः=इच्छा भी किसी पदार्थकी जिसको नहीं है
मितभुक्=मित भोजन करता है
शान्तः=शान्त है
स्थिरः=स्थिर है चलायमान किसी करके नहीं होता है
मच्छरणः=आत्माकी शरण है
मुनिः=उसीका नाम मुनि है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहतेहैं-जिसकी बुद्धि किसी बातकी इच्छा न करनेसे अर्थात् निष्काम होनेसे दुष्ट नहीं हुई है चक्षु आदि बाह्य इन्द्रियोंको वशमें जिसने कर रखा है, कोमल चित्तवाला हो, पवित्र रहताहो, किसी पदार्थको संग्रह न करता हो और इच्छा भी किसी बातकी न करता हो, थोडासा भोजन करता हो, शान्त हो, स्थिरबुद्धि हो, मितभाषी हो, वही आत्मज्ञानी है ॥ २ ॥

अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः।
अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ॥३॥

पदच्छेदः।

अप्रमत्तः, गभीरात्मा, धृतिमान्, जितषड्गुणः, अमानी, मानदः, कल्पः, मैत्रः, कारुणिकः, कविः ॥

पदार्थः।

अप्रमत्तः=प्रमादसे रहित होना और
गभीरात्मा=गंभीरस्वभाव होना
धृतिमान्=धैर्ययुक्त होना
जितषड्गुणः=जीतलिये हैं छःइंद्रिय और उसकेविषय जिसने
अमानी=मानसे रहित
मानदः=दूसरेको मानदेना
मैत्रः कल्पः=करुणा करके युक्त होना
कविः=दीर्घदर्शी होना

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—सदा सावधान रहनेवाला, गम्भीर स्वभाववाला, धैर्यशील, काम, क्रोध, लोभ, मोह,मद, मात्सर्य इन छः विकारोंको जीता हुआ, अभिमानरहित सब कामोंमें कुशल सबसे मित्रतापूर्वक व्यवहार करनेवाला और दयाशील साधु कहाजाता है ॥ ३ ॥

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम्।
सत्यासारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥ ४ ॥

पदच्छेदः।

कृपालुः, अकृतद्रोहः, तितिक्षुः, सर्वदेहिनाम्, सत्यासारः, अनवद्यात्मा, समः, सर्वोपकारकः ॥

पदार्थः।

कृपालुः=जो कि कृपालु है
तितिक्षुः=सहनशील
सर्वदेहिनाम्=संपूर्ण देहधारियोंके साथ जो कि
अकृतद्रोहः=कुछ द्रोहको नहीं करता है
समः=सर्वमें एकही आत्माको देखता है

सत्यासारः=सत्यका ही जो कि ताल है अर्थात् जिसमें सत्य ही भरा है

अनवद्यात्मा=जन्ममरणसे रहित है

सर्वोपकारकः=सबका उपकारही करता है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो कृपा करनेवाला सहनशील और संपूर्ण देहधारियोंके साथ जो कि द्रोह करनेवाला नहीं है और सब जगह सम बुद्धि रखनेवाला है और जो सत्यही बोलनेवाला है, जन्ममरणसे रहित हैं सबका उपकारी है ऐसा मैं हूँ ॥ ४ ॥

अवधूतलक्षणं वर्णैर्ज्ञातव्यं भगवत्तमैः ।
वेदवर्णार्थतत्त्वज्ञैर्वेदवेदान्तवादिभिः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः।

अवधूतलक्षणम्, वर्णैः, ज्ञातव्यम्, भगवत्तमैः, वेदवर्णार्थतत्त्वज्ञैः, वेदवेदान्तवादिभिः ॥

पदार्थः।

अवधूतलक्षणम्=अवधूतका लक्षण

भगवत्तमैः=भक्तोंकरके और

वर्णैः=वर्णोंवालोंकरके और

वेदवर्णार्थतत्त्वज्ञैः=वेदवर्णोंके अर्थके तत्त्वको जाननेवाले

वेदवेदान्तवादिभिः=वेदवादियों करके भी वह लक्षण

ज्ञातव्यम्=जानना उचित है और ऊपर जो उपरम तादि गुण कहे हैं यह साधारण महात्माओंके गुण कहे हैं

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—अवधूतके लक्षण सभी भक्त तथा ज्ञानियोंको जानने चाहिये वेद शास्त्र आदिमें अच्छा ज्ञान हो तथापि अवधूत लक्षण सभीको जानना योग्य है ॥ ५ ॥

अब आगेके श्लोकोंमें असाधारण अवधूतके लक्षणको दिखाते हैं अवधूत-पदके वर्णके अर्थको प्रत्येक श्लोकोंमें दिखाते हैं । तथाच-

आशापाशविनिर्मुक्त आदिमध्यान्तनिर्मलः ।
आनन्दे वर्तते नित्यमकारं तस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः ।

आशापाशविनिर्मुक्तः, आदिमध्यान्तनिर्मलः, आनन्दे, वर्तते, नित्यम्, अकारम्, तस्य, लक्षणम् ॥

पदार्थः ।

आशापाशविनिर्मुक्तः = आशारूपी पाशसे जो कि रहित है	नित्यम् = नित्यही
आदिमध्यांतनिर्मलः = आदि मध्य और अन्त तीनोंकालोंमें जो कि निर्मल है	वर्तते = वर्तता है
आनन्दे = ब्रह्मानन्दमें ही	तस्य = उसका
	अकारम् = अकार
	लक्षणम् = लक्षण है

भावार्थः ।

श्रीस्वामी दत्तात्रेयजी अब अवधूतके लक्षणोंको कहते हैं-जो कि संसारके पदार्थोंमें अर्थात् भोगोंमें आशारूपी पाशसे रहित है अर्थात् जिसकी किसी भोगपदार्थमें आशा नहीं है और जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीन अवस्था हैं इन तीनों अवस्थाओंमें किसका चित्त विषय विकारोंकी तरफ नहीं जाता है किन्तु शुद्ध है, अथवा भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालोंमें जिसका चित्त शुद्ध है, अथवा कुमार, यौवन. वृद्धा इन तीनों अवस्थाओंमें जिसका चित्त निर्विकार रहता है और नित्य ही ब्रह्मानन्दमें मग्न रहता है यह लक्षण अर्थात् यह अर्थ अवधूत शब्दके अकारका है ॥ ६ ॥

वासना वर्जिता येन वक्तव्यं च निरामयम् ।
वर्तमानेषु वर्तेत वकारं तस्य लक्षणम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः ।

वासना, वर्ज्जिता, येन, वक्तव्यम्, च, निरामयम्, वर्तमानेषु, वर्तेत, वकारम्, तस्य, लक्षणम् ॥

पदार्थः ।

येन=जिस पुरुषने
वासना=वासनाका
वर्जिता=त्याग करदिया है
च=और
वक्तव्यम्=वक्तव्य जिसका
निरामयम्=रोगसे रहित है
वर्तमानेषु=वर्तमानमें ही
वर्तेत=वर्तता है
तस्य=उसका
लक्षणम्=लक्षण
वकारम्=वकार है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी अब अवधूत शब्दगत वकार अक्षरके अर्थको कहते है-जो कि वासनासे रहित है अर्थात् इस लोकके भोगोंसे लेकर ब्रह्मलोकके भोगोंतक जिसके चित्तमें किसी भी भोगकी वासना नहीं है । वासना दो प्रकारकी होती है एक तो शुभ वासना है दूसरी अशुभ वासना है शुभवासना अन्तःकरणकी शुद्धिका हेतु है, अशुभ वासना बन्धनका हेतु है सो दोनों प्रकारकी वासनाओंका जिसने त्याग कर दिया है, शुभ वासनाका त्याग इस वास्ते उसने किया है कि, अब उसको चित्तकी शुद्धिकी भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह सिद्धावस्थाको प्राप्त होगया है और कथन जिसका निरोग है किसीके भी चित्तमें खेदको उत्पन्न नहीं करता है और वर्तमानमें ही होनेवाले पदोंसे शरीरका निर्वाह कर लेता है उसीमें मग्न होके आनन्दमें रहता है भविष्यत्की चिन्ताको नहीं करता है यह अवधूत शब्दके वकार अक्षरका अर्थ है ॥ ७ ॥

धूलिधूसरगात्राणि धूतचित्तो निरामयः ।
धारणाध्याननिर्मुक्तो धूकारस्तस्य लक्षणम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

धूलिधूसरगात्राणि, धूतचित्तः, निरामयः, धारणाध्याननिर्मुक्तः, धकारः, तस्य, लक्षणम् ॥

पदार्थः।

धूलिधूसरगात्राणि=धूलिकरके धूसर हैं अङ्ग जिसके	धारणाध्याननिर्मुक्तः=धारणा और ध्यानसे रहित है
धूतचित्तः=धोया गया है पापोंसे चित्त जिसका	तस्य=उस शब्दके
निरामयः=रोगसे रहित	धूकारः=धूकारका
	लक्षणम्=अर्थ है

भावार्थः।

अब दत्तात्रेयजी अवधूत शब्दके धू अक्षरके अर्थको दिखाते हैं-जिसके सब शरीरके अंग धूलिसे धूमिल हैं और दैवीसंपदके साधनोंकरके जिसका चित्त धोया गया है फिर जो कि रोगसे रहित रागद्वेषादिक रोग जिसमें नहीं है योगशास्त्रोक्त धारण और ध्यानसे भी जो रहित है क्योंकि सर्वत्र ही उसकी ब्रह्मदृष्टि होरही है, यह सब धू अक्षरका अर्थ है ॥ ८ ॥

तत्त्वचिन्ता धृता येन चिन्ताचेष्टाविवर्जितः।
तमोऽहङ्कारनिर्मुक्तस्तकारस्तस्य लक्षणम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः।

तत्त्वचिन्ता, धृता, येन, चिन्ताचेष्टाविवर्जितः तमोहंकारनिर्मुक्तः तकारः, तस्य, लक्षणम् ॥

पदार्थः।

येन=जिसने	तमोहंकारनिर्मुक्तः=धारण और अहंकारसे जो कि रहित है
तत्त्वचिन्ताधृता=आत्मतत्त्वकीचिन्ताको धारण किया है	तस्य=उसके
चिन्ताचेष्टाविवर्जितः=संसारकी चिंताऔर चेष्टासे जोकि रहितहै	तकारः तकारका यह
	लक्षणम्=अर्थ है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी अब अवधूत शब्दके तकारके अर्थको कहते हैं-जिसने आत्मतत्त्वके चिन्तनको ही धारण किया है और सांसारिक किसी पदार्थका भी जी

कि चिन्तन नहीं करता है फिर जो कि, संसारके भोगोंकी चेष्टा और चिन्ता से रहित है अज्ञानका कार्य जो कि अहंकार है उससे भी जो कि रहित है यह अर्थ अवधूत शब्दके तकारका है ॥९॥

आत्मानं चामृतं हित्वा अभिन्नं मोक्षमव्ययम् ।
गतो हि कुत्सितः काको वर्तते नरकं प्रति ॥१०॥

पदच्छेदः ।

आत्मानम्, च, अमृतम्, हित्वा, अभिन्नम्, मोक्षम्, अव्ययम्, गतः, हि, कुत्सितः, काकः, वर्तते, नरकम्, प्रति ॥

पदार्थः ।

आत्मानम्=आत्माको	हि=निश्चयकरके
अमृतम्=अमृतरूपको	कुत्सितः=निन्दित
अभिन्नम्=अभिन्नको	काकः=काक
मोक्षम्=मोक्षस्वरूपको	नरकम्=नरकके
अव्ययम्=अव्ययको	प्रति=प्रति
हित्वा=त्याग करके	वर्तते=वर्तता है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—कुत्सित जो पुरुष हैं अर्थात् भेदवादी अज्ञानी पुरुष या विषयी पुरुष हैं सो अमृतरूप मोक्षस्वरूप सर्वमें भेदसे रहित जो एक आत्मा है उसका त्याग करके बार २ नरकके प्रति ही दौड़ते हैं ॥ १० ॥

मनसा कर्मणा वाचा त्यज्यतां मृगलोचना ।
न ते स्वर्गोऽपवर्गो वा सानन्दं हृदयं यदि ॥११॥

पदच्छेदः ।

मनसा, कर्मणा, वाचा, त्यज्यताम्, मृगलोचना, न, ते, स्वर्गः, अपवर्गः, वा, सानन्दम्, हृदयम्, यदि ॥

पदार्थः।

मनसा=मनकरके	ते=तुम्हारको
कर्मणा=क्रियाकरके	स्वर्गः=स्वर्गसुख और
वाचा-वाणीकरके	अपवर्गः=मोक्षसुख और
मृगलोचना=मृगके तुल्य नेत्रोंवाली स्त्रियोंका	वा=अथआ
त्यज्यताम्=त्याग करदेवो	हृदयम्=हृदयमें
यदि न=यदि नहीं करोगे तब	सानन्दम्=आनन्द भी
	न=नहीं होवेगा

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--मन वाणी और कर्मसे स्त्रीको छोड़देना चाहिये संसारमें बन्धन करनेवाली स्त्री ही है, बन्धन ही नाना प्रकारके दुःखोंका कारण है इससे दुःखकी जड़ ही काटदेना बुद्धिमान्का काम है, हे जीव ! जब तेरा मन यदि आनन्दपूर्ण होजाय तो स्वर्ग और मोक्ष किसी पदार्थकी आवश्यकता नहीं है ॥ ११ ॥

न जानामि कथं तेन निर्मिता मृगलोचना।
विश्वासघातकीं विद्धि स्वर्गमोक्षसुखार्गलाम् ॥१२॥

पदच्छेदः।

न, जानामि, कथम्, तेन, निर्मिता, मृगलोचना, विश्वासघातकीम्, विद्धि, स्वर्गमोक्षसुखार्गलाम् ॥

पदार्थः।

न जानामि=हम इस बातको नहीं जानते हैं	विश्वासघातकीम्=विश्वासको घात करनेवाली
तेन=विधाताने	विद्धि=तू जान और
मृगलोचना=मृगके लोचनवाली	स्वर्गमोक्षसुखार्गलाम्=स्वर्गऔर मोक्षसुखमें विघ्नरूप अर्गला है
कथम्=किसवास्ते	
निर्मिता=रचा वह कैसी है	

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं -सृष्टिकर्ता ब्रह्माने अपने नयनबाणोंके जालसे संसारको फंसानेवाली स्त्रियोंको क्यों बनाया यह समझमें नहीं आता मेरी समझसे तो स्त्रीको विश्वासघात ऐसे बड़े पापोंको करनेवाली स्वर्ग मोक्ष और सुखको नष्ट करनेवाली. पुरुषकी शत्रु समझना चाहिये ॥१२॥

मूत्रशोणितदुर्गन्धे ह्यमेध्यद्वारदूषिते ।
चर्मकुण्डे ये रमन्ति ते लिप्यन्ते न संशयः ॥१३॥

पदच्छेदः ।

मूत्रशोणितदुर्गन्धे, हि, अमेध्यद्वारदूषिते, चर्मकुण्डे, ये, रमन्ति, ते, लिप्यन्ते, न, संशयः ॥

पदार्थः ।

हि=निश्चयकरके
मूत्रशोणितदुर्गन्धे=मूत्र और रक्तसे दुर्गन्धयुक्त
अमेध्यद्वारदूषिते=मलके द्वारोंसे दूषित
चर्मकुण्डे=इस चर्मकुण्डमें
ये=जो पुरुष
रमन्ति=रमण करते हैं
ते=वे
लिप्यन्ते=दुःखमय संसारमें लिप्त होते हैं
न संशयः=इसमें सन्देह नहीं है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--जिस स्त्रीको कामीलोग विधुवदनी, रम्भोरु मृगराजकटी आदिकी उपमा देकर उसके अपवित्र देहको अपने सुखकी सामग्री समझकर उसमें लिप्त रहते और अन्तमें दुःख ही भोगते हैं वह बड़े ही मूढ़ हैं उनको विचारना चाहिये कि मूत्र और रक्तसे दुर्गन्धयुक्त और मलके द्वारोंसे भरीहुई स्त्री है उसके चर्मकुण्डमें जो आनन्दलाभ करते हैं वह दुःखमय संसारमें लिप्त रहते हैं अर्थात् उनका निस्तार कभी नहीं होता ॥ १३ ॥

कौटिल्यदम्भसंयुक्ता सत्यशौचविवर्जिता ।
केनापि निर्मिता नारी बन्धनं सर्वदेहिनाम् ॥१४॥

पदच्छेदः ।

कौटिल्यदम्भसंयुक्ता, सत्यशोचविवर्जिता, केन, अपि, निर्मिता, नारी, बन्धनम्, सर्वदेहिनाम् ॥

पदार्थः ।

कौटिल्यदम्भसंयुक्ता =कुटिलता और दम्भ करके युक्त जो स्त्री है	केन=किसने
सत्यशौचविवर्जिता =सत्यसे और पवित्रता से सहित है ऐसी स्त्रीको	अपि=निश्चयकरके
	निर्मिता=रचा है
	सर्वदेहिनाम्=संपूर्ण जीवोंके
	बन्धनम्=बन्धनका कारण है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-कुटिलता और दम्भकरके युक्त जो स्त्री है सत्यसे और पवित्रतासे रहित है ऐसी स्त्रीको किसने निश्चयकरके रचा है ऐसी स्त्री जो सपूर्ण बंधोंका कारण है ॥ १४ ॥

त्रैलोक्यजननी धात्री सा भगी नरकं ध्रुवम् ।
तस्यां जातो रतस्तत्र हाहा संसारसंस्थितिः ॥१५॥

पदच्छेदः ।

त्रैलोक्यजननी, धात्री, सा,भगी, नरकम्,ध्रुवम्, तस्य म्, जातः, रतः, तत्र, हाहा, संसारसंस्थितिः ॥

पदार्थः ।

धात्री=जो स्त्री	जातः=उत्पन्न हुआ २ पुरुष
त्रैलोक्यजननी=तीनों लोकोंको उत्पन्न करनेवाली है	तत्र=उसीमें फिर
सा भगी=भगके सहित	रतः=प्रीतिकरता है अर्थात् उसीको भोगता है
ध्रुवम्=निश्चयकरके	हाहा=बड़ा कष्ट है
नरकम्=साक्षात् नरक ही है	संसारसंस्थितिः=कैसी यह संसारकी स्थिति है
तस्याम्=उसी स्त्रीमें	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-कि, जो स्त्री तीनों लोकोंको उत्पन्न करनेंवाली है सो स्त्री भगके सहित साक्षात् नरक ही है, उसी स्त्रीमें उत्पन्न हुआ पुरुष उसमें फिर प्रीति करता है इसी तरह संसारस्थिति बड़ी कष्टकारक है ॥१५॥

जानामि नरकं नारीं ध्रुवं जानामि बन्धनम् ॥
यस्यां जातो रतस्तत्र पुनस्तत्रैव धावति ॥ १६ ॥

पदच्छेदः।

जानामि, नरकम्, नारीम्, ध्रुवम्, जानामि, बन्धनम्, यस्याम्, जातः, रतः तत्र, पुनः, तत्र, एव, धावति ॥

पदार्थः।

नारीम्=स्त्रीको	जातः=उत्पन्न होता है
नरकम्=नरकरूप	तत्र=उसीमें
जानामि=हम जानते हैं	रतः=कीडाको करता है
ध्रुवम्=निश्चयकरके	पुनः=फिर
बन्धनम्=बन्धनका कारण	एव=निश्चयकरके
जानामि=हम जानते हैं	तत्र=उसीमें
यस्याम्=जिसमें	धावति=दौड़ता भी है

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--स्त्रीको मै नरक समझता हूँ और निश्चय है स्त्री बन्धन है ऐसा जानता हूँ पर मनुष्योंकी ओर जब दृष्टि देकर विचार करता हूँ तो बड़ा खेद होता है कि जिस स्त्रीसे उत्पन्न हुआ वहीं आसक्त हो जाता है और फिर २ उसकी ओर दौड़ता है। कैसा अज्ञान है ॥ १६ ॥

भगादिकुचपर्यन्तं संविद्धि नरकार्णवम्।
ये रमन्ति पुनस्तत्र तरन्ति नरकं कथम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः।

भगादिकुचपर्यन्तम्, संविद्धि, नरकार्णवम्, ये, रमन्ति, पुनः, तत्र, तरन्ति, नरकम्, कथम् ॥

पदार्थः ।

भगादिकुच पर्यन्तम् =भगादिसे लेकर कुचों पर्यन्त	तत्र=उसीमें
नरकार्णवम्=नरकका समुद्र उसको	रमन्ति=रमण करते हैं
संविद्धि=सम्यक् तू जान	नरकम्=नरकको
ये=जो पुरुष	कथम्=किस प्रकार वह
पुनः=फिर उसीसे पैदा होकर फिर	तरन्ति=तरजाते हैं

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं--यह स्त्री भग आदिसे लेकर स्तनोंतक नरकरूप समुद्र है। जो मनुष्य एक समय (गर्भस्थिति) वहां रहकर भी फिर वहीं रमते है फिर वह नरकसे अलग कैसे हो सकते हैं ॥ १७ ॥

विष्ठादिनरकं घोरं भगं च परिनिर्मितम् ।
किमु पश्यसि रे चित्त कथं तत्रैव धावसि ॥ १८ ॥

पदच्छेदः ।

विष्ठादिनरकम्, घोरम्, भगम्, च, परिनिर्मितम्, किमु, पश्यसि, रे, चित्त, कथम्, तत्र, एव, धावसि ॥

पदार्थः ।

विष्ठादिनरकं घोरम् विष्ठा आदिको करके घोर नरकरूप	किमु=तो फिर तू क्या उसमें
भगं च=स्त्रीकी भग	पश्यसि= देखता है और
परिनिर्मितम्=रचित है	कथम्=किस प्रकार
रे चित्त=हे चित्त !	तत्र=उसीकी तरफ
	धावसि=दौड़ताहै

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-विष्ठा मूत्र इत्यादि ही नरकोंमें भरे रहते हैं स्त्रीकी योनि भी ऐसे अशुद्ध पदार्थोंसे घिरीहुई है, हे अधम चित्त ! तू उसको क्यों देखता है उसकी ओर तृष्णासे दौड़ा जाता है ॥ १८ ॥

भगेन चर्मकुण्डेन दुर्गन्धेन व्रणेन च।
खण्डितं हि जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥१९॥

पदच्छेदः।

भगेन, चर्मकुण्डेन, दुर्गन्धेन, व्रणेन, च, खण्डितम्, हि जगत्, सर्वम्, सदेवासुरमानुषम् ॥

पदार्थः।

चर्मकुण्डेन=चर्मका एक कुण्डरूप	
भगेन=जो स्त्रीका भग है वह	सर्वम्=संपूर्ण
दुर्गन्धेन=दुर्गन्धिका घर है और	जगत्=जगत्
व्रणेन=घावकी तरह अर्थात् जैसे	खण्डितम्=नाशको प्राप्त होरहा है
किसी पुरुषको शस्त्रके लगनेसे	सदेवासुर } =देवता असुर और
घाव होजाता है उसीके आ	मानुषम् } मनुष्य सहित
कारवाली है उसी भग करके	

भावार्थः।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-चमड़ेके कुण्डरूपी दुर्गन्ध तथा घावके आकारवाले स्त्रीके भगसे देवता दानव और मनुष्योंके सहित यह जगत् खण्डित हुआ है इसीके कारण इन्द्रको गौतमकी स्त्रीके पीछे सहस्र भगका शाप हुआ असुरोंके राजा शुंभ निशुंभ भी इसीपर आपसमें लड़करके मरगये मनुष्योंमें वाली इसीपर मारागया और बहुतसे इसीपर लड़करके कटगये ॥ १९ ॥

देहार्णवे महाघोरे पूरितं चैव शोणितम्।
केनापि निर्मिता नारी भगं चैव अधोमुखम् ॥२०॥

पदच्छेदः।

देहार्णवे, महाघोरे, पूरितम्, च, एव, शोणितम्, केन, अपि, निर्मिता, नारी, भगम्, च, एव, अधोमुखम् ॥

पदार्थः ।

देहार्णवे=स्त्रीके शरीररूपी समुद्रमें
महाघोरे=महान् घोर नरकरूपमें
च=और
एव=निश्चय करके
शोणितम्=रुधिर
पूरितम्=भरा हुआ है

अपि=निश्चय करके
केन=किसने
नारी निर्मिता=स्त्री रची गयी है जिसने इसके शरीरमें
भगं च=भगको
अधोमुखम्=अधोमुख किया है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—यह शरीररूपी समुद्र बड़ा भयंकर है यह लोहूसे भरा हुआ है, इससे किसीने स्त्रीको ऐसा विचित्र बनाया है कि उसका गुप्त इन्द्रिय नीचे मुखवाला होता है । प्रयोजन यह है कि ब्रह्माने स्त्रीको बनाकर यह स्पष्ट सूचित किया है कि, जिस स्त्रीको कामीलोग बड़ी प्यारी समझते हैं वह मांस, रक्त, हड्डी आदि अपवित्र वस्तुओंकी बनी है उसको छूनेमें भी घृणा होनी चाहिये ॥ २० ॥

अन्तरे नरकं विद्धि कौटिल्यं बाह्यमण्डितम् ।
ललितामिह पश्यन्ति महामन्त्रविरोधिनीम् ॥२१॥

पदच्छेदः ।

अन्तरे, नरकम्, विद्धि, कौटिल्यम्, बाह्यमण्डितम्, ललिताम्, इह, पश्यन्ति, महामन्त्रविरोधिनीम् ॥

पदार्थः ।

इह=इस संसारमें
महामन्त्रविरोधिनीम्=संसारसे छूटनेके लिये जो कि महान् मन्त्र वैराग्य है उसका विरोधी जो राग है उससे युक्त
ललिताम्=स्त्रीको

पश्यंति=देखता है जिसके
अन्तरे=शरीरके भीतर
नरकम्=नरकको
विद्धि=तू जान और
कौटिल्यम्=कुटिलता करके युक्त
बाह्यमण्डितम्=ऊपरसे भूषित है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—इन्द्रायणका फल बाहरसे बड़ा मनोहर देख पड़ता है और भीतर दुर्गन्धि तथा कुरूपपूर्ण है स्त्री भी ठीक इसी प्रकार भीतर मल मूत्र आदि अपवित्र पदार्थोंसे पूर्ण तथा कुटिलतासे भरी हुई है और बाहरसे सुन्दरी देख पड़ती है यह ब्रह्मविचारकी शत्रु है इस कारण बुद्धिमान् लोग इसे दूरसेही छोड़ देते हैं ॥ २१ ॥

अज्ञात्वा जीवितं लब्धं भवस्तत्रैव देहिनाम् ।
अहो जातो रतस्तत्र अहो भवविडम्बना ॥२२॥

पदच्छेदः ।

अज्ञात्वा, जीवितम्, लब्धम्, भवः, तत्र, एव, देहिनाम्, अहो, जातः, रतः, तत्र, अहो, भवविडम्बना ॥

पदार्थः ।

अज्ञात्वा=आत्माको न जानकरके
तत्र=उस स्त्रीमें
जीवितम्=जीवनलाभ किया
लब्धम्=लाभ किया
तत्र एव=उसी स्त्रीमें ही
भवः=जन्म हुआ
देहिनाम्=देहधारियोंका
अहो जातः=बड़ा आश्चर्य और हुआ
तत्र=उसीमें
रतः=फिर भी प्रीतियुक्त हुआ
अहो भवविडम्बना=बड़ी संसारकी विडम्बना आश्चर्यरूप है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मस्वरूप न जानकर जन्म लिया जन्म भी उसी अनर्थमूलक स्त्रीमें लिया वस्तु दो मूर्लोंके होनेपर भी यदि फिर आत्माके जाननेका यत्न करते तब भी कल्याण था पर उलटा उसी स्त्रीमें आनन्द करने लगा अहो इस जन्ममरणरूपी संसारमें कैसा तिरस्कार है ॥ २२ ॥

तत्र मुग्धा रमन्ते च सदेवासुरमानवाः ।
ते यान्ति नरकं घोरं सत्यमेव न संशयः ॥ २३ ॥

पदच्छेदः ।

तत्र, मुग्धाः, रमन्ते, च, सदेवासुरमानवाः, ते, यान्ति नरकम्, घोरम्, सत्यम्, एव, न, संशयः ॥

पदार्थः ।

तत्र=उसी स्त्रीमें
मुग्धाः=मूढबुद्धिवाले
सदेवासुरमानवाः=देवताओं और असुरों तथा मनुष्योंके सहित
रमन्ते=रमण करते हैं
ते=वे सब
घोरम्=घोर
नरकम्=नरकको
यान्ति=गमन करते हैं
सत्यम् एव=निश्चयकरके यह सत्य है
न संशयः=इसमें संशय नहीं है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-आत्मज्ञान न होनेसे ही स्त्रीके गर्भमें वास हुआ वहीं जन्म पाया, बड़े आश्चर्यकी बात है कि, गर्भवासका दुःख जानता हुआ भी फिर उसीमें आसक्त होगया यह कैसी संसारकी लज्जाकी बात है यदि मनुष्यको केवल १० महीने गर्भमें रहनेके कष्टका स्मरण रहे तो कभी संसारकी इच्छा न करे ॥ २३ ॥

अग्निकुण्डसमा नारी घृतकुम्भसमो नरः ।
संसर्गेण विलीयेत तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः ।

अग्निकुण्डसमा, नारी, घृतकुम्भसमः, नरः, संसर्गेण, विलीयेत, तस्मात्, ताम्, परिवर्जयेत् ॥

पदार्थः ।

अग्निकुण्डसमा नारी=अग्निके कुण्डके समान स्त्री है
घृतकुम्भसमः=घृतकेकुम्भके समान
नरः=पुरुष है
संसर्गेण=सम्बन्धसे
विलीयते=पिघलजाता है
तस्मात्=उसी कारणसे
ताम्=उस स्त्रीको
परिवर्जयेत्=त्याग करदेवे

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-स्त्री आगकी भट्टीके समान है, पुरुष घीके घडेके समान है, उन दोनाका संयोग होते ही कामविकार सिद्ध है इसलिये उन्नति चाहनेवाला पुरुष स्त्रीको परित्याग करे ॥ २४ ॥

गौडी पैष्टी तथा माध्वी विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।
चतुर्थी स्त्री सुरा ज्ञेया ययेदं मोहितं जगत् ॥२५॥

पदच्छेदः ।

गौडी, पैष्टी, तथा, माध्वी, विज्ञेया, त्रिविधा, सुरा, चतुर्थी, स्त्री, सुरा, ज्ञेया, यया, इदम्, मोहितम्, जगत् ॥

पदार्थः ।

त्रिविधा=तीन प्रकारकी	चतुर्थी=चौथी
सुरा=शराब	स्त्री=स्त्रीको
विज्ञेया=जान	सुरा ज्ञेया=शराब जानो
गौडी=एक गुड़की	यथा=जिस स्त्रीरूपी मदिराकरके
षष्टी=दूसरी जौकी	इदम्=यह
तथा=उसी प्रकार	जगत्=जगत् सब
माध्वी=तीसरी मौवेकी बनती है	मोहितम्=मोहको प्राप्त होरहा है

भावार्थः ।

दत्तात्रेयजी कहते हैं-गुड, आटा और मधुसे मद्य बनता है, यह अधम मद्य है परन्तु स्त्रीरूपी चौथा मद्य ऐसा प्रबल है कि जिसने यह संसार वशमें कर लिया है आशय यह है कि ऊपर कही हुई तीन शराब तो पीकर नशा करती हैं परन्तु यह स्त्रीरूप मद्य ऐसा विचित्र है कि, देखनेसे ही मनुष्यको उन्मत्त कर देता है ॥ २५ ॥

मद्यपानं महापापं नारीसङ्गस्तथैव च ।
तस्माद्द्वयं परित्यज्य तत्त्वनिष्ठो भवेन्मुनिः ॥ २६ ॥

पदच्छेदः ।

मद्यपानम्, महापापम्, नारीसंगः, तथा, एव, च, तस्मात्, द्वयम्, परित्यज्य, तत्वनिष्ठः, भवेत्, मुनिः ॥

पदार्थः ।

मद्यपानं=जिस प्रकार शराबपीना	तस्मात्=उसी कारणसे
महापापम्=महान् पापरूपी है	द्वयम्=इन दोनोंका परित्याग करके
नारीसंगः=स्त्रीका संग भी	मुनिः=मुनि
एव=निश्चयकरके [रूपही है	तत्त्वनिष्ठः=आत्मनिष्ठावाला
तथा=वैसाही है अर्थात् महापाप-	भवेत्=होवे

भावार्थः–दत्तात्रेयजी कहते हैं–शराब पीना और स्त्रीका प्रसंग करना बड़ा पाप है इससे इन दोनोंको छोड़कर मुनि तत्त्वज्ञानयुक्त होवे ॥२६॥

चिन्ताक्रान्त धातुबद्धं शरीरं नष्टे चित्ते धातवो, यान्ति नाशम् । तस्माच्चित्तं सर्वतो रक्षणीयं स्वस्थे चित्ते बुद्धयः सम्भवन्ति ॥ २७ ॥

पद०–चिन्ताक्रान्तम्, धतु बद्धम्, शरीरम्, नष्टे, चित्ते, धातवः, यांति, नाशम्, तस्मात्, चित्तम्, सर्वतः, रक्षणीयम्, स्वस्थे, चित्ते, बुद्धयः, संभवन्ति ॥

पदार्थः ।

चिन्ताक्रांतम्=चिन्तासे दबाया हुआ	यान्ति=प्राप्त हो जाती है
चित जब कि अतिदुःखित	तस्मात्=उसी कारणसे
होता है तब उसकालमें	चि तम्=चित्तकी
नष्टे चित्ते–चित्तके नाश होनेपर	सर्वतःसर्व=ओरसे रक्षा करनी
धातुबद्धम्=धातुओंकरके बांधाहुआ	चाहिये क्योंकि
शरीर भी नष्ट होजाता है	स्वस्थे चित्ते=चित्तके स्वस्थहोनेपर
धातवः =सब धातु भी शरीरकी	बुद्धयः=सारअसारकोविचारनेवाली
नाशम्=नाशको	संभवन्ति=उत्पन्न होतीहै बुद्धियाँ

भावार्थः दत्तात्रेयजी कहते हैं-प्राणियोंका देह जो कि रस, रक्त, मांस, चर्बी, हड्डा, मज्जा और शुक्रसे बँधाहुआ है वह बहुत फिकर करनेसे मनका नाश कर देता है, मनके नाश होनेसे धातुओंका नाश होजाता है, इस लिये, सावधानीसे चित्तकी रक्षा करना चाहिये मनके दोष रहित होनेसे बुद्धि ठीक रहती है ॥ २७ ॥

दत्तात्रेयावधूतेन निर्मितानन्दरूपिणा ।
ये पठन्ति च शृण्वन्ति तेषां नैव पुनर्भवः ॥२८॥
इति श्रीदत्तात्रेयविरचितायामवधूतगीतायां स्वामिका-
र्तिकसंवादे स्वात्मसँव्वित्त्युपदेशेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

पद०–दत्तात्रेयावधूतेन, निर्मिता, आनन्दरूपिणा, ये, पठन्ति, च, शृण्वन्ति, तेषाम्, न, एव, पुनर्भवः ॥

दत्तात्रेयावधूतेन=श्रीस्वामीदत्तात्रेय जी अवधूतने
आनन्दरूपिणा=आनन्दरूपने
निर्मिता=इस अवधूतगीताका निर्माण किया है
ये=जो मुमुक्षुजन
पठन्ति=इसका पाठ करते हैं
च=और
शृण्वन्ति=या इसको श्रवण करते हैं
तेषाम्=उनका
पुनर्भवः=पुनर्जन्म फिर
एव–निश्चयकरके
न=नहीं होता है

भावार्थः–दत्तात्रेयजी कहते हैं- आनन्दमूर्ति श्रीदत्तात्रेय योगिराजने यह अवधूतगीता बनाई है जो इसको पढ़ते हैं अथवा किसीसे सुनते है उनका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ २८ ॥

उन्नीसौं छ्यासठि सँव्वत, भाद्र द्वादशी शुद्ध ।
ग्रंथ यहै पूरण भयो, जानहु सकल सुबुद्ध ॥

इति श्रीमदवधूतगीतायां स्वामिहंसदासशिष्यस्वामिपरमानन्दविर-
चितपरमानंदीभाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०- २६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS